योग का वैज्ञानिक रहस्य

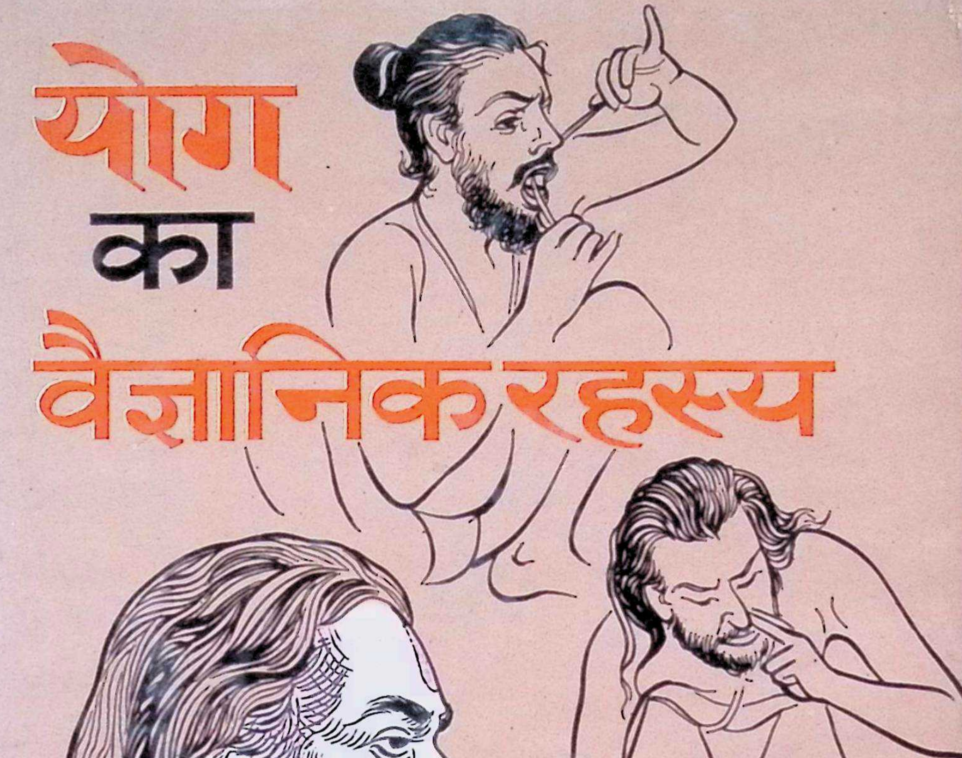

श्री रमणदास महात्यागी

चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी : दिल्ली

सम्मति

'योग वैज्ञानिक रहस्य एवं यौगिक चिकित्सा' इति पुस्तक मयाविलोकितं हिन्दी भाषायामतीव सरलेन विधिना गूढस्य योगशास्त्रीयतथ्यसमुच्च्यस्य विश्लेषणं प्रबन्धकृता कृतम्। इदानीं विश्वस्य दृष्टिः योगरहस्यं साक्षात्कर्तुं प्रयतमाना विद्यते। अतीव स्वल्पीयांसि अपि पुस्तकान्येनां विश्वव्यापिनीं जिज्ञासा तर्पयन्ति। अहं दृढं विश्वसिमि यत् पुस्तकमिदं योगजिज्ञासूनामाह्लादाय भविष्यसि।

अस्य प्रबन्धस्य प्रणेता स्वामि श्रीरमणदासमहात्यागी योगविषयान् अन्यांश्रापि तथ्यानुन्मीलयदिति।

डॉ० रामजी मालवीय
आचार्य (प्रोफेसर)
योगतन्त्र,

आचार्य (प्रोफेसर)
योगतन्त्र,
अध्यक्ष
सांख्योगतन्त्र-आगम विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

॥ श्रीः ॥

जयकृष्णदास आयुर्वेद ग्रन्थमाला
६७

सचित्र

योग का वैज्ञानिक रहस्य

एवं

यौगिक चिकित्सा

(यौगिक मुद्राओं एवं स्वरविज्ञान का सचित्र अध्ययन)

लेखक
श्रीरमणदास महात्यागी 'योगाचार्य'

चौखम्भा ओरियन्टालिया
प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक
वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पो० बाक्स नं० १०३२

वाराणसी–२२१००१ (उ० प्र०) भारत

टेलीफोन : ६३३५४ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर

दिल्ली–११०००७ फोन : २९११६१७

© चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्रथम संस्करण : १९८५

मूल्य : रु० ५०–००

मुद्रक—श्रीगोकुल मुद्रणालय, वाराणसी–२२१००१

JAIKRISHNADAS AYURVEDA SERIES
NO. 67

Illustrated

YOGA KĀ VAIJÑĀNIKA RAHASYA
EVAṀ
YAUGIKA CIKITSĀ

By

ŚRĪRAMAṆADĀSA MAHĀTYĀGĪ
'Yogācārya'

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
VARANASI DELHI

Publishers

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

Post Box No. 1032

VARANASI–221001 (India)

Telephone : 63354 Telegram : Gokulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar

DELHI–110007 Phone : 221617

C. O. R. Studies 7

PRĀṆĀYĀMA

(The Science of yogic Breathing)

By

K. S. JOSHI

Rs. 50-00

समर्पण

परम पूज्य, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, प्रातःस्मरणीय, चक्रचूडामणि, युग-
पुरुष, धर्म-सम्राट, परिव्राजक योगिराज एवं महात्यागी
सेवा आश्रम ट्रस्ट, हनुमानगढ़ी, गायघाट, वाराणसी
के संरक्षक पद पर आसीन, परम् गुरु महाराज
श्री श्री १००८ श्रीरामकृष्णदास महात्यागी
जी महाराज के पूज्य कर-कमलों में
यह पुष्प सादर समर्पित

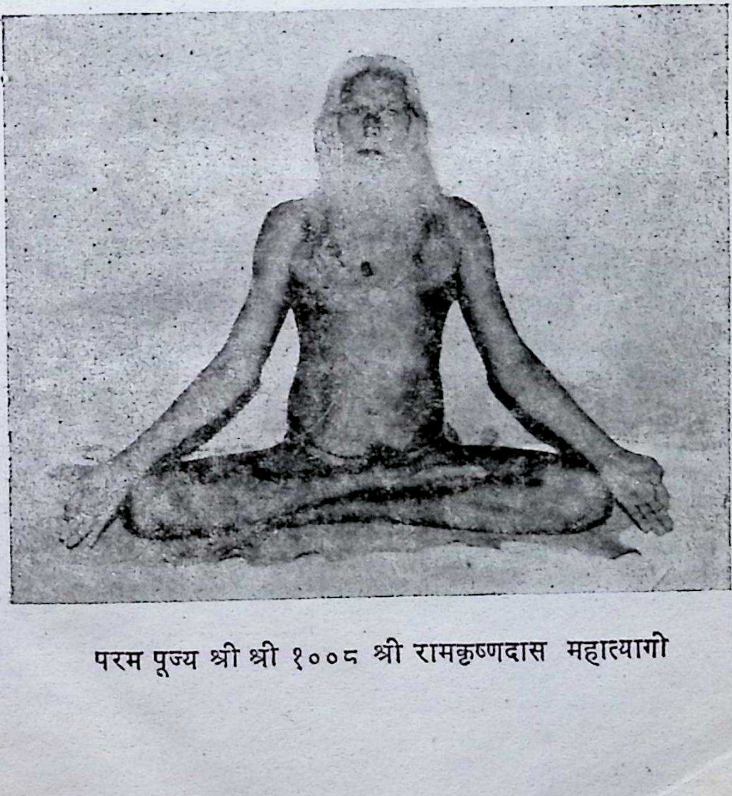

परम पूज्य श्री श्री १००८ श्री रामकृष्णदास महात्यागी

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

(गीता ६।४६)

योगस्थः कुरुकर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

(गीता २।४८)

भगवान शंकर ने पार्वती जी से कहा है—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञोऽपिजितेन्द्रियः ।
विनायोगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये ॥

प्राक्कथन

युवा योग-साधक एवं उत्साही चिन्तक स्वामी योगाचार्य श्रीरमणदास महात्यागी कृत ''योग का वैज्ञानिक रहस्य एवं यौगिक चिकित्सा'' मुद्रित रूप में आद्योपान्त पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लगभग एक वर्ष पूर्व इस उपयोगी ग्रन्थ के सृजनकाल में भी स्वामी जी ने इसकी पाण्डुलिपि मुझे दिखाने का प्रयास किया था परन्तु समयाभाव के कारण मैं इस सन्दर्भ में कुछ विशेष सहयोग नहीं कर पाया था और इस आश्वासन के साथ कि पुस्तक की मुद्रित प्रति देखकर इसके लिए प्राक्कथन लिखने में मुझे प्रसन्नता होगी, मैंने पाण्डुलिपि लौटा दी थी। यह स्वामी जी के दृढ़ निश्चय तथा विषय में अभिरुचि का ही प्रमाण है कि अपने सीमित साधनों के बावजूद भी कुछ ही महीनों में पुस्तक की मुद्रित प्रति लेकर प्राक्कथन हेतु एक दिन सहसा विश्वविद्यालय स्थित मेरे चिकित्सालय के परामर्श कक्ष में उपस्थित हुए और मुझे उनसे हुयी पहली बातचीत याद हो आयी। फिर मैंने इस पुस्तक के विषय में कुछ शब्द लिखने हेतु मुद्रित पर्णों का अवलोकन किया।

योग तो सभी विज्ञानों का विज्ञान है। फिर भी पुस्तक के नामकरण हेतु "योग का वैज्ञानिक रहस्य एवं यौगिक चिकित्सा" शीर्षक आकर्षक लगा। बातचीत से पता चला कि स्वामी जी विज्ञान के स्नातक हैं और अत्यन्त उत्साही एवं मेधावी व्यक्ति हैं।

यह स्वाभाविक ही है कि आधुनिक विज्ञान का तत्त्वमूलकःज्ञान से थोड़ा भी परिचय हो जाने पर मनुष्य को उनके प्रति अद्भुत आस्था बन जाती है और विश्व की हर वस्तु तथा घटना को उन्हीं मूलभूत सिद्धान्तों के अनुरूप देखने और समझने की मजबूरी-सी

हो जाती है। कई बार इससे वास्तविक तत्त्वानुभूति एवं आत्यन्तिक ज्ञान में बाधा उत्पन्न होती है। इस पुस्तक के लेखक स्वयं में साधक एवं तपस्वी हैं एवं योग साधना से अपने शरीर-इन्द्रियों पर सम्यक् प्रकार से संयम किये हैं। "योग का वैज्ञानिक रहस्य एवं यौगिक चिकित्सा" लिखने का दृष्टिकोण अवश्य ही सूक्ष्मतर है परन्तु विषय को व्यावहारिक एवं बहुजनहिताय प्रस्तुत करने के उद्देश्य से उन्होंने पुस्तक में देहमानस विज्ञान को ही आधार माना है, ऐसा प्रतीत होता है।

पुस्तक सात अध्यायों में लिखी हुई है—१. योग का अर्थ, २. विभिन्न प्रकार के योग, ३. षट्कर्म, ४. प्राणायाम, ५. मुद्रा, ६. स्वर विज्ञान और ७. यौगिक चिकित्सा। प्रारम्भ में विद्वान् लेखक ने योग शब्द की व्यापकता पर विमर्श उपस्थित करते हुए विभिन्न सन्दर्भों में योग के शब्दार्थ को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। विस्तृत शास्त्रीय तथा शब्द-वैज्ञानिक विवेचन के अतिरिक्त विभिन्न उपनिषदों में विहित योगार्थ को स्पष्ट तथा सुबोध भाषा में उपस्थित किया है। यत्र-तत्र मौलिक शास्त्रीय उद्धरण भी दिये गये हैं जिससे पुस्तक की मौलिकता में अभिवृद्धि हुई है। आपने मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप योग के प्रायः सभी भेद-प्रभेदों का उल्लेख करके योग की व्यापकता की ओर संकेत किया है। जैसा कि स्वामी जी का उद्देश्य स्पष्ट है, उन्होंने पुस्तक में क्रियात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योग-प्रक्रियाओं, जैसे—प्राणायाम, षट्कर्म, मुद्रा तथा स्वर योग का व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक पक्ष उपस्थित किया है।

लेखन-शैली सरल, सुबोध एवं आम बोल-चाल की भाषा में रखी गयी है जिससे एक सामान्य प्रारम्भिक साधक को विषय समझने में एवं समझकर अभ्यास करने में कठिताई न हो। अन्तिम अध्याय योग चिकित्सा से सम्बन्धित है जिसमें संक्षेप रूप में बहुतायत से पाये जाने वाले ऐसे अनेक रोगों तथा लक्षणों का उल्लेख किया

गया है जो योग-चिकित्सा से साध्य हैं और इसके साथ ही साथ उन रोगों के लिए सफल औषधि-चिकित्सा का नुस्खा भी दिया गया है। योग-चिकित्सा सम्बन्धी ये नुस्खे स्वामी जी के या उनकी गुरु परम्परा के अनुभूत प्रतीत होते हैं। हमें पूरा विश्वास है कि ये अवश्य लाभकर होंगे और चिकित्सकों के बीच इनका प्रचार-प्रसार उपयोगी एवं जनहित में होगा।

इस प्रकार स्वामी श्रीरमणदास महात्यागी कृत "योग का वैज्ञानिक रहस्य एवं यौगिक चिकित्सा" ग्रन्थ अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण कृति प्रमाणित होगी और इससे योग के साधक, योग-चिकित्सक तथा जन सामान्य अधिकाधिक लाभान्वित होंगे। आशा है, यह ग्रन्थ पाठकों के बीच में समुचित आदर प्राप्त करेगा और यशस्वी लेखक की लेखनी से अनेक उपयोगी ग्रन्थ भविष्य में हमें देखने को मिलेंगे। लेखक स्वामी श्रीरमणदास महात्यागी जी तथा उनकी इस नवीन कृति के लिए अनेक शुभ कामनाओं सहित।

डॉ० राम हर्ष सिंह

ए० बी० एम० एस० (बी० एच० यू०),
एम० डी० (एम० ए०) पी-एच० डी०, डि० लिट्,
अध्यक्ष, कायचिकित्सा विभाग संस्थान
एवं समन्वयक योग साधना केन्द्र,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी–२२१००५

अक्टूबर २४, १९८४
दीपावली

प्रस्तावना

योग एक बहुत ही गहन विषय है। योग सार्वभौम, सर्वकालीन एवं सर्वजनीन दीर्घायुष्यदायिनी एवं सर्वांगीण विकास की पूर्ण विद्या है। विगत कुछ वर्षों तक लोगों की यह धारणा थी कि योग मात्र ध्यान या ज्ञान के लिए साधु-सन्तों एवं योगियों की विद्या है। परन्तु अब योग ने यह प्रमाणित कर दिया है कि उसके पास इनके अतिरिक्त वैज्ञानिक, सामाजिक एवं व्यावहारिक उपलब्धियाँ भी हैं। विश्व में आज योग पर नये-नये अनुसन्धान हो रहे हैं। वैज्ञानिकों ने यह पाया है कि योग मनुष्य-जीवन के सर्वांगीण विकास में पूर्ण सक्षम है। योग-क्रिया पूर्णतः वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। योग को अगर महाविज्ञान (Super Science) कहा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। त्रिकालदर्शी ऋषियों द्वारा निर्मित योग-विद्या का जीवन के सभी क्षेत्रों में उपयोग किया जा सकता है। परन्तु इसके लिए पुराने योगशास्त्रों को वैज्ञानिक पहलुओं के आधार पर समझना होगा तभी इसकी आधुनिक उपयोगिता सिद्ध हो सकेगी।

जब मैं भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं कल्याण मन्त्रालय के अन्तर्गत संचालित सेन्ट्रल रिसर्च इन्सट्रीच्यूट फार योग और विश्वायतन योगाश्रम कटरा, जम्मू कश्मीर में योग-विद्या का अध्ययन कर रहा था, तभी मैंने अनुभव किया कि जब तक योग के प्राचीन तथ्यों का वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर विवेचन नहीं किया जायेगा तब तक योग मात्र साधु-सन्तों तक ही सीमित रह जायेगा। इससे जन साधारण को कोई लाभ नहीं मिल पायेगा।

इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर मैंने प्रस्तुत पुस्तक "योग का वैज्ञानिक रहस्य एवं यौगिक चिकित्सा" लिखने का विचार किया। इस ग्रन्थ में यौगिक-क्रियाओं के जिन-जिन तथ्यों का उल्लेख किया गया है उन्हें मैंने स्वयं बारह वर्षों तक अनवरत साधना द्वारा अनुभूत किया है तथा इसी

अवधि के अन्तर्गत गिरनार के जंगलों, जम्मू-कश्मीर की घाटियों तथा माउण्ट आबू के कई अच्छे योगियों से योग विद्या का रहस्य जानने का सुअवसर मिला। इस सन्दर्भ में यह उचित होगा कि अपनी गिरनार यात्रा-काल में प्राप्त चमत्कारपूर्ण यौगिक घटनाओं का यहाँ उल्लेख कर दूँ ताकि पाठक भारतीय सिद्ध योगियों की महत्ता को समझें तथा भारतीय योग-विद्या की मौलिकता का अनुभव कर सकें। योगियों के बीच एक कहावत प्रसिद्ध है—

"आबू के बाबू गिरनार के सिद्ध"

ऐसा मैंने सुना ही था परन्तु समय के अन्तराल में जब मुझे गिरनार जाने का अवसर मिला, मैंने ऐसा ही पाया। गिरनार एक सघन और बीहड़ जंगल है जहाँ सरकार की ओर से शेर पाले जाते हैं। यही जंगल सिद्धों की तपस्यास्थली भी है। इसी जंगल में १२,०० पहाड़ी सीढ़ियों को पार करने के बाद दत्तात्रेय की तपस्यास्थली है जहाँ पर दत्तात्रेय ने हजारों वर्षों तक घोर तपस्या की थी। वह स्थान तीर्थस्थल बन चुका है जहाँ दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती है। तपस्यास्थली पर पहुँचने के दो मील पूर्व ही एक 'कमण्डल कुण्ड' नाम का स्थान है। जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार दत्तात्रेय जी को तपस्यारत रहते हुए प्यास लगी। उन्होंने अपने शिष्य को जल लाने के लिए भेजा, परन्तु उस निर्जन पहाड़ पर जल कहीं नहीं मिला। शिष्य वापस आ गया। दत्तात्रेय जी की पिपासा बढ़ती गयी। उन्होंने अपना कमण्डल एक पहाड़ी की खाई में फेंकते हुआ शिष्य से कहा कि यह कमण्डल जहाँ जाकर रुक जाये वहाँ जल कुण्ड प्रकट हो जायेगा, वहीं से जल ले आना। वही कमण्डल जहाँ जाकर रुका वहाँ जल कुण्ड प्रकट हो गया। आज वही स्थल कमण्डल कुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है।

आजकल कमण्डल कुण्ड पर सन्त लोग रहते हैं। तीर्थयात्रियों के लिए यह विश्रामस्थल है। आश्रम की ओर से अतिथियों को सारी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। यह स्थान आज भी दत्तात्रेय जी के करिश्में की याद दिलाता है।

मैंने भी अपनी गिरनार यात्राकाल में यहाँ पर रात्रि विश्राम किया था। यहाँ मुझे एक अद्‌भुत योग का अनुभव मिला, जिससे इस बात का प्रमाण मिलता है कि योगियों के तपस्या से वायुमण्डल शुद्ध होता है और उस स्थल पर शुद्ध अन्तःकरण वाले को दीर्घकाल पर्यन्त भी उस विद्या का साक्षात्कार होता है।

रात्रि में भोजनोपरान्त विश्राम के लिए कमण्डल कुण्ड के ऊपरी मंजिल में जो पहाड़ की एक कोटर में बनी हुई है, एक कमरा दिया गया। कमरे में आसन (Bed) लगा हुआ था। उस समय जोरों की पहाड़ी ठंडी हवा चल रही थी, पानी भी पड़ रहा था। वह कमरा भी उस तरह बना है कि हवा प्रवेश की कहीं गुंजाइश नहीं रह जाती है। वहाँ की हवा नमी मुक्त (Moisted) होने के कारण किवाड़ के छिद्र से होकर भी अगर हवा कमरे के अन्दर प्रवेश करेगी तो सारा कमरा गीला हो जाता है। मैं कमरे के अन्दर प्रवेश करके बिस्तर (आसन) पर लेट गया। रात्रि के घोर अन्धेरे तथा निर्जन वातावरणमें आँधी के समान हवा का झोंका जब पहाड़ी से टकराये तो जोरों की साँये-साँये की आवाज, झोंका जब शान्त हो जाता तब मानों शून्य-सा (ध्वनि रहित) एकान्तस्थान प्रतीत होता था। इस समय नाद स्पष्ट सुनाई पड़ने लगता था। कमरे के अन्दर सारे बिस्तर एवं कम्बल गीले थे। अतः मुझे जोरों की ठंडी लगने लगी, दाँत कटकटाने लगे, शरीर काँपने लगा। तब मैंने भस्त्रिका प्राणायाम के साथ कुम्भक किया। शरीर में गर्मी आयी। तत्पश्चात् मन बिल्कुल एकाग्र हो गया। तब मैं शवासन में लेटकर उज्जायी प्राणायाम करने लगा। धीरे-धीरे स्वतः साँस स्थिर हो गया। मन नादयोग में लय होने लगा। ऐसा अनुभव होने लगा, मानों मैं अपने शरीर को छोड़कर उर्ध्व गति में जा रहा हूँ। शरीर से किसी शक्ति का विलगाव इतनी तेजी से होने लगा कि मैं बेचैन होने लगा और बार-बार अपने शरीर में वापस आने की चेष्टा करने लगा, परन्तु अपनी पूर्व स्थिति में वापस नहीं आ पा रहा था। उसी समय स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का अनुभव हुआ कि प्रयाणकाल में सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से कैसे विलग होता है। इस विलगाव में जीवात्मा द्रष्टा रहता है, उसे शरीर के प्रति कितना मोह उत्पन्न होता है।

मेरा सूक्ष्म शरीर कमरे के छत तक जाता था, जब मैं वापस करने का प्रयत्न करता, तो कुछ नीचे तक आ जाता था परन्तु पुनः शीघ्र ही ऊपर चला जाता था। कई घंटों तक यह प्रक्रिया चलती रही। जब मैं अपने सभी प्रयत्नों से असफल हो गया तब मुझे भगवन् नाम (कोई मंत्र) याद आया। मंत्र द्वारा मैंने उस शक्ति का आवाहन किया। तदुपरान्त मैं सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर में प्रवेश कराने में सक्षम हो सका।

शवासन टूटा, आँखें खुलीं। खड़े होकर टहलने लगा कि यह क्रिया पुनः न हो जाये। मुझे ऐसा आभास हो रहा था कि यह क्रिया पुनः हो जायेगी। आश्चर्य ! कुछ देर टहलने के बाद जब मैं दिवाल के सहारे खड़ा

होकर आँखें बन्द किया तो पुनः वह क्रिया शुरू हो गयी। ऐसी विचित्र स्थिति का अनुभव पहले कभी नहीं हुआ था। परन्तु इस स्थिति की झलक पहले कई बार ध्यान, समाधि में क्षणिक काल के लिए मिल चुकी थी लेकिन इतना स्पष्ट और दीर्घकाल तक नहीं। ऐसा होने के कारण मुझे बेचैनी मालूम होने लगी। बेचैनी का कारण यह था कि सूक्ष्म शरीर को बाहर में कहाँ और कब तक स्थापन करना चाहिए, इस बात की जानकारी उस समय मुझे नहीं थी। इस परिस्थिति में कई-कई दिनों तक सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर का सम्बन्ध विच्छेद हो सकता है। अतएव स्थूल शरीर की सावधानी पूर्वक सुरक्षा-व्यवस्था होना चाहिए अन्यथा भयंकर खतरे की संभावना रहती है। होता यह है कि जिस समय सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर का विलगाव होता है उस समय स्थूल शरीर शववत् हो जाता है परन्तु शव से इसकी स्थिति भिन्न होती है। इस अवस्था में चेतना बनी रहती है। सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर से एक विशेष विधि (प्राणवायु) के माध्यम से सम्बन्ध बना रहता है। इस समय स्थूल शरीर को शव समझकर उलट-पलट या स्पर्श करने से या मूर्दा समझकर अन्त्येष्टि कर देने से जीवात्मा की बुरी गति होती है। यह अकाल मृत्यु की भाँति भटकता रहता है। स्थूल शरीर को छेड़-छाड़ (Disturb) कर देने पर भी सूक्ष्म शरीर पुनः स्थूल शरीर में प्रवेश नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि इन दोनों शरीर का सम्बन्ध एक विशेष कोण और दिशा (Angle & Direction) में रहता है। अतएव शंकराचार्य जी ने जब अपने स्थूल शरीर से एक मृतक शरीर में प्रवेश किया था तो उनके शिष्यों ने उनके स्थूल शरीर को विशेष ढंग से सुरक्षित रखा था।

इस प्रकार रात्रि पर्यन्त मैं सामान्य स्थिति में आ सका। सुबह स्नान-ध्यान के बाद मैं पुण्य चरणपादुका का दर्शन करने गया। उस पुण्यस्थल को देखकर मन में बर्वस कौतूहल होने लगता है कि इस निर्जन मृत पहाड़ के ऊपर दत्तात्रेय जी ने कैसे साधना की होगी ? जहाँ न तो कोई खाद्य पदार्थ है, न पेयजल और न तो कोई छाया ही धूप और ठंड से बचने के लिए। धन्य हैं ऐसे महान् पुरुष !

दर्शन के पश्चात् मैं नीचे आकर ब्रह्मेश्वर महादेव मन्दिर में कई रोज तक ठहर कर सन्तों से सतसंग करता रहा। एक रोज मुझे यह जिज्ञासा हुई कि गिरनार के सिद्धों से मिलना चाहिए परन्तु मैंने यह सुना था कि सिद्धों की पहचान मुश्किल है। मैंने मन्दिर के स्वामी जी से पूछा कि सिद्धों के

दर्शन करने का कोई उपाय बताइये। स्वामी जी ने कहा कि गिरनार और कोडिनार के घोर जंगलों में चले जाओ, परन्तु याद रखना कि वहाँ जाने का काम ऐसा ही है कि "चढ़े तो चाखे प्रेमरस गिरे तो चकना चूर" अगर सिद्ध से दर्शन हो गया तो तुम भी सिद्ध हो जाओगे अन्यथा कहीं जंगली हिंसक जानवरों से सामना हुआ तो सिद्धों के लोक में सिधार कर सिद्ध हो जाओगे। मतलब यह कि यह जोखिम भरा कार्य है। मैंने स्वामी जी से पूछा कि क्या गिरनार के सिद्ध जिज्ञासु को दर्शन नहीं देते हैं ? उन्होंने कहा क्यों नहीं ? बड़े भाग्यवान लोगों को दर्शन देकर रहस्यमयी विद्याओं का ज्ञान कराकर कृतार्थ करते हैं। उनके ऐसा कहने से मेरी भावना और दृढ़ हो गयी। मैंने संकल्प कर लिया कि मैं सिद्धों के दर्शन करूँगा ही, चाहे मेरा जीवन क्यों न चला जाय ?

आखिर एक रोज मैं घोर जङ्गल की ओर प्रस्थान कर ही दिया। मार्ग में शरीफों के जङ्गल लगे हुए थे जिन पर कच्चे-पक्के शरीफे लटकर शोभायमान हो रहे थे। रास्ते में कभी-कभी लकड़हारों से मुलाकात होती थी। मैं सीधे जङ्गल की पगडंडी से जा रहा था। कहीं-कहीं पर पगडंडी भी समाप्त हो जाती थी फिर कुछ दूर चलने पर दूसरी पगडंडी मिलती थी। इस तरह चलते हुए घोर जंगल में जा पहुँचा जहाँ से अब कोई रास्ता दिखलाई नहीं पड़ रहा था, वहाँ कंटकाकीर्ण वृक्ष और सघन झाड़ियाँ ही थीं। सूर्यास्त भी होने जा रहा था अब मैं किधर जाऊँ, ऐसा सोचकर एक चट्टान, जो कुछ खुले स्थान में था और नीचे खाई में जल था, उस पर जाकर बैठ गया।

बैठा ही था कि देखता हूँ कि विभिन्न दिशाओं की पहाड़ियों से कई जंगली कुत्ते निकलते हैं और वे सब एक जगह इकट्ठे हो जाते हैं, कुत्ते काफी लम्बे-तगड़े थे। वे सब बड़ी तेजी से मेरी ओर दौड़कर आने लगे। मैं किंचित भयभीत हुआ कि ये कुत्ते कहीं मेरे ऊपर आक्रमण न कर दें, क्योंकि पहले मैं सुन चुका था कि गिरनार, कोडिनार के जंगली कुत्ते नर-भक्षी होते हैं। मेरा अनुमान ठीक निकला। उन कुत्तों ने मुझ पर आक्रमण कर दिया। एक कुत्ता पीछे से मेरे सिर पर चढ़ गया, कुछ कुत्तों ने आगे से घेर लिया, तब तक मैं खड़ा हो चुका था, कुछ कुत्तों ने बगल से मेरे कटि वस्त्र को पकड़ लिया। अब मुझे लगा कि मेरी मृत्यु निकट आ गयी है। कहा जाता है कि "मरता क्या नहीं करता"। अपनी मृत्यु निकट और निश्चित सोचकर मुझमें एकाएक बहुत साहस आ गया। तब तक एक कुत्ता पीठ की ओर से दोनों कन्धों पर अपने पैर रखकर गर्दन फोड़ने के लिए

उद्यत हुआ। पहले मैंने सुना था कि यहाँ के कुत्ते पहले हमले में गर्दन ही फोड़ते हैं। मेरे पास कोई अस्त्र या डण्डा नही था और इतने कुत्तों से लड़ने में भी अपने को सक्षम नहीं समझा। कोई उपाय न देखकर मैंने इष्टदेव का आवाहन करते हुए सिंहनाद किया। सिंह-आसन का महत्व इसी समय समझ में आया। फिर मैंने करीब दो मिनट तक आकाश मुद्रा का प्रयोग किया। आकाशीय-मुद्रा के पश्चात् अपनी एड़ी के ऊपर घूमते (Round) हुए दाँये हाथ को फैलाकर एक काल्पनिक रेखा अपने चारों ओर खींची जैसे जादूगर जादू दिखाने से पहले एक वृत्ताकार-सा खींचकर और लोगों को उस रेखा से बाहर रहने का निर्देश करता है। उसी तरह मेरे द्वारा खींची हुई उस वृत्ताकार काल्पनिक रेखा से सभी कुत्ते बाहर हो गये।

कुत्तों को अपने से दूर देखकर मैं अपने को सुरक्षित महसूस करने लगा। अब मै कुत्तों से कहता हूँ, ऐ कुत्तों! मेरा रास्ता छोड़ दो, तुम्हारे लिए बहुत शिकार उपलब्ध होंगे, मैं बहुत बड़े उद्देश्य से गिरनार में आया हूँ। अतः मेरा रास्ता छोड़ दो। इतना कहने पर भी कुत्ते खड़े रहे, मुझे मार्ग नहीं दिया। मैंने विचार किया कि अंधेरा होता जा रहा है, मैं कब तक यहाँ खड़ा रहूँगा। ऐसा सोचकर मैं अपने सामने खड़े कुत्ते को दोनों हाथों से हटाते हुए आगे बढ़ा। सभी कुत्ते शान्त रहे। करीब जब मैं ५ मीटर आगे बढ़ा तो फिर सब कुत्ते मेरी ओर दौड़ पड़े। मैंने पीछे मुड़कर फटकारते हुए कहा, रे मूढों! इतना समझाने पर भी संत वाणी की उपेक्षा कर रहे हो! सभी कुत्ते पंक्तिबद्ध खड़े हो गये। मैं भी खड़ा हो गया। मेरी और कुत्तों की दृष्टि कुछ देर तक लड़ी। एक जो सबसे बड़ा कुत्ता था उसने कुत्तों की ओर दृष्टि डालते हुए अपना सिर हिलाया। मानों उसने सभी कुत्तों को अपनी भाषा में चलने का संकेत किया हो। उसके ऐसा संकेत करने पर सभी कुत्ते अपनी-अपनी दिशा की ओर तेजी से भागते हुए मेरी आँखों से ओझल हो गये।

अब मैं उन कुत्तों से भयरहित होकर घोर जंगल की ओर बढ़ने लगा। घोर अन्धकार में कुछ दूरी पर एक रोशनी मालूम पड़ी। उसी को लक्ष्य करके आगे बढ़ता रहा। कुछ समय पश्चात् मै उस प्रकाश-पुंज के पास पहुँच गया। वह एक महात्मा की कूटी जैसा स्थान था जिसमें कई गुफायें भी पहाड़ की कोटर में थी। रात्रि के करीब बारह बजे थे। पत्तों की खड़-खड़ाहट होने से गुफा के अन्दर से आवाज आयी कौन है?

मैंने कहा—जिज्ञासु। फिर आवाज आयी 'अन्दर आओ'। गुफा के अन्दर गया। एक गौराङ्ग सुन्दर शरीर वाले नंग-धडंग, जटा-जूट वाले, भस्मधारी, बड़ी-बड़ी आँखों वाले, देदीप्यमान, सुरीले शान्त स्वर वाले एक महान सिद्ध योगी बोले—अरे जिज्ञासु! तुम कैसे यहाँ आये? मैंने कहा स्वामिन्! प्यासा कूप की तलाश करता है, शिष्य गुरु की तलाश करता है और जिज्ञासु तत्त्ववेत्ता पुरुषों की तलाश करता है। इन्हीं श्रेणियों में मुझे भी जो समझिये। स्वामी जी बड़े ही आदर से बैठाया। मैंने स्वामी जी से क्षुधा-पिपासा शान्ति हेतु निवेदन किया। उन्हने कहा—यहाँ भोजन का कोई इन्तजाम नहीं है। मैंने हठ करते हुए कहा कि मैं तो खाऊँगा ही क्योंकि मुझे दो रोज से भोजन नहीं मिला है। अगर आप नहीं खिलायेंगे तो आपकी अतिथि धर्म की हानि होगी। स्वामी जी अपने एक युवा तपस्वी शिष्य को बुलाकर गुफा के पीछे वाले पेड़ से दो फल लाने की आज्ञा दी। फल आया। महाराज ने दोनों फल को एक पत्तल पर रखते हुए कहा कि इसे खाओ। वह फल देखने में शरीफा जैसा लगता था, वह भी कच्चा था। मैंने कहा—यह कैसे खाया जायेगा? यह तो कच्चा मालूम पड़ता है और हरा भी है। स्वामी जी ने अपने हाथों से फलों को स्पर्श किया। वह मालपूआ जैसा हो गया। तब मैंने उसे खाया। मालपूआ स्वादिष्ट एवं ताजा बना हुआ जैसा था। मैंने सोचा कि दो मालपूये से मुझे क्या होगा, परन्तु उतने में ही मैं पूर्ण संतुष्ट हो गया। भोजनोपरान्त आदेश मिला अभी विश्राम करो, कल बात-चीत होगी।

प्रातःकाल नित्य क्रिया से निवृत्त होने के पश्चात् मैं स्वामी जी को भली प्रकार दण्डवत् करके शान्ति पूर्वक बैठ गया। उन्होंने पूछा, बताओ यहाँ कैसे आये? मैंने बताया कि स्वामी जी मैंने सुना था कि "आबू के बाबू गिरनार के सिद्ध" प्रसिद्ध हैं। अर्थात् आबू (राजस्थान) के सन्त रईसी ठाट-बाट में रहकर भी सिद्धि को प्राप्त करते हैं और गिरनार के सन्त त्याग वृत्ति से उदासीन रहते हुए सिद्ध होते हैं। अतः मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि आज कई रोज से मैं गिरनार में भ्रमण कर रहा हूँ परन्तु अभी तक हमें कोई सिद्ध नहीं मिला। अतएव मुझे बेचैनी हो रही है। मैं इस बात पर पूर्ण आश्वस्त हूँ कि यहाँ सिद्ध सन्त हैं।

ऐसा कहने पर उन्होंने कहा कि तुम क्या चाहते हो? मैंने कहा कि प्राचीनकालों में भारतीय योगी ध्यान योग एवं समाधि के द्वारा ही विश्व-ब्रह्माण्ड की गतिविधियों को जान लेते थे, त्रिकालदर्शी होते थे परन्तु अब ऐसा कोई योगी देखने को नहीं मिलता। विज्ञान इतना बढ़ चुका है कि वह

रडार जैसे यन्त्रों का आविष्कार करके काफी दूरवर्ती चीजों को देख लेता है। फिर मैंने सिद्ध योगी से कहा कि मैं भी ध्यान योग के द्वारा गिरनार के सिद्धों को विभिन्न साधना पद्धतियों को करते हुए उनके तपस्यास्थलों पर ही, देखना चाहता हूँ। यही मेरी जिज्ञासा और इच्छा है।

सिद्ध योगी ने कहा—योग जानते हो? मैंने कहा—जी हाँ। उन्होंने कहा—योग क्या है? मैंने कहा—जीव और ब्रह्म की ऐक्यता। फिर उन्होंने पूछा—अष्टांग योग जानते हो? मैंने कहा—जी हाँ। स्वामी जी ने पूछा—भस्त्रिका प्राणायाम जानते हो? मैंने कहा—जी हाँ। उन्होंने कहा करके बताओ। मैंने दोनों हाथों को घुटनों पर टेक कर झटके से रेचक पूरक करते हुए भस्त्रिका प्राणायाम करके दिखाया। उन्होंने कहा कि यही क्रिया सिद्धासन में बैठकर करो। मैंने सिद्धासन में भस्त्रिका करके दिखाया। फिर उन्होंने पूछा—तुम किस इष्ट देवता को मानते हो? मैंने कहा—शिव को। उन्होंने कहा—शिव को ही क्यों मानते हो? मैंने कहा कि शास्त्रों में कहीं आया है—

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिव स गुरुः स्मृतः।

अतएव शिव ही परम तत्त्व है

उन्होंने कहा—तुम दत्तात्रेय को इष्ट मानो। मैंने कहा—मुझे उसमें श्रद्धा नहीं है। उन्होंने कहा—अभी मैं जैसा कहता हूँ वैसा करो, फिर तुम्हारी जैसी मर्जी होगी वैसा ही करना। मैंने कहा—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

सिद्ध योगी ने कहा—सिद्धासन में इस मूर्ति के सामने बैठ जाओ। वह मूर्ति दत्तात्रेय की थी जिसमें कई कुत्ते भी थे। मैंने पूछा—इनके (दत्तात्रेय) साथ ये कुत्ते कैसे हैं? उन्होंने कहा—ये कुत्ते ही उनके वाहक हैं। मैंने उनसे मार्ग में आते समय कुत्तों वाली घटना सुनायी। उन्होंने कहा—यह दत्तात्रेय जी की परीक्षा थी। यहाँ जो कोई भी आता है उसकी पहली परीक्षा यही होती है। जो डर कर भाग जाता है उसे कोई सिद्ध दर्शन नहीं देते हैं। तुमने बहुत साहस किया अतः तुम्हें इस सिद्ध भूमि का फल मिलेगा।

उन्होंने कहा—भस्त्रिका करो। मैंने भस्त्रिका किया। फिर उन्होंने कहा—"हरि ॐ तत् सत् जय गुरुदत्त" इस मन्त्र का शीघ्रता से उच्चारण करते जाओ। मैंने वैसा ही किया। स्वामी जी ने कहा—सामने दत्तात्रेय की मूर्त्ति को हृदय में धारणा करके आँखें बन्द कर लो। मैंने वैसा ही

किया। उन्होंने कहा—शरीर को बिना हिलाये-डुलाये शान्त हो जाओ और उसी मूर्त्ति का ध्यान करो। मैं स्थिरचित्त होकर ध्यान करने लगा। करीब २० मिनट के बाद महाराज जी ने अपनी दाहिनी हाथ की मध्यमा अंगुली से मेरे भृकुटी में ठोकर मारा। ज्यों हि उन्होंने भृकुटी में ठोकर मारी मैं गिरनार के जंगलों में जा-जा कर दर्शन करने लगा।

कई ऐसी गुफाएँ थीं जिनमें दीर्घकाल से समाधि में बैठे हुए महात्माओं के दर्शन हुए एवं गुफा चारों ओर से बिल्कुल बन्द थी। कई स्थल पर अष्टांगयोग के अभ्यास करते हुए कई योगी मिले। कहीं धुनि-साधना करते हुए देखे गये। इस क्रिया में सप्तधुनि, द्वादश धुनि, चौरासीधुनि लगाकर हठयोगी बीच में बैठे हैं। एक ऐसे हठयोगी को देखा जो प्रज्वलित अग्नि को साक्षी बनाकर अग्नि तत्त्व को चेता रहे हैं। एक ऐसे सिद्ध योगी के दर्शन हुए जो अपने शिष्य को पर-काया-प्रवेश की शिक्षा दे रहे हैं। इस क्रिया में मैंने देखा कि शिष्य अपने गुरु से पर-काया-प्रवेश करके दिखाने का हठ कर रहा है। गुरु जी मना कर रहे हैं कि ये जटिल क्रियायें दिखाने के लिए नहीं करनी चाहिए। परन्तु शिष्य ने हठ कर दिया। गुरुजी विवश हो गये। गुरु जी ने कहा कि तुरन्त प्रयाण किये हुए शव को ले आओ। शिष्य कहीं से ले आया। उस शव का सिर दक्षिण दिशा की ओर रखकर उसके ऊपर एक लाल वस्त्र ओढ़ा दिया। वे स्वयं लाश से करीब ५०-५२ फीट की दूरी पर ठीक लाश के सिर के ठीक सामने उत्तर दिशा की ओर मुख करके खड़े हो गये। शिष्य को आवश्यक निर्देश कर दिये जो उपयुक्त समय पर करना था। गुरु जी सूर्य की ओर हाथ उठाते हुए सूर्य पर त्राटक लगाकर कोई मंत्र (बैखरी) पढ़ने लगे। दो मिनट बाद गुरु जी लड़-खड़ाने लगे। बेचैन हो गये और छटपटाते हुए जमीन पर गिर गये। उधर दूसरी ओर लाल वस्त्र ओढ़े हुए उस मुर्दे के अंगों में हलचल होने लगी। जब गुरु जी का शरीर निश्चेष्ट हो गया तो शिष्य गुरु के पूर्व निर्देशानुसार उस लाश के समीप जाकर उसके मुँह पर ढके लाल वस्त्र को हटाता है। वह मृत स्थूल शरीर हल्का मुस्कराते हुए उठकर बैठता है, कहने लगा कि ओहो! मैं बहुत देर से सोया था। गुरु जी ने शिष्य से पहले निर्देशकर दिया था कि जब वह मृतात्मा उठ जाये तो उसे पुनः सुला देना। शिष्य ने वैसा ही किया। धीरे-धीरे वह मृतात्मा निचेष्ट होती चली गयी, इधर गुरु जी पुनः शरीर में वापस आने लगे। मृतात्मा के पूर्ण निश्चेष्ट हो जाने पर गुरु जी उठकर बैठ गये। वे कहने लगे कि तुमने मुझे बहुत परिश्रम करा दिया।

इस तरह मैंने भिन्न-भिन्न कन्दराओं में विभिन्न प्रकार की यौगिक एवं तांत्रिक क्रियाओं को करते हुए सिद्ध सन्तों को देखा। फिर एक ऐसे योगी को देखा जो अपने शरीर के अवयवों को अलग-अलग करके फिर समुच्चय करना जानते थे। इस क्रिया को अखण्ड क्रिया कहते हैं। अन्त में मैंने एक दृश्य देखा कि एक बहुत लम्बे-तगड़े, भस्मधारी, जटाधारी, योगी सामने आये, फिर उन्होंने अपने को दत्तात्रेय के रूप में परिवर्तित कर लिया। पुनः वे भगवान शंकर के रूप में परिणत हो गए। इतना देखने के बाद मुझसे नहीं रह गया और मेरी आँखें खुल गयीं।

सिद्ध योगी ने पूछा—तुमने क्या देखा? मैंने सारी बातें सुना दीं तथा मैंने उनसे जिज्ञासा की कि अन्तवाला दृश्य जो मैंने देखा है उसका रहस्य समझना चाहता हूँ। उन्होंने यह बताते हुए कहा कि वह सिद्ध सन्त ही गिरनारी हैं। इसीलिए गिरनार में जय गिरनारी की आवाज लगाने की प्रथा है। तुमने जो यह कहा था कि शंकर कोई और हैं एवं दत्तात्रेय अलग हैं, यह बात नहीं है; सभी केवल एक ही परमात्मा के अंश हैं। भेद दृष्टि तो जीव में ही है। सिद्ध योगी ने आगे बताते हुए कहा कि अन्तिम दृश्य जो तुमने देखा है वह इस बात का प्रमाण है कि सभी उपासनाओं से लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है।

तत्पश्चात् मुझे बहुत दिनों तक उनके पास रहकर योग के गूढ़तत्व को जानने का अवसर मिला। आखिर एक दिन मुझसे उन्होंने कहा कि तुम यहाँ में चले जाओ। मैंने कहा कि मैं तो अब यहाँ से आपको छोड़कर नहीं जा सकता हूँ। उन्होंने कहा—मेरी बात मानो और जाकर योग-प्रचार, धर्म-प्रचार एवं सामाजिक कार्यों को करो जिससे लोकहित, राष्ट्रहित एवं विश्व का कल्याण हो। मैंने कहा कि स्वामी जी सामाजिक कार्यों में बड़ा ही प्रपञ्च है। उन्होंने कहा—सामाजिक सेवा भगवान् की सेवा है। गीता के कर्म योग के अनुसार कर्म करो। फिर उन्होंने गीता का यह श्लोक सुनाया—

> कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
> योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये॥ (गीता ५।११)

अर्थात् कर्मयोगी चित्त की शुद्धि के लिए फल की आसक्ति छोड़कर ममताशून्य होकर देह, मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा भी कर्म करते हैं।

तदुपरान्त सिद्ध योगी के निर्देशानुसार मैं विदा लिया। उनके निर्देशों को लक्ष्य बनाते हुए योग के शास्त्रीय अनुभव, समय-समय पर मिले सिद्ध-

योगियों से प्राप्त अनुभव एवं शरीर विज्ञान के अनुसार वैज्ञानिक विश्लेषण का दीर्घकाल तक अनुभव करने के पश्चात् लोकहितार्थ मैं इस ग्रन्थ को लिखने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ क्योंकि आजकल योग से सम्बन्धित बाजार में जो पुस्तकें मिलती हैं उनमें से अधिकांश यौगिक क्रियाओं को तोड़-मरोड़कर, अनुभवहीनता के आधार पर लिखी गयी हैं। उनकी कथनी और करनी में कोई सामंजस्य नहीं है। वे जिन यौगिक क्रियाओं का उल्लेख करते हैं उनका चित्र भी नहीं है। अगर है भी तो वह न होने के बराबर है। उन्हें यह मालूम नहीं कि किन यौगिक क्रियाओं में किन अंगों को कितनी डिग्री पर रखने से क्या लाभ होता है? किस अंग को कितनी डिग्री पर रखने से कौन-सी योग नाड़ी में क्या गति होती है? इन अनुभवों के बगैर ऐसे हो लोग बड़े-बड़े साइनबोर्डों पर योग का प्रचार कर रहे हैं। ऐसा योग रोग के अलावा और क्या लाभ दे सकता है। इसीलिए कहा जाता है कि "देखा देखी करे योग, छीजे काया बाढ़े रोग"। ऐसे योग-ग्रन्थों एवं योगाचार्यों से योग-साधक को सावधान रहना चाहिए। उपयुक्त और सही ढंग से योग करने पर जितना लाभ मिलता है उतना ही गलत तरीके से करने पर हानि होती है। अतएव साधक को बड़ी सावधानीपूर्वक योग मार्ग में प्रवृत्त होना चाहिए। बहुत अनुभव करने के बाद मैंने उपर्युक्त तथ्यों को जिज्ञासुओं के समक्ष इस पुस्तक के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

आजकल अनेक विद्यालय एवं महाविद्यालयों में योग-शिक्षा को भारत सरकार ने अनिवार्य कर दिया है। ऐसी स्थिति में योग पढ़ने वाले छात्रों के समक्ष आधुनिक पद्धति से योग को समझने में कठिनाई प्रतीत हो रही है क्योंकि अभी तक वैज्ञानिक पद्धति से लिखे गये योग-ग्रन्थों का प्रायः अभाव है। आशा है कि उन छात्रों को यह पुस्तक समुचित पथ-प्रदर्शन करेगी। साथ ही साथ आम जनता को भी इस पुस्तक से स्वास्थ्य लाभ में सुविधा मिलेगी तथा साधकों को संतुलित ढंग से साधना कर सकने में सहायता मिलेगी।

साधारण तौर पर प्रत्येक विषय को सीखने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है और योग जैसे गूढ़ विषय के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है। मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक योग-विज्ञान के जिज्ञासुओं को अन्धकार में दीपक जैसा पथ-प्रदर्शन कर उनके योग-मार्ग को प्रशस्त करने में उपयोगी सिद्ध होगी।

इस पुस्तक में कुल सात अध्याय हैं। पहला अध्याय है "योग का

अर्थ"। इस अध्याय में योग शब्द की उत्पत्ति के साथ ही इसके विभिन्न अर्थों के सम्यक सम्बन्ध की जानकारी दी गई है।

द्वितीय अध्याय में विभिन्न प्रकार के योगों का विवेचन उपस्थित किया गया है एवं इनके पारस्परिक सामंजस्य पर भी सम्यक् रूप से विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय षट्कर्म से सम्बन्धित है। षट्कर्म की क्रिया जैसे कुंजल, नेति, धौति कपालभाति, नौलि, वस्ति तथा त्राटक क्रियाओं का सचित्र विधि एवं सावधानियों सहित विवेचन किया गया है। किन साधनों को यह क्रिया योग साधना में प्रवेश करने के पूर्व करना चाहिए, किन्हें नहीं करना चाहिए, इन बातों की विस्तृत जानकारी दी गई है। इस अध्याय में शंख-प्रक्षालन एवं अग्निसार जैसी शरीर-शोधक क्रियाओं से भी अवगत कराया गया है।

चौथा अध्याय प्राणायाम का है जिसमें प्राण क्या है? जीव का प्राण-वायु से सम्बन्ध होने के कारण इसका जीवन किस प्रकार प्रभावित होता है? प्राणवायु के विभिन्न भेदों की चर्चा की गई है। प्राणायाम योग मार्ग के लिए क्यों आवश्यक है? इनके विभिन्न प्रकारों की वन्ध सहित वर्णन किया गया है। साथ ही साथ शरीर क्रिया विज्ञान पर इसके वैज्ञानिक प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। योगी को कैसा आहार लेना चाहिए? इसे भी दर्शाया गया है।

पाँचवा अध्याय योग मुद्रा से सम्बन्धित है जिसमें विभिन्न यौगिक मुद्राओं की व्याख्या की गई है तथा मुद्रा को दो मुख्य भाग—प्राणायामिक एवं अप्राणायामिक मुद्रा में बाँटकर उसका विश्लेषण किया गया है। यद्यपि शास्त्रों में मुद्रा के ये दो भाग देखने को नहीं मिलते हैं। उसका कारण यह है कि ऋषि-महर्षियों द्वारा निर्मित शास्त्र-पुराण मूलतः सूत्र रूप में हैं। उनकी व्याख्या तो शास्त्रों के साक्षात्कार से ही अनुभव में आ सकती है। इसीलिए योग को अनुभव का विषय (yaga is a subject of Realision) कहा गया है। अस्तु शास्त्रीय योग का अपने अनुभव की कसौटी पर खड़ा उतरने के पश्चात् हो इस ग्रन्थ में मुद्रा के सम्बन्ध में जिक्र किया गया है।

छठा अध्याय स्वर विज्ञान से सम्बन्धित है। स्वर विज्ञान अभी तक एक रहस्यमयी विद्या बनी हुई है क्योंकि इसकी वास्तविक जानकारी करने

वाले व्यक्तियों का प्रायः अभाव-सा हो चुका है क्योंकि काल के प्रवाह में यह विद्या लुप्त-सी हो गयी है।

यद्यपि इस विद्या का मूल शास्त्रीय अंग शिव स्वरोदय एवं समर-सार हैं। परन्तु इसका पौराणिक विवेचन सूत्र रूप में होने के कारण व्यावहारिक तौर पर समझने में काफी कठिनाई होती है। इस परेशानी को दूर करने के लिए इस ग्रन्थ में सम्यक् प्रकार से समझाया गया है ताकि साधारण लोग भी इस विद्या का लाभ उठा सकें। इस ग्रन्थ में स्वर-विज्ञान के मूल-भूत सिद्धान्त जो पंच-तत्त्व पर आधारित हैं, की विस्तृत व्याख्या की गई है।

अभी तक स्वर विज्ञान से सम्बन्धित शास्त्रीय-ग्रन्थों को छोड़कर अन्य पुस्तकों में उल्लिखित तथ्य इस विद्या का रहस्य खोलने में प्रायः असमर्थ रहे हैं। परन्तु इस पुस्तक में वर्णित विषयों को स्पष्ट करने की अधिकाधिक चेष्टा की गई है।

साँतवा अध्याय 'यौगिक चिकित्सा' है जिसमें योग के द्वारा विभिन्न रोगों की चिकित्सा के सम्बन्ध में जानकारी करायी गयी है। शारीरिक रूप से दुर्बल एवं असमर्थ व्यक्तियों के रोगों की चिकित्सा के लिए अनुभूत जड़ी-बूटियों के नुस्खे भी दिये गये हैं।

योग क्रिया के व्यावहारिक स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए यौगिक आसनों एवं मुद्राओं, षट्कर्म आदि के अनेक चित्र भी पुस्तक में दे दिये गये हैं।

ग्रंथ प्रकाशन के समय डॉ० रामजी मालवीय जी ने 'सम्मति' रूप में शुभकामना के कुछ शब्द लिखकर अनुग्रह किया है। इसके लिए मैं उनके प्रति अनुगृहीत हूँ। श्री भरत मिश्र जी के कुछ शब्द 'परिचय' रूप में ग्रंथ के ऊपर उद्धृत करने के लिए मैं उनका चिर ऋणी हूँ। डॉ० रामहर्ष सिंह जी ने प्राक्कथन लिखकर पुस्तक के गौरव को बढ़ाया है। मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ। मैं चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी के व्यवस्थापक का विशेष आभारी हूँ जिनके सत्प्रयास से पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो सका।

श्रीरमण

महात्यागी सेवा आश्रम ट्रस्ट

K ४/३१, हनुमानगढ़ी

पो० गायघाट, (वाराणसी) यू० पी०

विषय-सूची

पहला अध्याय ३
योग का अर्थ ३
द्वितीय अध्याय १३
विभिन्न प्रकार के योग १२
कर्मयोग १२
भक्तियोग १४
हठयोग १४
मन्त्रयोग १६
ज्ञानयोग १७
रजयोग १७
अष्टांग योग १८
तृतीय अध्याय : षटकर्म ३४
कुञ्जल ३६
धौति ३७
नेति ३९
कपालभाति ४२
नौलि ४३
बस्ति ४६
त्राटक ४९
बाह्यत्राटक ४९
आभ्यान्तर त्राटक ५०
मध्यत्राटक ५१
अग्निसार ५३
बाघी ५३
शंख प्रक्षालन ५५
ताड़ासन ५६
पादहस्तासन ५६
हस्तउर्ध्वासन ५६
हस्तकटिचक्रासन ५६
भुजङ्गासन ५६
उदरकर्षाषण ५७
मयूरासन ५७
पवनमुक्तासन ५८
नौकासन ५९
ब्रह्मचर्यासन ५९
शंखप्रक्षालन से लाभ ५९
चतुर्थ अध्याय : प्राणायाम ६१
प्राण ६१
प्राण के भेद ६३
प्राणवायु ६३
अपानवायु ६३
समानवायु ६४
व्यानवायु ६४
नाग ६४
कूर्म ६५
कृकल ६५
देवदत्त ६५
धनञ्जय ६५
नाड़ी ६५
इड़ा नाड़ी ६५
पिंगला नाड़ी ६६
सुषुम्ना ६७
वैयक्तिक और समष्टि प्राण ६८
प्राणवायु ६९
श्वास-प्रश्वास और आयु का सम्बन्ध ७१
योग दर्शन के अनुसार प्राणायाम ७२
प्राणायाम की आवश्यकता क्यों ७२
प्राणायाम के अंग ७६
विषयाक्षेपी प्राणायाम ८०
प्राणायाम का महत्व ८१
प्राणायाम के लिए उपयुक्त समय ८३
प्राणायाम की तैयारी। ८३
प्राणायाम में प्रयोग होने वाले बन्ध ८४
मूलबन्ध ८५
जालन्धर बन्ध ८५
उड्डीयान ८६

प्राणायाम के भेद ८६
नाड़ी शोधन प्राणायाम ८६
सूर्यभेदी प्राणायाम ८७
चन्द्रभेदी प्राणायाम ८८
उज्जायी प्राणायाम ८८
सीत्कारी प्राणायाम ८९
शीतली प्राणायाम ८९
भस्त्रिका प्राणायाम ९१
भ्रामरी प्राणायाम ९२
मूर्च्छा प्राणायाम ९३
प्राणायाम के बाद क्या करें ९४
शवासन करने की विधि ९४
प्राणायाम में ली जानेवाली सावधानियाँ ९५
प्राणायाम का वैज्ञानिक विश्लेषण एवं शरीर पर उसका प्रभाव १०१
समाधि के परिप्रेक्ष्य में प्राणायाम का वैज्ञानिक दृष्टिकोण १०४
समाधि की स्थिति में प्राणायाम का फल १०४
समाधि के लिए प्राणायाम का क्रम १०५
यौगिक आहार १०६
प्राणायाम में जल्दी बाजी से खतरे की संभावना १०६

पञ्चम अध्याय : मुद्रा ११०

प्राणायामिक मुद्रा १११
महामुद्रा ११२
महाबन्ध ११२
महावेध या ताड़न मुद्रा ११२
विपरीतकरिणी ११३
योनिमुद्रा या षण्मुखी मुद्रा ११४
शक्तिचालिनी मुद्रा ११४
योगमुद्रा ११५
अप्राणायामिक मुद्रा ११५
नभो मुद्रा ११६
खेचरी ११६
शाम्भवी मुद्रा ११८
अगोचरी मुद्रा ११९
भूचरी मुद्रा ११९
चाचरी मुद्रा ११९
ब्रह्मांजलि मुद्रा १२०
ज्ञान मुद्रा १२०

षष्ठ अध्याय : स्वर विज्ञान १२१

उम्र के साथ स्वर का सम्बन्ध १२२
स्वरोदय १२४
स्वर का नाम १२४
स्वर पहचानने का तरीका १२५
स्वर परिवर्तन का तरीका १२५
स्वर प्रवाह का सिद्धान्त १२५
चन्द्र सूर्य स्वर का ज्ञान चक्र १२६
पंच तत्वों का उदय १२६
स्वर का तत्वज्ञान जानने की विधि १२७
नासिका में स्वर का स्थान १२७
स्वर की आकृति से तत्वज्ञान १२७
तत्वों का रंग के आधार पर पहचान १२७
स्वादों से तत्वज्ञान १२८
स्वर की लम्बाई के अनुसार तत्वज्ञान १२८
प्रश्वास प्रवाह की दिशा के आधार पर तत्वज्ञान १२८
तत्वों के उदय काल की अवधि १२८
घटी, पल तथा घंटा, मिनट का सम्बन्ध १२९
तत्व-पहचान-तालिका १२९
वाम स्वर का फल १३०
सुषुम्ना स्वर का फल १३०
कार्य-सिद्धि के स्वर १३०
पुत्र-प्राप्ति के लिए १३२
पुत्री-प्राप्ति के लिए १३३
बाँझ स्त्री को सन्तान प्राप्ति के लिए १३४
भाग्योदय के लिए १३४
अग्नि बुझाने का कौशल १३४
शत्रुवशीकरण १३५
स्वर से मृत्यु, बीमारी, शान्ति आदि की सूचना १३५

दिन में स्वर परिवर्तन होने का फल १३५
समय में स्वर परिवर्तन होने का फल १३६
वर्षों स्वर १३६
दक्षिण स्वर १३७
मृत्यु का ज्ञान १३७
स्वर से वर्षफल का निर्णय १३८
स्वर से प्रश्न १३८
स्वर से प्रवासी प्रश्न १३९
स्वर से युद्ध प्रश्न १४०
स्वर से औषधि १४०
ज्वर में १४०
शिर-पीड़ा में १४०
आधा सीसी या अधकपाड़ी में १४०
अजीर्ण में १४१
दाँतों का दुखना या हिलना १४१
छाती-पीठ-कमर-पेट आदि की पीड़ा में १४१
दमा या श्वास रोग में १३१
सप्तम अध्याय : यौगिक चिकित्सा १४३
मधुमेह (Diabetes) १४३
उच्चरक्त-चाप १४४
हृदय की धड़कन १४४
अम्ल-पित्त (Hyper Acidity) १४४
गैस्ट्रिक ट्रबुल १४४
वायु-विकार (Fiatulance) १४४
दमा, खाँसी, सर्दी (Common cold) १४४
कुष्टरोग (Leprosy) १४५
नेत्र में फूली-जाला १४५
किसी तरह की मानसिक वेचैनी होने पर १४५
कब्जियत (Constipation) १४५
पेचिस (Amoebic Dysentry) १४५
प्रदररोग १४६
अल्परजः स्रावः (Ammenorrhoea), अतिरजःस्राव (Dismenorrhoea) या मासिक धर्म में किसी तरह की गड़बड़ी हो तो १४६
गर्भच्युति (Abortion) अर्थात् बार-बार गर्भपात हो जाता हो तो १४६
वन्ध्यापन (Female sterlity) १४६
नयी हार्निया १४६
स्वप्नदोष (Wet Dreams) १४६
साइटिका (Sciatica), गठिया (Arthritis) १४६
डायरिया (Dirriahoea) १४७
संग्रहणी १४७
ज्वर (Faver) १४७
पक्षवध या पक्षाघात (Paralysis) १४७
दाँतो का दर्द या मसूड़ों का फूलना या दर्द होना या जिह्वा में छाला पड़ जाना १४८
शरीर में गौर वर्ण की प्राप्ति के लिए १४८
मोटापा (Obesity) दूर करने के लिए १४८
दिनाय, खुजली, त्वचा में जलन या अन्य किसी प्रकार के चर्म रोग में १४८
आँख, नाक और कान के सभी तरह के रोगों के लिए १४८
आँख को आकर्षक वनाने के लिए १४८
सेक्सग्लैण्डस् (Sex glands), ovary और Testes सम्बन्धित व्याधियों के लिए १४८
यौवनावस्था आने पर भी जिन वालिकाओं को द्वितीयक लैङ्गिक लक्षण (Secondary Sexual charecter) का विकास न हो पाया हो उनके लिए १४९

निद्रा, तन्द्रा एवं आलस्य को दूर करने के लिए १४९
मन्द बुद्धि मस्तिष्क (Mental Retardation) को चेतन बनाने के लिए १४९
बाल पकना या गिरना १४९
पित्त-विकार १४९
गले में खरास रहता हो या ध्यान काल में गला सूखता हो १४९
स्वभाव से लज्जालु व्यक्तियों के लज्जा दूर करने के लिए १४९
तीक्ष्ण बुद्धि बनाने के लिए १४९
हाथी पाव या फिलपाँव १५०
फोड़ा-फुन्सी में १५०
शरीर की कृशता दूर करने के लिए १५०
सरदर्द १५०
पीठ दर्द में १५०
तनुकमिजाजी, थकावट, अनिद्रा १५०
अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से सम्बन्धित रोगों को दूर करने के लिए १५०
छात्रोपयोगी कुछ यौगिक क्रियायें १५१

चित्र-सूची

चि० सं०	चित्र-विवरण		पृष्ठांक
१	कुञ्जल जल पीते हुए	...	३६
२	कुञ्जल जल निकालते हुए	...	३७
३	धौति	...	३८
४	सूत्रनेति	...	४०
५	जलनेति	...	४१
६	कपालभाति	...	४२
७	मध्यनौलि	...	४३
८	सिद्धासन में आभ्यान्तर त्राटक	...	५०
९	ताड़ासन पीछे की ओर	...	५५
१०	पादहस्तासन	...	५६
११	हस्तउर्ध्वासन (दक्षिणावर्त्त)	...	५७
१२	हस्तकटिचक्रासन	...	५८
१३	भुजंगासन (वामवर्त्त)	...	५९
१४	उदरकर्षापण (दक्षिणावर्त्त)	...	६०
१५	मयूरासन	...	६१
१६	पवनमुक्तासन	...	६२
१७	नौकासन	...	६३
१८	ब्रह्मचर्यासन	...	६४
१९	जालन्धर बन्ध	...	८५
२०	उड्डीयान बन्ध	...	८६
२१	शवासन	...	९४
२२	विपरीतकरिणी	...	११३
२३	योनिमुद्रा	...	११४
२४	योगमुद्रा (वज्रासन में)	...	११५
२५	खेचरी मुद्रा	...	११६
२६	ब्रह्मांजलि मुद्रा (सिद्धासन में)	...	१२०
२७	ज्ञानमुद्रा (पद्मासन में)	...	१२१

योग
का
वैज्ञानिक रहस्य

प्रथम अध्याय

योग का अर्थ

योग एक गूढ़ एवं जटिल शब्द है। इसका व्यवहार बहुत ही व्यापक अर्थ में किया जाता है और इसका क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। जितने अर्थों में योग शब्द का प्रयोग हुआ है, शायद ही किसी अन्य शब्द का उतने अर्थों में प्रयोग हुआ हो। कोषों में चौदह अर्थों में इसका प्रयोग हुआ है।

नयी चीज की प्राप्ति, संगति (Realisation), ध्यान (Meditation), युक्ति (Technic), शरीर की दृढ़ता, ज्योतिषियों के विष्कुम्भक आदि योग, औषधि, विश्वासघाती, द्रव्य, उपाय, विधि (Method), कवच, तन्त्र-मन्त्र-क्रिया, कर्मठ आदि अर्थों में इसे व्यवहृत किया गया है।

योग शब्द संस्कृत के 'युज्' धातु से बना है जिसका अर्थ है जोड़ना अर्थात् किसी वस्तु से अपने को जोड़ना अथवा किसी कार्य में लगाना। अंग्रेजी का योक (yoke) शब्द भी उसी धातु से बना है जिसका भाव है 'To go into harness' अथवा 'To buckle to' अर्थात् कार्य के लिए आरूढ़ हो जाना, कमर कस लेना। जिस प्रकार के उद्देश्य की सिद्धि करनी होती है, उसी प्रकार का उद्योग भी करना होता है। इसलिए उद्योग मानसिक और शारीरिक दोनों हो सकता है। जीवन की पूर्णता प्राप्त करने के लिए मन से और शरीर से जो क्रिया करनी होगी उसे योग कहते हैं।

पाणिनिगण पाठ में तीन 'युज्' धातु हैं। दिवादिगणीय के "युज्" जिसका अर्थ है 'समाधि', रुधादिगण में जिसका अर्थ है 'संयोग' और तीसरा चुरादिगण में जिसका अर्थ है 'संयमन'।

दिवादिगणीय 'युज्' धातु –

इस 'युज्' धातु का अर्थ है—समाधि। इसका प्रकृति प्रत्यय करने पर

सम् + आ + धा + कि

सम् = सम्यक्। आ + धा—स्थापन। यहाँ किप् प्रत्यय धात्वार्थक है।

सम्यक् स्थापन समाधि शब्द का प्रकृति प्रत्यय द्वारा प्राप्त अर्थ है। चित्त को इस प्रकार एक नाड़ी में केन्द्रित करना पड़ता है जिसके द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। जब मन का संयोग सुषुम्नान्तर्गत चित्रिणी नाड़ी से होता है तब योगारम्भ होता है। परन्तु जब मन का प्रगाढ़ संयोग सुषुम्नान्तर्गत ब्रह्मनाड़ी से होता है तब पूर्ण समाधि की स्थिति प्राप्त होती है।

रुधादिगणीय 'युज्' धातु :—

इस 'युज्' का अर्थ है—'युजिर योगे' अर्थात् संयोग (जोड़ना) है। 'युज्यतेऽसौ योगः' जो युक्त करे, मिलावे उसे योग कहते हैं।

'तं विद्याद्दुःख संयोग वियोगं योग संज्ञितम्।' (गीता ६–२३)

अर्थात् दुःखरूप संसार के संयोग से रहित होने का नाम ही योग है।

यह गीता-वचन भी वियोग बोधक योग शब्द के निर्देश के द्वारा धादिगणीय 'युज्' धातु को योग शब्द की प्रकृति रूप में ग्रहण करने का संकेत करता है।

योग का आध्यात्मिक अर्थ है वह साधन जिसके द्वारा योगी को जावात्मा और परमात्मा के साथ ज्ञानपूर्वक संयोग होता है या संयोग कराने की प्रक्रिया बतलाती है।

चुरादिगणीय 'युज्' धातु :—

संयमन अर्थवाली चुरादिगणीय 'युज्' धातु का सम्बन्ध भी 'वशीकृतस्य मनसः' से है। अर्थात् मन को वश में करना ही मन का संयमन है। पातञ्जलदर्शन में भी समाधि में संयमन के विशेष संबंध की सूचना है—'त्रयमेकत्र संयमः।' समाधि के अन्तरंग प्रत्याहार, धारणा और ध्यान—इन तीनों को एक ही साथ संयम नाम दिया गया है। इस प्रकार त्रिविध 'युज्' धातु ही योग शब्द के मूल में वर्त्तमान है।

व्याकरण शास्त्र में योग का अर्थ :—

व्याकरण में भी योग का प्रयोग धातु प्रत्ययगत अर्थ यौगिक (रूढ़ नहीं) होता है। Etymological meaning 'प्रकट करना' भी होता है।

गणित शास्त्र में योग शब्द का अर्थ :—

इसमें इसका अर्थ जोड़ (Addition), योगफल (Consequence Result) प्रयुक्त होता है ।

रसायन शास्त्र में योग शब्द का अर्थ :—

दो विभिन्न पदार्थों को अपना-अपना स्वरूप खोकर एक अद्‌भुत पदार्थ में परिणत होने का नाम भी योग (Chemical combination) है । जैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर जल के रूप में परिणत हो जाता है ।

परन्तु यहाँ जिस योग की चर्चा का विषय है, वह उपर्युक्त तीनों अर्थों से भिन्न है ।

महर्षि व्यास के अनुसार योग का अर्थ :—

'योगस्समाधिः' योग को समाधि बतलाया है, जिसका भाव यह है कि जीवात्मा इस उपलब्ध समाधि के द्वारा सच्चिदानन्द (सत् + चित् + आनन्द) स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करे ।

चित्त की एकाग्रता के द्वारा अन्तःकरण और शरीर से पृथक् हुए आत्मा का साक्षात्कार करना ही योग का लक्षण है ।

उपाय अर्थ में योग :--

'अथ तद्दर्शनाभ्युपायो योगः ।'

उस परमात्मा को जानने के लिए जिस ज्ञान का उपाय (Technic) किया जाता है वह योग है ।

पूर्णता अर्थ में योग : -

योग का अर्थ पूर्णता (Completeness) अर्थ में भी होता है । अर्थात् किसी चीज को उसके ठीक स्वरूप में रखना (To put a thing in balence order and its prospective)

रहस्यवाद के अर्थ में योग :--

योग का अर्थ रहस्यवाद (Mysticism) है ।

रहस्यवाद सत्यरूप परमात्मा के साथ एकत्व सम्पादन करने की विद्या है ।

"Mysticism is the art of union with Reality".

मनुस्मृति के अनुसार :—

"ध्यानयोगेन सम्पश्यद्गतिमस्यान्तरात्मनः ।"

(मनुस्मृति ६।७३)

ध्यान-योग से ही आत्मा को जाना जा सकता है। इसीलिए ध्यान-योग परायण होना चाहिए।

"सूक्ष्मतां चान्वपेक्षेत योगेन परमात्मनः ।" (मनुस्मृति)

अर्थात् योगाभ्यास से परमात्मा की सूक्ष्मता को देखें।

याज्ञवल्क्य के अनुसार : –

इज्याचारदमाहिंसा दानस्वाध्यायकर्मणाम् ।
अयं तु परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम् ।। (याज्ञवल्क्य)

अर्थात् यज्ञ, आचार, दम, अहिंसा, दान, स्वाध्याय कर्मों के मध्य में यही परमधर्म है कि योग से आत्मा का ज्ञान हो।

सांख्य शास्त्रानुसार : –

"पुं प्रकृत्योर्वियोगेऽपि योग इत्यभिधीयते ।"

अर्थात् पुरुष-प्रकृति का पृथकत्व स्थापित कर अर्थात् दोनों का वियोग करके पुरुष के स्वरूप में स्थित हो जाना योग है।

गौतम के अनुसार :—

"समाधि विशेषाभ्यासात् ।"

(गौतम न्याय सूत्र ४।२।३८)

अर्थात् समाधि विशेष के अभ्यास से तत्वज्ञान उत्पन्न होता है।

आदित्यपुराण के अनुसार :--

"योगात् सञ्जायते ज्ञानं योगोमय्येकचित्तता ।"

(आदित्यपुराण)

'योग से ज्ञान उत्पन्न होता है और योग नाम ईश्वर विषयक चित्त की एकाग्रता का है।'

स्कन्दपुराण के अनुसार :—

"आत्मज्ञानेनमुक्तिः स्यात् तच्च योगदृते न हि ।" (स्कन्दपुराण)

आत्मज्ञान से मुक्ति होती है और वह ज्ञान योग के बिना दुर्लभ है।

कूर्मपुराण के अनुसार :-

"योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम्।
प्रसन्ने जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति ॥" (कूर्मपुराण)

योगरूप अग्नि शीघ्र निखिल के पापपञ्जर पुञ्ज को जलाकर नष्ट कर देता है। उस पाप के दग्ध होने से प्रतिबन्धरहित ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान से निर्वाण संज्ञक मोक्ष प्राप्त होता है।

कठोपनिषद के अनुसार :-

'अध्यात्मयोगाधिगमेनं देवं
मत्वा धीरो हर्ष शोकौ जहाति।" (कठोपनिषद्)

उस परदेव को अध्यात्मयोग के ज्ञान से भली प्रकार जानकर विद्वान पुरुष हर्ष और शोक को त्याग देता है।

कैवल्योपनिषदानुसार :-

"श्रद्धा भक्ति ध्यान योगादवेहि।" (कैवल्योपनिषद)

अर्थात् श्रद्धा, भक्ति और ध्यान के द्वारा आत्मा को जानना योग है।

मिस्ट्रीयस कुंडलिनी के अनुसार :-

Yoga is the science which raised the Capacity of the human mind to respond to higher vibrations and to percieve, catch and assimilate the infinite conscious movements going on around us in the universe.

(Mysterious Kundalini)

योग उस विद्या को कहते हैं जो मनुष्य के अन्तःकरण को इस योग्य बना देवें कि वह उच्चस्फुरणों के अनुकूल होता हुआ संसार में हमारे चारों ओर जो असीम सज्ञान व्यापार हो रहा है उनको बिना किसी भी मदद के जाने, ग्रहण करे और स्वांगीकरण करे।'

Yoga is a self concentration with a view to seeing the soul as it looks when it is abstracted from mind and matter.

(Mysterious Kundalini P. 10)

"चित्त की एकाग्रता के द्वारा अन्त:करण और शरीर से पृथक् हुए आत्मा का साक्षात्कार करना योग है।"

गीता के अनुसार योग का अर्थ :—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

(गीता २।४८)

'योगः कर्मसु कौशलम्' (गीता २।५०)

'जो कुछ भी कर्म किया जाय उसे पूर्ण होने न होने में तथा उसके फल में समभाव रहने का नाम समता योग है।'

'कर्मों में चतुरता (विशेषज्ञता) को, कौशल (Skill in Action) को योग कहते हैं।'

उपर्युक्त योग की एक ही जगह दो परिभाषा देखकर यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि दोनों योग एक ही है या दोनों में भिन्नता है। परन्तु, दोनों परिभाषा एक ही बात का द्योतक है, जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है।

समत्व योग वह है जिससे अभीष्ट की सिद्धि-असिद्धि, हार-जीत, हानि-लाभ आदि का दिल-दिमाग पर चोट न पहुंचे और हर हालत में वह एक सा रहे, निर्द्वन्द्व रहे तथा जनक की तरह हिम्मत से कह सके कि समूची मिथिला नगरी जली सही, लेकिन मेरा क्या जला ?

"मिथिलायां प्रदग्धायां न मे किञ्चन दह्यते।"

क्योंकि जब किसी भी कर्म में आसक्ति होती है तभी उसके भले या बुरे फल का प्रभाव हमारे दिल-दिमाग पर पड़ता है और उसके अनुसार ही संस्कार बन जाता है फिर वही संस्कार पाप और पुण्य के रूप में कर्म के परिपक्व अवस्था में उदय होता है। इसी कर्मफल को भुगतने के लिए ही विभिन्न योनियों में जन्म लेना पड़ता है और इस तरह से जन्म-मृत्यु का चक्र चलता रहता है। अतएव बुद्धिमानी इसी में है कि इस चक्र में न पड़ें और जब यह दशा प्राप्त हो जाती है, तो दिल-दिमाग एकरस, संतुलित (Balanced) रहता है। सम रहता है। इसी दशा का नाम समत्व है।

इसीलिये बुद्धियोग-युक्त-ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर जन्म-रूप-बन्धन से छुटे हुए अमृतमय परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं।

कर्मजं हि बुद्धियुक्तो फलं त्यक्त्वा मनोषिण:।
जन्म बन्ध विनिर्मुक्ता: पदं गच्छन्त्यनामयम्।। (गीता २।५१)

आसक्ति को त्यागकर हानि-लाभ में समान रहने से हमारे अन्तः-करण में कोई संस्कार नहीं बनता है। अत: यह मार्ग मोक्ष को देने वाला है। इसलिये इस कर्मयोग की अन्तिम परिणति मुक्ति (Salavation) है और वास्तव में राज्ययोग का भी चरम लक्ष्य यही है। अतः इन योगों में कोई भेद नहीं है।

अतएव जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है वह पुरुष जल में कमल के पत्तों के सदृश पाप से लिपायमान नहीं होता है।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा करोति य:।
लिप्यतेन स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।। (गीता ५।१०)

ऐसा विचार कर ही निष्काम कर्मयोगी केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर के द्वारा भी आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करते हैं।

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिन: कर्म कुर्वन्ति सङ्गंत्यक्त्वात्मशुद्धये।। (गीता ५।११)

इस तरह अनासक्त बुद्धि-युक्त-पुरुष निष्काम कर्म के द्वारा निर्वाणपद को प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि कोई भी पुरुष किसी काल में क्षणमात्र भी बिना कार्य किये नहीं रह सकता। निःसन्देह सभी पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा परवश हुए कर्म करते हैं।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत्।
कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै:।। (गीता ३।५)

कर्म प्रधान संसार है, 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा।' इस तरह कर्म की आसक्ति से बचने की कोशिश में बुद्धिमानी है जिससे फल भोगना न पड़े। इसी बुद्धिमानी को, चातुरी को, कौशल को, दक्षता (Expertness) को, विशेषज्ञता (Specelisation) को योग कहते

हैं। यह कौशल उपर्युक्त अनासक्ति या समता ही है। इस प्रकार से देखने पर दोनों में विरोध कहाँ है। बात असल यह है कि ४८ वें श्लोक में समत्व नामक जिस योग का उल्लेख किया गया है उसी का विशदीकरण ४९, ५०, ५१ आदि आगे के श्लोकों में किया गया है और कहा है कि कर्मों को ऐसी बुद्धिमता से सम्पादन करे कि सुकृत-दुष्कृत या भले-बुरे कर्मों तथा उनके फलों में आसक्ति न हो। यही बुद्धिमता "योगः कर्मसु कौशलम्" है।

योगदर्शन के अनुसार योग का अर्थ :—

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। (योग० १।२)

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है। यहाँ "निरोध" शब्द को समझने के लिये चित्त की पाँच अवस्थाओं को समझना आवश्यक है क्योंकि, योगशास्त्र के अनुसार चित्त की निरोधावस्था ही योग है। अन्य अवस्थाओं को योग भूमि में अंगीकार नहीं किया जाता है। परन्तु योगसाधना के योग्य एकाग्रावस्था है, शेष तीनों अवस्थायें साधक के लायक नहीं हैं। चूँकि चित्त त्रिगुण है, उसमें सत्व, रज और तम तीनों गुण विद्यमान हैं। अतः उन गुणों के धर्म भी उसी में रहते हैं। चित्त को ये तीनों गुण अपनी स्थिति के अनुसार प्रभावित करते हैं।

चित्तवृत्ति की पाँच अवस्थाओं के नाम हैं--मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त एकाग्र और निरुद्ध।

मूढ़ावस्था :—

जब चित्त तमोगुण के द्वारा अनुविद्ध रहता है तो चित्त की वह स्थिति मूढ़ावस्था कहलाती है। यह अवस्था तमोगुण प्रधान होने के कारण हानि-लाभ के विचार से रहित, अपने तुच्छ भोगो के लिये पर-पीड़न और हिंसा-परायण, काम-क्रोध, अधर्म, अज्ञान, अनैश्वर्य, निद्रा आदि से पूर्ण प्रवृत्त रहती है। यह अवस्था नीच और पापी पुरुषों का होता है।

क्षिप्त :—

चित्त में तमोगुण और रजोगुण की प्रधानता होने पर क्षिप्त अवस्था होती है। इस अवस्था में केवल स्वार्थभोग की प्रवृत्ति होती

है। इसमें चित्त अणिमादि ऐश्वर्यों और शब्द आदि पंच विषयों में अनुरक्त रहता है। यह अवस्था साधारण भोगी (संसारी) पुरुषों की होती है।

विक्षिप्त :—

जब चित्त पूर्णतया रजोगुण से सम्बद्ध रहता है, तो इसे विक्षिप्तावस्था कहते हैं। ऐसे पुरुषों का चित्त कभी परमार्थ की तरफ, कभी विषयों की तरफ दौड़ता है। इस अवस्था में चित्त अव्यवस्थित और चंचल होता है। यह अवस्था जिज्ञासुओं की होती है।

एकाग्रावस्था :—

जब चित्त में रजोगुण और तमोगुण अंशमात्र भी नहीं रहता, केवल सत्वगुण रहता है; उस समय चित्त अपनी वास्तविक अवस्था में रहता है। यही चित्त की एकाग्रावस्था है। इसी को सम्प्रज्ञात समाधि भी कहते हैं। इस अवस्था में चित्त की चञ्चलता बिलकुल नष्ट हो जाती है एवं चित्त साध्य-विषय में लग जाता है। यह अवस्था सत्त्वगुण प्रधान पुरुषों की होती है।

निरुद्धावस्था (Stage of pure conscionsuess) :—

सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों का पूर्णतया शान्त हो जाना निरुद्धावस्था कहलाती है। इस अवस्था में विवेक ख्याति का भी विराग हो जाता है। इसमें चित्त का स्वरूप कुछ भी नहीं रहता है। इसलिए योगीजन इसे निर्बीज समाधि कहते हैं। उक्त तीन चित्तावस्था मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त का निरोध होने पर भी अविद्या, अस्मिता, अभिनिवेश आदि पञ्चक्लेश, कर्म आदि दोष रह जाते हैं अतः उन्हें योगभूमि में अंगीकार नहीं किया जाता है। एकाग्रावस्था और निरुद्धावस्था ही योग भूमि के योग्य है। अतएव—

क्लेसकर्मादिपरिपन्थिचित्तवृत्ति निरोधत्वं योगलक्षणम्।

(योग दर्शन)

अर्थात् चित्त का निरोध ऐसा होना चाहिए जो क्लेश, कर्म आदि का परिपन्थि हो, शत्रु हो, निवारक हो, यही योग का लक्षण है।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् । (यो०सू० १।३)

तब द्रष्टा का स्वरूप में अवस्थान होता है और यही योग का चरम लक्ष्य है।

इस तरह योग का विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है परन्तु सभी का लक्ष्य स्थान एक ही है।

द्वितीय अध्याय

विभिन्न प्रकार के योग

योग का व्यापक अर्थ करने से उसके अन्दर कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, ज्ञानयोग, हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग अथवा कुण्डलिनी-योग आदि सभी योगों का समावेश हो जाता है। वास्तव में ये सभी अष्टांगयोग में आ जाते हैं। अतः अष्टांगयोग ही अपने आप में पूर्ण योग है और सभी योग इसके अंगमात्र हैं। इसी योग को राजयोग भी कहते हैं।

मनुष्यों की प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की हुआ करती हैं। अतः सभी का जीवन-पथ भी अलग-अलग ढंगों का होता है। मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—

(१) कर्मप्रधान
(२) भक्तिप्रधान
(३) योगप्रधान
(४) दार्शनिक अथवा बुद्धि प्रधान

अतः उन सबों का लक्ष्य एक ही परम तत्त्व की उपलब्धि है। मार्ग भिन्न-भिन्न होने पर भी प्राप्तव्य स्थान एक ही है। इस परम तत्त्व को उपर्युक्त चार प्रकार के मनुष्यों की भिन्न-भिन्न दृष्टियों से उपलब्ध करने के जो चार मार्ग बताये गये हैं, उन्हीं को कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग और ज्ञानयोग के नाम से पुकारते हैं। ये चारों मार्ग परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरे के सहायक हैं। ये इस बात के द्योतक हैं कि हिन्दूधर्म के भिन्न-भिन्न मार्गों में परस्पर सामंजस्य है। धर्म के द्वारा मनुष्य का सर्वांगीण विकास होना चाहिये। तभी वह पूर्णता को प्राप्त हो सकता है। एकदेशीय विकास पूर्ण जीवन के लिए अभिनन्दनीय नहीं है।

कर्मयोग (Path of Action)

फल और आसक्ति को त्यागकर ईश्वरार्पण कर्त्तव्यबुद्धि से, समत्वभाव रखते हुए विहित कर्मों को करना अर्थात् निष्काम कर्म, कर्मयोग कहलाता है। कर्मयोग से मल का नाश होता है, चित्त की शुद्धि होती है और कर्मों में कुशलता आती है।

भक्तियोग (Yoga of Devotion) :—

भक्त श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदनरूप नवधा भक्ति का अभ्यास करता है। वह अपनी रुचि, प्रकृति साधन की योग्यता तथा स्थिति के अनुसार शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य इन पाँच भावों में से किसी एक भाव का वरण करता है और सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है, इस प्रकार की मुक्ति को क्रम मुक्ति कहते हैं। इस क्रम मुक्ति को प्राप्त भक्त ब्रह्मलोक में जाकर वहाँ महाप्रलय पर्यन्त ब्रह्मा के समीप रहता है और तदनन्तर ईश्वर के साथ ही निर्गुण ब्रह्म में लीन हो जाता है।

भक्तियोग में श्रद्धा, विश्वास एवं आस्तिक भावना की जितनी ही अधिक प्रबलता होगी, अपने लक्ष्य की प्राप्ति में उतनी ही अधिक सफलता मिलेगी।

भक्तियोग से विक्षेप दूर होता है और प्रेम एवं सद्भावना का विकास होता है। जिनकी वृत्ति हृदयाभिमुखी (Heart oriented) है, उन्हें भक्तियोग में काफी सफलता मिलती है। भक्त आत्मसमर्पण के द्वारा भगवत् कृपा प्राप्त कर सारे ऐश्वर्यों का स्वामी बन जाता है।

हठयोग :—

स्थूलशरीर सूक्ष्मशरीर का ही परिणाम है। स्थूलशरीर का प्रभाव सूक्ष्मशरीर पर बराबर समानरूप से पड़ता है। अतः स्थूलशरीर के अवलम्बन से सूक्ष्मशरीर पर प्रभाव डालकर चित्तवृत्ति निरोध करने की जितनी शैलियाँ हैं, उनको हठयोग कहते हैं।

हठयोग का अर्थ है हकार और ठकार का योग। हकार से सूर्यनाड़ी अर्थात् पिंगला नाड़ी का बोध होता है और ठकार चन्द्रनाड़ी अर्थात् इडानाड़ी का सूचक है। अतएव हठयोग वह क्रिया है जिसमें इडा और पिंगला नाड़ी के सहारे प्राण (कुण्डलिनी शक्ति) को सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से षट्-चक्रों का क्रमशः भेदन करते हुए ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर समाधिस्थ कर दिया जाता है।

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद्धठयोगो निगद्यते ॥ (हठयोग प्रदीपिका)

अर्थात् फुसफुसों में से उच्छ्वास (Exhalation) से बाहर आने वाले वायु को प्राण और ह कहते हैं। उष्ण होने के कारण इसका नाम सूर्य भी हैं। बाहर से जो वायु श्वासरूप से भीतर फुसफुसों में खींचा जाता है, वह अपान और ठ है। शीतल होने के कारण उसे चन्द्र नाम भी देते हैं। इसी सूर्य और चन्द्र अर्थात् प्राणापान की क्रिया के नियमित संयोग को हठयोग कहते हैं।

प्राणायाम के अभ्यास से योगी के प्राणवायु की गति एक-एक, दो-दो अंगुल क्रमशः घटते हुए जब द्वादश अंगुल बाहर की गति बन्द हो जाये और केवल नासिका के भीतर ही दोनों स्वर सम होकर सुषुम्ना से जिस अवस्था में प्राण चले उस अवस्था का नाम हठ है। इसका वर्णन गीता में भी किया गया है—

प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तर चारिणौ।

अथवा प्राण निरोध द्वारा मन का निरोध हठयोग है।

हठयोग के अंग हैं—आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा एवं नादानुसंधान। हठयोगी इन एक-एक अंगों का क्रम से अभ्यास करता हुआ अन्त में शरीर के निम्न भाग में स्थित मूलाधार चक्र के अन्दर सोयी हुई कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर उसे शेष पाँच चक्रों के मार्ग से सहस्रार चक्र में ले जाता है। यह सहस्रार चक्र मस्तिष्क के ऊर्ध्व भाग में ब्रह्मरन्ध्र के समीप स्थित रहता है। यहाँ कुण्डलिनी शक्ति का शिव के साथ योग हो जाता है अर्थात् लय हो जाता है। इस क्रिया को लययोग या कुण्डलिनीयोग भी कहते हैं।

लययोग का सिद्धान्त यह है कि ब्रह्माण्ड की प्रतिकृति मानव पिण्ड है। ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति का विलास जैसा ब्रह्माण्ड है, वैसा मानव पिण्ड भी है। ग्रह, नक्षत्र, चतुर्दश भुवन आदि के पीठ मानव पिण्ड में भी हैं। पञ्चकोशों का आवरण शिथिल होने पर पिण्ड जहाँ चाहे, उसी लोक में अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। इस विज्ञान के अनुसार मनुष्य पिण्ड के आधारपद्म में कुल कुंडलिनी नामक ब्रह्मशक्ति सुषुप्त रहकर अविद्या के प्रभाव से सृष्टि-क्रिया क्रिया करती है। रजोवीर्यजनित विन्दु सृष्टि उसका साक्षात् फल है। मनुष्य शरीरस्थ सप्तम चक्र सहस्रदल में जिस योग द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को ले जाकर ब्रह्मरूपी सदा शिव के साथ मिला दिया जाता

है, उस शिव में शक्ति का लय कर मुक्ति प्राप्त करने के साधन का नाम लययोग है।

इस प्रकार योगी निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर भुक्ति एवं मुक्ति (आध्यात्मिक आनन्द) को प्राप्त कर लेता है। हठयोग का अभ्यास करते हुये नादानुसंधान करते समय उसे चार प्रकार के अवस्थाओं का अनुभव होता है जिसे क्रमशः आरम्भावस्था, घटावस्था, परिच्छायावस्था और निष्पत्ति अवस्था कहते हैं।

आरम्भावस्था में अनाहत चक्र में स्थित ब्रह्मग्रन्थि का प्राणायाम के अभ्यास द्वारा जब भेदन होता है तो हृदयाकाश में पैदा होने वाला अनेक प्रकार के आभूषणों के समान शब्द करनेवाला और आनन्द देनेवाला अनाहतनाद की ध्वनि सुनाई देने लगती है।

घटावस्था में प्राणवायु के साथ युक्त होकर और नाद के साथ विन्दु को एक करके, कण्ठ स्थान में विद्यमान मध्य चक्र में स्थित होता है।

परिच्छायावस्था में भृकुटि के मध्यगत आकाश में मर्त्तल नामक बाजे की ध्वनि के समान आवाज सुनाई देती है।

निष्पत्यावस्था में प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाती है और इस समय वीणा का शब्द सुनाई पड़ता है।

मन्त्र योग :—

'मन्त्रजपान्मनो लयो मन्त्रयोगः।'

'मन्त्र जप से मन को लय करने को मन्त्र योग कहते हैं।'

मन्त्र योग का सिद्धान्त यह है कि यह संसार नाम रूपात्मक है। नाम और रूप से ही जीव अविद्या में फँसकर जकड़ा रहता है। मनुष्य जिस भूमि पर गिरता है उसी के अवलम्बन से उठ सकता है। अतः नाम और रूप के अवलम्बन से ही जब वह फँसता है, तो नाम और रूप के अवलम्बन से मुक्त भी हो सकता है। यही नाम और रूप का संयोग मन्त्र है।

मन्त्रयोग में मन्त्र के माध्यम से ही योग के अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति की जाती है। मन्त्रों की रचना विशिष्ट पद्धति से मन्त्र-शक्ति के विशेषज्ञ अनुभवी महात्माओं द्वारा हुई है, उनके अर्थ गहन होते हैं और मन्त्र शास्त्र के नियमानुसार ही अक्षर जोड़कर मन्त्र बनाये गये हैं।

मन्त्र में आकर्षण शक्ति (Attractive Power) होती है। इसलिए विभिन्न साधनाओं की सिद्धि के लिए अनेक प्रकार के मन्त्र सृजित किये गये हैं। गुरु निर्दिष्ट विधि से मन्त्र जप सिद्ध एवं अमोघ फलदायक होते हैं। मन्त्र को जपने की क्रिया को मन्त्रयोग या जपयोग कहते हैं।[1]

ज्ञानयोग (Yoga of Knowledge) :—

ज्ञानयोग का साधक मुक्ति के चार साधन विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत्ति (शम, दम, तितिक्षा उपरति, श्रद्धा, समाधान) और मुमुक्षत्व को बढ़ाता है। तदनन्तर वह श्रुतियों को सुनता है। फिर मनन करता है और अन्त में निदिध्यासन करता है। 'वह प्रणव, जीव और ब्रह्म की एकता के प्रतिपादक अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि,' सोहमस्मि आदि महावाक्य के वास्तविक अर्थ का ध्यान करता है। इस साधन को अन्तरंग साधन कहते हैं तब उसे आत्मसाक्षात्कार अथवा ब्रह्मानुभूति होती है।

प्रारम्भ में साधक की सविकल्प श्रेणी की शब्दानुविद्ध एवं दृश्यानुविद्ध समाधि होती है। फिर वह अद्वैतभावना रूप (वृत्तिसहित) समाधि में प्रवेश करता है और अन्त में अद्वैतावस्थानरूप (वृत्ति रहित) समाधि में प्रवेश करता है। ज्ञान की सप्तभूमिकायें हैं जिनपर साधक क्रमशः आरुढ़ होता है। इनके नाम हैं—शुभेच्छा, सुविचार, तनुमानसी, सत्त्वापत्ति असंसक्ति, पदार्थभाविनी और तुरीया।

ज्ञानी सद्योमुक्ति अथवा आत्यन्तिक मुक्ति को प्राप्त होता है। वह किसी लोक विशेष में नहीं जाता। उसके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता, न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति। स्थूल शरीर का पतन होते ही वह ब्रह्मलीन हो जाता है।

राजयोग :—

राजयोग के सिद्धान्त से मन की क्रिया मनुष्य को फँसाती है और बुद्धि की क्रिया मनुष्य को मुक्त करने में सहायक होती है; यही कारण है कि अज्ञान से जीव बन्धन को प्राप्त होता है और ज्ञान से मुक्त होता है। अतः बुद्धि की क्रियारूपी विचार द्वारा चित्तवृत्ति निरोध की जो शैली है उसको राजयोग कहते हैं।

---

१. मन्त्र योग की वैज्ञानिक प्रक्रिया जानने के लिए लेखक के 'अध्यात्म दर्शन' नामक पुस्तक के पृ० ५६ को देखें।

राजयोग मन के निग्रह से आरम्भ होता है। उसमें आसन एवं प्राणायाम पर भी जोर दिया जाता है परन्तु वह केवल तमस् और अज्ञान का आवरण हटाने के लिए। इसका आरम्भ मुख्यतः धारणा, ध्यान और समाधि से होता है। इससे मन की स्थिरता एवं एकाग्रता निष्पन्न होती है एवं पर वैराग्य की प्राप्ति होती है।

राजयोगी सर्वज्ञता एवं सर्वशक्तिमत्व से भी मुँह मोड़ लेता है; क्योंकि वह यह जानता है कि सारी की सारी सिद्धियाँ सर्वोच्च समाधि की प्राप्ति में बाधक है। तब उसे असम्प्रज्ञान समाधि की प्राप्ति होती है, जिससे जन्म-मृत्यु के कारणभूत सारे संस्कार निःशेष रूप से दग्ध हो जाते हैं।

अष्टांग योग :—

यह योग पातञ्जल योग कहलाता है। इसके अभ्यास से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति होकर क्रम से पञ्चविभाग वाली अविद्या नष्ट होती है। अविद्या का नाश होने से तज्जन्य अन्तःकरण की अपवित्रता का क्षय होता है और आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है। जैसे-जैसे साधक योगाङ्गों का आदरपूर्वक अनुष्ठान करता है वैसे-वैसे उसके चित्त की मलिनता का क्षय होता जाता है और मलिनता के क्षय के परिणाम में उसके चित्त में ज्ञान की उत्कृष्टता होती जाती है और अन्त में विवेक ख्याति की प्राप्ति होती है।

योग के निम्नलिखित आठ अङ्ग हैं :—

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

यम (Restraint or Abstention) :—

"देहेन्द्रियेषु वैराग्यं यम इत्युच्यते बुधैः" (त्रिशिखि ब्राह्मणोपनिषद्)

"देह, इन्द्रियादियों में वैराग्य यम कहलाता है।।"

सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानादिन्द्रियग्राम संयमः।
यमोऽयमिति सम्प्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः।। (तेजो बिन्दूपनिषद्)

'सम्पूर्ण ब्रह्म ही है'--इस ज्ञान से इन्द्रिय समुदायों का जो संयम है, वही यम है। इस यम का जिज्ञासुओं को पुनः पुनः अभ्यास करना चाहिए।

यदि कोई यौगिक शक्तियों को कार्यरूप में सम्पादित करना चाहता है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसके चारों ओर शान्ति का वातावरण (Tensationless Atomosphare) हो, अन्यथा वह कुछ भी नहीं कर सकता। इसलिये योग के आठ अंगों के पालनार्थ सबसे पहले शान्ति का वातावरण उत्पन्न करने का विधान किया गया है। उस वातावरण को उत्पन्न करने का साधन यम है। यम के पालन करने से वायुमण्डल स्वच्छ होता है। अन्तःकरण में सात्विक वृत्ति का उदय होता है। वे निम्नलिखित हैं—

१. अहिंसा (Non-Voilence) :—

किसी भी प्राणी को, किसी भी प्रकार से, किसी काल में मारने का वा सताने का विचार तक न करना अर्थात् मन् वाणी और शरीर द्वारा किसी भी प्राणी को किसी प्रकार कदापि पीड़ा न पहुँचाना और शुभाशुभ कर्मों से आत्मा का घात करके आत्मघाती न बनना अहिंसा कहलाता है। योगियों के लिए अहिंसा तो सार्वभौम महाव्रत सर्वथा आचरणीय है। अहिंसा का फल निर्देश करते हुए पतञ्जलि कहते हैं—

"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संन्निधौ वैरत्यागः।"

अर्थात अहिंसा की सिद्धि हो जाने पर उस अहिंसक योगी के निकट सभी प्राणियों के वैर-भाव छूट जाते हैं।

जिस योगी का महाव्रत रूप अहिंसा सिद्ध हो जाता है उसके समीप रहने वाले परस्पर विरोधी जैसे—चूहा-बिल्ली, साँप, नेवला, बाघ-बकरी भी विरोध का त्याग कर देते हैं।

इसका कारण यह है कि अहिंसा के साधना करने पर उस साधक के अन्तःकरण से अहिंसा की सात्त्विक धारा इतने तीव्र वेग से प्रवाहित होने लगती है कि तमस भाव से ग्रस्त हिंसक से हिंसक जीव भी उससे प्रभावित होकर अपनी हिंसावृत्ति त्यागने के लिए बाध्य हो जाता है।

अहिंसा के पालन करने वाले योगी के चारों ओर का वायुमंडल तनावरहित (Tensionless) होकर शान्त हो जाता है और शान्ति की किरणें सर्वत्र व्याप्त हो जाती हैं। अतः उस वातावरण में आने वाले जीव भी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति को भुलाकर शान्त हो जाते

हैं और परस्पर विरोध का भी त्याग कर देते हैं। क्योंकि जब हम किसी को किसी तरह शारीरिक, मानसिक या वाचिक हिंसा करने का संकल्प करते हैं तो उस संकल्प की तरंगें हमारे पास में आने वाले दूसरे प्राणी में भी तनाव उत्पन्न कर देती है। इसलिए यह देखा जाता है कि जब कहीं भी मार-दंगे, लड़ाई-भिड़ाई छिड़ जाती है तो उस वातावरण में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति हिंसात्मक प्रवृत्ति से आच्छादित हो जाता है और परिणामतः वह भी हिंसा पर उतारू हो जाता है; परन्तु इसके विपरीत जब हम किसी शान्त वातावरण में रहने वाले सिद्ध पुरुष के पास जाते हैं तो वहाँ जाने से ही शान्ति महसूस होने लगती है। यही है अहिंसा की सिद्धि।

अहिंसा के दिव्य साधक भगवान बुद्ध के सामने आते ही अंगुलिमाल जैसा हिंसक भी अपनी हिंसा वृत्ति त्यागकर किस प्रकार उनका शिष्य हो गया था, इस बात का साक्षी है—हमारा इतिहास।

सत्य (Truthfullness) :—

प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्दप्रमाण से जिन-जिन बातों का जिस-जिस प्रकार से निश्चय किया हुआ हो उन-उन बातों का उस-उस निश्चयानुसार, श्रोता को अनुद्वेग न करने वाले, प्रिय लगने वाले, परिणाम में हित करने वाले, कपटरहित और निर्भ्रान्त वचनों द्वारा यथार्थ कहना और आत्मा के अतिरिक्त किसी पदार्थ को सत्य न मानना एवं 'तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत्' उस सत्य आनन्दनिधि ब्रह्म का लक्ष्य, उसके सत्य को जानना "सत्य" है। इस सम्बन्ध में महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।"

(योगसूत्र २।३६)

सत्य की सिद्धि होने पर योगी की वाणी क्रिया तथा फल के आश्रित हो जाती है। योगी अमोघ वाक्वाला हो जाता है, जो बात कह देता है वही "फकीर की लकीर" हो जाती है।

सत्य बोलने से हमारी हृदयगत नाड़ियों की स्वाभाविक धड़कन पर कोई विपरीत असर नहीं पड़ता है, परन्तु जब कुछ बोलते हैं तो हृदयगत नाड़ियों को उनके स्वाभाविक गति में धक्का (shock) लगता है जिससे स्वाभाविक हृदय की धड़कन (palpitation) पर

बुरा प्रभाव (Effect) पड़ता है। इसी तरह बार-बार झूठ बोलने से नाड़ियों में बार-बार चोट पहुंचती है जिसके परिणामस्वरूप हृदय कमजोर हो जाता है और असमय में ही हृदय रोग, रक्त-चाप, दिल का दौरा, हृदय की धड़कन आदि बीमारियाँ हो जाती हैं। इसलिए समाज में आज देखा जा रहा है कि 'बड़े आदमी' कहे जाने वाले अधिकांश लोग हृदय के दौरे से काल-कवलित हो जाते हैं।

सत्य बोलने से नाड़ियों के स्वाभाविक स्पन्दन (Natural pulsation) में कोई परिवर्तन नहीं होता है क्योंकि इस स्थिति में मन एवं बुद्धि भी सहज भाव में रहती है। परन्तु झूठ बोलते समय मन एवं बुद्धि को बचाव-तन्त्र (Defence Mechanism) अपनाना पड़ता है जिससे हृदय की धड़कन एवं उससे सम्बन्धित नाड़ियों के स्पन्दन में अवरोध पैदा होता है और बार-बार इस अवरोध के पैदा होने से हृदय दुर्बल हो जाता है।

अस्तेय (Non-covetousness) :—

निषिद्धरीति से दूसरों का द्रव्य ग्रहण न करना अर्थात् जिसका जो भी मूल्य हो ऐसी कोई वस्तु उसके स्वामी के अनुमति के बिना न लेना और इष्ट सांसारिक विषय पदार्थों का सेवन न करना तथा किसी पदार्थ या विषय की इच्छा न रखना अस्तेय है।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

(योग सूत्र २।३६)

अर्थात् अस्तेय की प्रतिष्ठा होने पर सभी रत्नों की प्राप्ति हो जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि जिसने राग (Attachment) का त्याग कर दिया, जिसे दूसरे किसी वस्तु में कोई राग नहीं रह गया है। ऐसा रागहीन व्यक्ति तो स्वतः सभी ऐश्वर्यों का स्वामी बन जाता है।

ब्रह्मचर्य (Celebacy) :—

(ब्रह्म + चर्य = ब्रह्मचर्य)

ब्रह्म—आत्मा में, चर्य—आचरण करना। आत्मोत्थान के लिए जो आचरण किया जाता है वही ब्रह्मचर्य है अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति के लिए जिस नियम का आचरण करते हैं वहीं ब्रह्मचर्य व्रत है।

ब्रह्मचर्य के पालन से वीर्यलाभ होता है—

'ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यं लाभः ।

(योग २।३८)'

योगाभ्यास करना अत्यन्त तीक्ष्ण किए हुये छुरे की धार पर चलने के समान कठिन और दुर्गम है। इसके लिए महान् प्रयत्न तथा महती दृढ़ता की आवश्यकता है। शरीर और मन से दुर्बल व्यक्ति योग-पथ पर एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता—"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः" आत्मा बलहीन को प्राप्त नहीं होता। योगशास्त्र तथा उपनिषदों में बार-बार इस बात की घोषणा की गयी है।

इसलिए ब्रह्मचर्य की निष्ठा से 'वीर्य विन्दु' की स्थिरता होने से ऊर्ध्वगति का लाभ प्राप्त होता है।

उर्ध्वरेता भवेद्यावत् तावत् कालभयं कुतः ।

(हठयोगप्रदीपिका)

जब तक साधक बिन्दु को उर्ध्वगामी रखता है तब तक उसको काल-मृत्यु—प्राणक्षय का भय नहीं रहता है। अथर्ववेद में भी कहा है कि—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नतः ।

अर्थात् ब्रह्मचर्य रूप तप से देवों ने मृत्यु को मार डाला।

शिव संहिता में महादेव जी कहते हैं—

"मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात् ।"

तात्पर्य विन्दु का पतन ही मृत्यु है और बिन्दु का धारण ही स्थिरता जीवन है।

ब्रह्मचर्यव्रत से युक्त साधक का प्राण स्वभाव से ही स्थिर रहा करता है। यही बात योगशास्त्र में भी कही गयी है कि—

"स्थिरे बिन्दो स्थिरः प्राणः ।"

ब्रह्मचर्य की महत्ता को प्रकट करते हुए महादेव जी कहते हैं—

"सिद्धे बिन्दौ महादेवि किं न सिद्ध्यति भूतले ।"

हे पार्वती ! बिन्दु के सिद्ध हो जाने पर कौन सी सिद्धि है जो साधक को प्राप्त न हो सके।

ब्रह्मचर्य का पूरा अर्थ है—वीर्य को रोकना, वेद-ज्ञान को पाना; सत्-चित् आनन्द ब्रह्म में समाना। वीर्य एक दिव्य तेज का नाम है जैसे शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है—

"वीर्यं वै मार्गः ।"

वीर्य ही तेज है, आभा है, प्रकाश है। इस वीर्यरूप ब्रह्म के दीपन से ही ब्रह्म-वेद के तत्त्वज्ञान का दर्शन और वेद तत्त्व के ब्रह्म-दीपक से सत्-चित्-आनन्द ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ करता है।

ब्रह्मचर्य के पालन से वीर्य-शक्ति-ओजस् एनर्जी के रूप में परिवर्तित होकर ऊर्ध्व दिशा में गति करती है जिससे कुण्डलिनी शक्ति-ओजस् एनर्जी को ग्रहण कर सहस्रार तक सफलतापूर्वक यात्रा करती है। समाधि में ओजस् एनर्जी ही सहायता पहुँचाती है।

इसलिए ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होकर साधक अपने को अत्यन्त शक्तिशाली तथा वीर्यवान् बनाकर साधना-समर के योग्य हो जाता है।

अपरिग्रह (Non-Holdig) :—

विनाशशील पदार्थों का संग्रह करके उनके संवर्धन, रक्षण एवं प्रचार में आसक्त होकर चित्त का विक्षेप करके मूढ़-विक्षिप्त नहीं बनाना और आलस्य प्रमाद तथा संशय को नहीं बढ़ाना अपरिग्रह है।

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्म कथन्ता सम्बोध।

(योगसूत्र २।३९)

अर्थात् अपरिग्रह की साधना से जन्म-कथन्ता का ज्ञान होता है। अर्थात् मैं कौन था ? क्या था ? कहाँ से आया ? पुनः शरीर त्यागकर कहाँ जाऊँगा ? भविष्य में न जाने क्या-क्या होना है ? इत्यादि। अपरिग्रह की साधना से साधक को इन सारे प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है।

शरीर के भोग्य-विषय का त्याग ही अपरिग्रह है। षट्-कर्म आदि यौगिक क्रियाओं को करने से साधक को इस शरीर की नश्वरता समझ में आने लगती है। नश्वरता के ज्ञान होने पर, अपना शरीर भी परिग्रह स्वरूप ही अर्थात् त्यागने के योग्य ही दिखाई पड़ने लगता है। इस प्रकार विषय और मन का अलगाव होने से ध्यानावस्था में वह अपने पूर्वजन्मों के कृत्यों को स्पष्ट देखने लगता है। इस मानसिक स्थिति में आगे आने वाले जन्मों और कर्मों को भी देखने लगता है। जब साधक को शरीर भी

परिग्रह मात्र दिखाई देने लगता है तो उसे आत्मा और शरीर अलग-अलग दिखलाई देता है। इस पार्थक्य बोध की स्थिति में आते ही साधक को अपना भूत और भविष्य आर-पार दिखाई देने लगता है।

अपरिग्रह की स्थिति तभी फलवती हो सकती है जब पूर्ववर्ती अन्य चार यमों—अहिंसा, सत्य अस्तेय और ब्रह्मचर्य—की साधना सम्यक् और निष्ठापूर्वक की जायेगी। इस प्रकार यमों की साधना के पूर्ण होते ही साधक नियमों की साधना के लिए उपनीत हो जाता है।

नियम (Observance) :—

अनुरक्तिः परे तत्त्वे सततं नियमः स्मृतः।
(त्रिशिखा ब्राह्मणोपनिषद)

अर्थात् निरन्तर परम तत्त्व में अनुरक्ति का नाम नियम है।

सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः।
नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः॥
(तेजोबिन्दूपनिषद्)

'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ—वृत्ति का सजातीय प्रवाह और विजातीय वृत्तियों का तिरस्कार नियम है।

अर्थात् जन्म के हेतुभूत काम्य धर्म से निवृत्त कराके मोक्ष के हेतुभूत निष्काम धर्म में प्रेरणा कराने वाले तप आदि नियम कहलाते हैं। अपने कर्म के फल से दुःखी न होना पड़े इसलिए योगी को नियमों का पालन अवश्य करना चाहिए। वे निम्नलिखित हैं—

१. शौच (Purification) :—

शरीर की अन्तर्बाह्य शुद्धता, स्वच्छता जिससे शुद्धाचरण में सहायता मिलकर रोगादि का निवारण हो सके; दीर्घायु हो एवं अन्तर्बाह्य मल का निकास होकर, पर संसर्ग का अभाव होकर, शरीर के द्वारा आत्मा का प्रकाश फैलाना ही शौच का लक्ष्य है।

बाह्यशौच की प्रतिष्ठा होने पर अंशों में पवित्रता के विरुद्ध बहुत से दोष दीखने लग जाते हैं, अर्थात् ज्यों-ज्यों साधक अपने शरीर को मिट्टी, जल, गोमय आदि पवित्र बाह्य साधनों से पवित्र करता है त्यों-त्यों उसे देह की अपवित्रता अधिकाधिक प्रतीत

होने लगती है। उसे यह निश्चय हो जाता है कि शरीर कभी पवित्र नहीं होता। अतः उसे शरीर की यह अवस्था देखकर वैराग्य होने लगता है, तब फिर वह दूसरों के अत्यन्त अपवित्र देहों से कैसे संपर्क रख सकता है?

आन्तरिक शौच की प्रतिष्ठा प्राप्त होने पर जब चित्त के काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि मल दूर हो जाते हैं, तब धुले हुए वस्त्र की तरह चित्त अत्यन्त निर्मल हो जाता है, उस समय चित्त केवल अपने रूप में ही निविष्ट रहता है।

महर्षि पतञ्जलि की भाषा में—शौचात्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्ग:—अर्थात शरीर में जुगुप्सा अथवा घृणा होने से शौचाचरणशील योगी कायदोषदर्शी और शरीर के प्रति प्रीतिशून्य हो जाते हैं। स्त्री पुत्रादि के आसंग की लिप्सा भी शौच की प्रतिष्ठा द्वारा दूर हो जाती है।

इस प्रकार एकाग्र होकर इन्द्रियों को अपने आधीन करके वह आत्मा के दर्शन की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

संतोष (Contentment) :—

अपने प्रारब्धकर्मानुसार जो अन्न-वस्त्रादि योगशास्त्रोक्त विधि-अनुसार प्राप्त हो उनमें ही तृप्ति रखना और स्वस्थ, शान्त चित्त में समाहित रहना, तृष्णा का विलय होकर पूर्ण निष्काम होना एवं निज में ईश्वर का दर्शन होना 'सन्तोष' है।

"सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः।"

(योगसूत्र २।४२)

सन्तोष की प्रतिष्ठा होने पर अनुत्तम सुख अर्थात् जिससे बढ़कर कोई दूसरा सुख नहीं है उसकी प्राप्ति होती है।

किसी इष्ट पदार्थ के प्राप्त होने से जो तुष्ट निश्चिन्त भाव होता है, उसकी भावना कर सन्तोष की साधना की जाती है। इसके उपरान्त जो प्राप्त है वही पर्याप्त है—इस प्रकार की भावना से उक्त तुष्ट भाव की सम्पुष्टि करनी पड़ती है। यही सन्तोष की साधना है।

इसके सिद्ध होने पर योगी को अनुपम सुख की प्राप्ति होती है। सन्तोष करने पर विभिन्न कामनाओं की दिशा में जाने वाली चित्त

की वृत्तियों का स्वतः निरोध हो जाता है एवं एकाग्रता (concentration) की स्थिति आ जाती है तथा भिन्न-भिन्न इन्द्रियों के द्वार में खर्च होनेवाली ऊर्जा संगृहित होती है।

तप (Austerities) :—

शीतोष्ण, सुख-दुःखादि द्वन्द्व को सहन करते हुए नियमित और संयमित जीवन व्यतीत करना तथा अनुष्ठान, मन्त्र-जप, उपासना द्वारा अशुद्धि का नाश करना तप है। ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, पूज्य, गुरु, प्राज्ञ का सत्कार और सेवन तथा शौच, आर्जव ब्रह्मचर्य और अहिंसा का पालन शारीरिक तप है। उद्वेगरहित सत्य, प्रिय, हितभाषण और स्वाध्याय का अभ्यास वाङ्मय तप है और मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन तथा आत्मनिग्रह मानस तप है।

तप का अर्थ है स्वधर्म पालन करने के लिये तीव्र कष्ट सहन करना। तप के द्वारा अशुद्धि का क्षय होकर इन्द्रियों की शुद्धि होती है—

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।

(योगसूत्र २।४३)

तप के फलस्वरूप शरीर प्रकृतिगत वातावरण के प्रभाव से स्वतन्त्र हो जाता है और सभी तरह के द्वन्द्व अभिघातों को सहन कर लेता है। क्योंकि तप के प्रभाव से शरीर को बाह्य अभिघातों से सामना करने के लिए पर्याप्त अवरोध क्षमता (Power of Resistance) आ जाती है।

तप के निरन्तर अनुष्ठान से अशुद्धिजन्य मल के दूर होने पर शरीर स्वस्थ, पवित्र एवं लघु हो जाता है। अशुद्धियों के आत्यन्तिक विनाश से शरीर सत्व तेज से दीप्त हो जाता है। तथा रजस् और तमस् जलकर भस्म हो जाते हैं।

स्वाध्याय (Study of sacred books) :—

धर्मशास्त्रों के पठन-पाठन; श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त कर लेना स्वाध्याय है।

सब जड़-चेतन पदार्थ मात्र वर्णानुक्रम में ग्रथित हैं। अतएव नियमित वर्णों के उच्चारण से विद्युत शक्ति (Cosmic electricity)

उत्पन्न होती है, जो वातावरण में व्याप्त कॉसमिक पावर का आकर्षण कर लेती है। तब पूरी विद्या की जानकारी होती है।

अतएव स्वाध्याय द्वारा इष्ट देवता का साक्षात होता है :—

"स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।"

(योगसूत्र २।४४)

स्वाध्यायशील को देवता, ऋषियों और सिद्धों के दर्शन होते हैं और वे साधक के सहायक होते हैं।

स्वाध्याय द्वारा वाक्य में एकतानता आती है। उसमें एकतान-भाव सहित अर्थस्मरण में अनुकूलता होती है। मोक्षशास्त्र का अध्ययन करने से विषयचिन्ता क्षीण होती है तथा परमार्थ में निष्ठा होती है।

ईश्वर-प्रणिधान (Surrender to God) :—

ईश्वरार्पण—सब कर्म और कर्मों के फल ईश्वर को अर्पण करके निष्काम होना, कर्मवीर बनकर कर्मक्षेत्र में निज का प्रणिधान कर लेना, शारीरिक मानसिक सब व्यापार ईश्वर को समर्पित करके अनन्य भक्तियुक्त हो जाना एवं साक्षात्कार प्राप्त करके समाधिस्थ हो जाना ईश्वर प्रणिधान है। इसके सिद्ध होने पर समाधि की प्राप्ति होती है।

"समाधिसिद्धिरीश्वरप्राणिधानात्।"

(योगसूत्र २।४५)

ईश्वर-प्रणिधान से समाधि की सिद्धि ही भक्तियोग है। जिस साधक को योगमार्ग अत्यन्त कठिन और दुर्गम दिखाई पड़े वह भक्तिमार्ग के द्वारा भी समाधि को प्राप्त कर सकता है।

योगाभ्यास में ईश्वर-प्रणिधान होने से विघ्न नहीं आते हैं और विघ्न यदि आते भी हैं तो देवता उन विघ्नों से उसकी रक्षा करते हैं।

आत्मसमर्पण करने से चित्त की वृत्तियाँ एकाग्र हो जाती हैं और सारी ऊर्जा शक्ति (Power of Energy) एक दिशा में प्रवाहित होने लगती है। अतएव ईश्वर-प्रणिधान से मोक्ष विषयक तीव्र इच्छा शक्ति (will power) की प्राप्ति होती है।

आसन (Posture) :–

शरीर के बिना हिले-डुले या दुःखी हुए अथवा चित में किसी प्रकार के उद्वेग हुए बिना चिरकालतक निश्चल होकर एक ही स्थिति में सुखपूर्वक (योग में बताये गये क्रम से) बैठने को आसन कहते हैं।

आसन का मुख्य उद्देश्य है मेरुदण्ड (spine) और शिर को सीधा रखना। क्योंकि उसी के अन्दर सुषुम्ना नाड़ी विद्यमान है जिसके भीतर क्रमशः वज्रिणी, चित्रिणी तथा ब्रह्मनाड़ी विद्यमान है, आसन मुद्रा एवं ध्यान द्वारा कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है और वह ब्रह्मनाड़ी के भीतर षट्-चक्रों को भेदती हुई शिर में स्थित ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है जहाँ सदाशिव से मिलकर लीन हो जाती है अर्थात् साधक समाधिस्थ हो जाता है। साधना के समय मेरुदण्ड एवं शिर वक्र (टेढ़ा) रहा तो उपर्युक्त क्रिया के सम्पन्न होने की सम्भावना ही नहीं रहती, और न दिव्य ज्ञान ही प्राप्त हो सकता है, बल्कि नाना प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होने की सम्भावना हो जाती है। अतएव साधना करते समय स्मरण रखना कि मेरुदण्ड और शिर सीधा रहे। इसके साथ ही साथ आसन से शारीरिक स्वास्थलाभ होता है। अतएव

Asan is a posture of body which is most favourable for the practice of yoga in which spine and head is erect there is no movement of the body but free corculation of energy in the system and the mind falls into a state of equilibrium.

आसन की सिद्धि होने पर शीत-उष्ण क्षुधा-तृष्णा, राग-द्वेष प्रभृति किसी प्रकार के द्वन्द्व नहीं रह जाते हैं। स्वाभाविक प्रयत्न शिथिल पड़ जाते हैं। तथा नाड़ीसमूह की मृदुता, सहनशीलता की वृद्धि, शरीर की लघुता, मन की एकाग्रता और प्राण तत्व का ऊर्ध्वगमन होता है तथा शरीर के अनेक रोगों की निवृत्ति होती है। जिससे ध्यान समाधि में एकतानता बनी रहती है। स्वाभाविक प्रयत्नों के रहते यदि आसन साधा जाय तो वह न सध सकेगा; उस अवस्था में साधक के अंगों में कम्प होने लगेगा। आसनसिद्धि न्यून

से न्यून ३ घन्टा ३६ मिनट और अधिक से अधिक ४ घन्टा ४८ मिनट एक स्थिति में बैठे रहने पर होती है।

प्राणायाम :—

प्राण, अपान, समान आदि वायु से मन को रोकने का अभ्यास करना अर्थात् प्राणों का आयाम प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम के तीन अङ्ग हैं—रेचक, पूरक, कुम्भक। प्राणायाम के अभ्यास से संसार को स्थायी बनाने वाले रागरूपी मोह शनैः शनैः दुर्बल होने लगते हैं और मन धारणा में निर्विष्ट होने के लिए सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

प्रत्याहार (Restraint of sense) :—

प्रति+आहार=प्रत्याहार। इन्द्रियों को विषयों की ओर से पीछे की ओर लौटाना अर्थात् वृत्ति का अन्तर्मुखी (Introvert) होना प्रत्याहार कहलाता है।

अर्थात् इन्द्रियों को स्वाभाविक विषयों से विवेकरूपी बल द्वारा निवृत्त करके, उनके अयोग्य आहार को बन्द करके चित्त को अधीन करना प्रत्याहार कहलाता है।

जितेन्द्रिय मनुष्य की चक्षु आदि इन्द्रियाँ ध्येय वस्तु में परिणत चित्त के सदृश हो जाती हैं। स्वतन्त्ररूप से वे मन से निकलकर दूसरे-दूसरे विषयों का चिन्तन नहीं करतीं। चित्त के निरुद्ध होते ही वे स्वयं बिना परिश्रम निरुद्ध होने लगती हैं। अतः वे उस समय चित्तानुकरिणी समझी जाती हैं अर्थात् इन्द्रियाँ चित्त की अपेक्षा नहीं रखती हैं और जिन-जिन कामों में चित्त प्रवृत्त होता हैं उन्हीं में इन्द्रियाँ प्रवृत्त होती रहती हैं। मक्खियाँ जिस तरह भ्रमरराज के पीछे-पीछे रहकर उसके उड़ने पर उड़ती और जहाँ वह घुसता है वहाँ घुस जाती हैं उसी तरह जितेन्द्रिय मनुष्य की इन्द्रियाँ भी चित्त के पीछे दीवानी होकर उसमें अपना अस्तित्व नष्ट कर डालती हैं।

प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियों की अत्यन्त वश्यता, मन की निर्मलता, तप की वृद्धि, दीनता का क्षय, शरीर की आरोग्यता और समाधि में प्रवेश करने की चित्त को योग्यता प्राप्त हो जाती है।

धारणा (Fixed Attention or Fixing of Mind) :—

धारणा वह उपाय है जिससे चित्त को एकाग्र करने में सहायता मिलती है। किसी मन्त्र के जप, किसी देव, देवी या महात्मा के विग्रह या सूर्य, अग्नि, दीपशिखा आदि को अथवा शरीर के किसी स्थान विशेष जैसे हृदय, मूर्धा, तिल अर्थात् आँखों के बीच के बिन्दु, नाभि, कण्ठ, मुख, नासिकाग्र, भ्रूमध्य, इनमें से किसी जगह कल्पना में स्थित करना धारणा है। जैसा कि कुछ उपायों को बतलाने के बाद महर्षि पतञ्जलि ने यह लिख दिया है—"यथाभिमतध्यानाद्वा।" अर्थात् जो वस्तु अपने को अच्छी लगे उसपर ही चित्त को एकाग्र करने से काम चल सकता है।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

(यो० ३।१)

चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करके ध्येय के आधार-स्थान पर लगा देना धारणा है। धारणा में चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करके ध्येय स्थान पर बाँधा जाता है।

ध्यान (Meditation) :—

चित्तवृत्ति का तैलधारावत् अखण्ड प्रवाह तथा मन का निर्विषय होना ध्यान कहलाता है।

तत्र प्रत्ययैक तानता ध्यानम्।

(योग० ३।२)

धारणा के स्थान पर ध्येय-विषयक ज्ञान की एकाग्रता का नाम ध्यान है। परन्तु वास्तव में ध्यान का अर्थ है। "न ध्यायेत् इति ध्यानम्।"

अर्थात् जब ध्यान में ध्याता तथा ध्यानक्रिया का लोप होकर केवल ध्येय मात्र रह जाय तो वह ध्यान है और यही ध्यान समाधि का रूप ग्रहण कर लेता है।

ध्यान की प्रक्रिया (Process of Meditation) :—

ध्यान की स्थिति में ध्येय में लग जाने पर चित्त की एकतानता भंग होने लगती है। इसका कारण है—कर्मसंस्कार की बाधा। ध्येय की सरल गति (Rectilinear Motion) नहीं रहती; मार्ग में वह वक्रीभूत हो जाती है। अतः जब कर्मसंस्कार बाधा देने लगेगें

तब यदि पुनः पुनः उनका त्याग करके अबाधित प्रत्यय बनाये रखेंगे तो एकतानता (Link of conectration) भंग न होगी और एक ऐसी अवस्था में पहुँच जायेंगे जहाँ फिर किसी संशय की गुन्जाइश नहीं रह जायेगी तथा आत्मानन्द की प्राप्ति होगी। वस्तु का यथार्थ स्वरूप समझ में आने लगेगा। उसका एक निर्दिष्ट (Definite) रूप देख सकेंगे और फिर उसका संशयरहित ज्ञान प्राप्त हो जायगा।

ध्यान की एक विशेष गति (Motion) है। सभी गतियों का एक विशिष्ट लक्षण (Characteristic) होता है। पहले रजोगुण की एक क्रिया होती है। उसके पश्चात् तमोगुण द्वारा उसमें बाधा (Resistance) होती है। जब ध्यान की एकतानता प्रवाहित होती है तो उसके बाद ही कर्मसंस्कार बाधा देता है। यदि बाधित होने पर भी लगे रहेंगे, मन को लौटाकर पुनः ध्येय विषय में संलग्न रखेंगे, प्रत्यय को बार-बार अबाधित बनायें रखेंगे तो एकतान प्रवाह चलता रहेगा। तब ध्यान की गति बाधाप्रद वस्तु (Resisting Substance) को क्रमशः हटाती जायेगी। एकतान गति होने पर ही चित्त की शुद्धि और चित्तवृत्तियों का निरोध होता है। तभी ध्यान की अच्छी स्थिति प्राप्त होती है और साधक समाधिस्थ होता है।

भस्त्रिका प्राणायाम के पश्चात् ध्यान की अच्छी स्थिति प्राप्त होती है।

समाधि (Stage of Pure Consciousness on Absolute Contemplation) :—

ध्यान ही जब ध्येयाकार होकर साक्षी रूप में निर्भासित होने लगता है चित्त के ध्येयस्वरूपाविष्ट हो जाने के कारण ज्ञानकारक वृत्तियों का उदयन होने से जब प्रत्ययात्मक स्वरूप से शून्य सा हो जाता है; तब वही समाधि कहलाने लग जाता है। अर्थात् ध्यान ही जब ध्येयाकार रूप से प्रतीत होने लग जाय और ज्ञानाकार रूप से उसका अलग निर्भासन न हो तब ध्यान ही समाधि हो जाती है—

तदेवार्थमात्रनिर्भासे स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

(योग० ३।३)

ध्यान में ध्याता, ध्येय और ध्यान का अलग-अलग ज्ञान रहता है और समाधि में इनका पृथक् भान नहीं रहता है, केवल ध्येयाकार रूप से ही सबकी प्रतीति होती है। यही समाधि और ध्यान में विभिन्नता है। समाधि दो प्रकार की होती है—

१. सम्प्रज्ञात :—

इस समाधि को सविकल्प समाधि भी कहते हैं, जिसमें ज्ञाता और ज्ञानादि के विकल्प लय की अनपेक्षा हो और अद्वितीय ब्रह्म के आकार की आकारता हो।

इसमें चित्त की वृत्ति को ब्रह्म में लय कर देना होता है और इसका कुछ विचार नहीं रहता कि ज्ञाता और ज्ञान में भेद है या नहीं।

इस समाधि में किसी न किसी अवलम्बन की आवश्यकता रहती है। इसमें प्रज्ञा के संस्कार भी रह जाते हैं। यह समाधि चित्त की एकाग्रावस्था में होती है।

२. असम्प्रज्ञात :—

इसे निर्विकल्प समाधि भी कहते हैं। इसमें ज्ञाता-ज्ञानादि के भेद की कोई अपेक्षा नहीं रहती। जैसे जल में लवण मिलकर जल-रूप हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्म में चित्तवृत्ति लीन हो जाने से ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं दिखाई देता।

इसमें कोई अवलम्बन नहीं रहता। सब वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं। यह समाधि चित्त की निरुद्धावस्था में होती है और पर-वैराग्य इसका कारण है। इसके अन्त में चित्त का विनाश हो जाता है। इसी अवस्था को आत्मसाक्षात्कार की अवस्था भी कहते हैं। यही जीव का अन्तिम लक्ष्य है जिससे वह कृत्यकृत्य हो जाता है।

समाधि का प्रयोजन :—

मनुष्य के सामने यह समस्या रहती है कि उसे क्या चाहिये? उसके जीवन का लक्ष्य क्या है? इन प्रश्नों पर मानव को सोचने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

मनुष्य चाहता है सत्ता (Existence)—ऐसी सत्ता जो किसी द्वारा बाधित, खण्डित न हो। और वह चाहता है—चित् व ज्ञान

(Conscousness Intellegence), क्योंकि ज्ञान का अभाव मनुष्य के लिए बहुत दुःखदायी होता है। मनुष्य और चाहता है आनन्द। इस चित् एवं आनन्द को मनुष्य किस परिमाण में चाहता है? अल्प या अधिक ?—मनुष्य अल्प नहीं चाहता, अधिक ही चाहता है, क्योंकि अल्प में सुख नहीं है। अल्प प्राप्त करके मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता। वह अधिक की आकांक्षा करता है। कहा भी गया है--

"यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति"

(छान्दोग्योपनिषद)

अतएव यह स्पष्ट है कि उसे अखण्डित चित् एवं अखण्डित सत् ही ईप्सित है। वस्तुतः अखण्ड सत् और अखण्ड चित् को चाहना ही अखण्ड आनन्द को चाहना है। मनुष्य इन्हें चाहता भी क्यों है? इसलिये कि ये ही उसके आत्मा के स्वभाव हैं। चूंकि पदार्थमात्र ही अपने स्वरूप या स्वभाव में प्रतिष्ठित होना चाहता है। कहाँ मिलते हैं, कैसे मिलते हैं? संसार में तो मिलता नहीं, संसार में जो प्राप्त होता है वह सब इनका परिच्छिन्न एवं मलिन रूप है। तब वे किस प्रकार मिलते हैं--समाधि द्वारा। इसी कारण याज्ञवल्क्य ने कहा--

'अयं तु परमोधर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्।'

समाधि द्वारा मनुष्य अपने सब प्रकार के अभीष्ट को सिद्ध करने में समर्थ है। आनन्द की चरमावस्था समाधि के द्वारा ही प्राप्त होती है। श्रुति कहती है कि समाधि द्वारा जो आनन्द प्राप्त होता है, इसका वर्णन नहीं हो सकता, उसकी केवल अन्तःकरण में अनुभूति मात्र होती है।

●

तृतीय अध्याय

षट्कर्म

षट्कर्म हठयोग की एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से शरीर की आभ्यन्तर शुद्धि योगमार्ग में प्रवेश करने के पूर्व कर ली जाती है। जब शरीर वात, पित्त एवं कफजनित विकारों से शुद्ध हो जाता है तब योग की अगली प्रक्रिया के अभ्यास करने में मदद मिलती है।

जिस तरह आयुर्वेद के आचार्यों ने शरीर-शुद्धि के लिए स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन एवं वस्ति ये पञ्चकर्म निर्धारित किये हैं वैसे ही हठयोग के प्रवर्त्तक महर्षियों ने योगमार्ग में प्रवेश करने के पूर्व शरीरशुद्धि के लिए षट्कर्म निश्चित किये हैं; क्योंकि मनुष्यों की प्रकृति भिन्न-भिन्न प्रकारों की हुआ करती है। कोई वातस्वभाव (Melemcholic Nature) तो कोई पित्तस्वभाव (Choleric Nature) और कितने ही कफस्वभाव (Phlegmatic Nature) की होती हैं। अतएव देशकाल में परिवर्त्तन होने पर वातवृद्धि, या कफवृद्धि या पित्तवृद्धि हो जाया करती है। यह वात, कफ एवं पित्तजनित विकार योगमार्ग के विघ्न हैं। अतएव योगारम्भ के पूर्व शरीर के इन विकारों को षट्कर्म विधि से दूर कर लिया जाता है। क्योंकि कफ की विकृति होने पर दूषित श्लेष्मा संग्रहीत हो जाता है। इन मलों के प्रकुपित होने पर नाना प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। इसी तरह पित्त विकृति होने पर सर दर्द, शरीर में जलन आदि उपद्रव होने लगते हैं। इन व्याधियों को उत्पन्न न होने देने के लिये और अगर हो गये हों तो उन्हें समूल नष्ट करके शरीर को पुनः साम्यावस्था (Normal Stage) में लाने के लिए षट्कर्म की आवश्यकता होती है।

षट्कर्म ऐसे लोगों के लिये आवश्यक है जिन्हें मेद और श्लेष्मा अधिक हो गये हों, उन्हें प्राणायाम या अन्य यौगिक क्रियाओं को आरम्भ करने के पूर्व इसे कर लेना चाहिए। परन्तु सभी लोगों के लिए यह क्रिया अनिवार्य नहीं है क्योंकि जो शुद्धि षट्कर्म से की जाती है वह प्राणायाम से भी की जा सकती है। परन्तु इसमें समय

अधिक लगता है। अतः मेद और श्लेष्मा की अधिकता की स्थिति में षट्कर्म ही अधिक उपयुक्त एवं लाभदायक है। अतः षट्कर्म का अभ्यास कर लेना चाहिए। कारण, भविष्य में कदाचित् देश-काल परिवर्त्तन या आहार-विहार में भूल हो जाने से कफ-पित्त वातादि विकृत हो जायें तो शीघ्र ही इस क्रिया द्वारा उनका शमन किया जा सके।

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद् दृढम्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता॥
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि।
समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः॥

—घेरण्ड सं, उप. १ श्लोक १०-११

घेरण्ड संहिता के अनुसार शरीर का शोधन ६ कर्मों से होता है। आसनों से शरीर में दृढ़ता आती है; मुद्राओं से यह दृढ़ता स्थिर रहती है; प्राणायाम से शरीर में स्फूर्ति तथा हलकापन आता है; प्रत्याहार से धीरता बढ़ती है; ध्यान समाधि के द्वारा आत्मा का प्रत्यक्ष होता है तथा निर्विकल्प समाधि के द्वारा निर्लेप होकर उपासक मुक्त हो जाता है। इससे यह विदित होता है कि षट्कर्म, मुद्रा, आसन एवं अन्तरंग योग क्रियाओं में काफी उपयोगी एवं सहायक हैं।

षट्कर्म में दक्षता प्राप्त करने के लिये प्रारम्भ में लगातार अभ्यास कर लेना चाहिए। जब षट्कर्म सिद्ध हो जाये तब आवश्यकता होने पर ही करना चाहिये अन्यथा नित्य करते रहने से समय का अपव्यय, शारीरिक निर्बलता और मानसिक असन्तुलन आते हैं।

यह क्रिया प्रातःकाल नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर करना चाहिये। षट्कर्म के छः अंग हैं—

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिर्नौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत॥

(घेरण्ड १-१२)

धौति, वस्ति, नेति, नौलि त्राटक तथा कपाल भाति षट्कर्म हैं। व्यवहार में इस क्रम से क्रमशः करना चाहिए--

१. कुञ्जल
२. धौति
३. नेति
४. कपाल भाति
५. नौलि
६. वस्ति
७. त्राटक

१. कुञ्जल :—

कुञ्जल षट्कर्म का ही एक उपभेद है। जैसे हाथी शुण्ड (Trunk) से जल को खींचकर बाहर फेंक देता है। वैसे ही कुंजल क्रिया में मुख से जल पीकर वमन के साथ जल को बाहर निकाल देते हैं। चूंकि यह क्रिया गज (हाथी) के समान होती है अतः इसे गजकरिणी भी कहते हैं।

विधि (Process)

एक पात्र में गुनगुना जल ले लें। यथाशक्ति जल पी लें। तत्पश्चात् खड़े होकर तथा आगे की ओर झुकते हुए बायें हाथ से पेट को अन्दर की ओर दबायें तथा दाहिने हाथ की तीन अँगुलियों को जिह्वा गह्वर के नीचे रखकर घर्षण करें जिससे वमन होने लगता है। मुख में अंगुलियों से तब तक घर्षण करें जब तक कि सम्पूर्ण जल बाहर न निकल जाये।

अभ्यास हो जाने पर बिना मुँह में अँगुली डाले ही जल बाहर आ जाता है, क्योंकि अपानवायु को जब उपर की ओर संकोच करते हैं तब पेट का जल स्वतः बाहर निकल आता है।

कुञ्जल के लिए आजकल बाजार में एक रबर की नली आती है जिसे कण्ठनाल में घुसाकर जल को बाहर निकाला जाता है। परन्तु यह विधि दुर्बल हृदय वालों के लिए अधिक उपयोगी है। साधारण स्थिति में तो पूर्व विधि ही अधिक उपयोगी है क्योंकि उस विधि से जिह्वा पर घर्षण करने से पाचन संस्थान (Digestive System) के पाचक ग्रन्थियाँ एवं इसके अंगों पर उत्तेजना (Excilment) होने के कारण उन अंगों के विकार स्रवित (Secreted) होकर जल के साथ मिलकर वमन के समय बाहर निकल आते हैं।

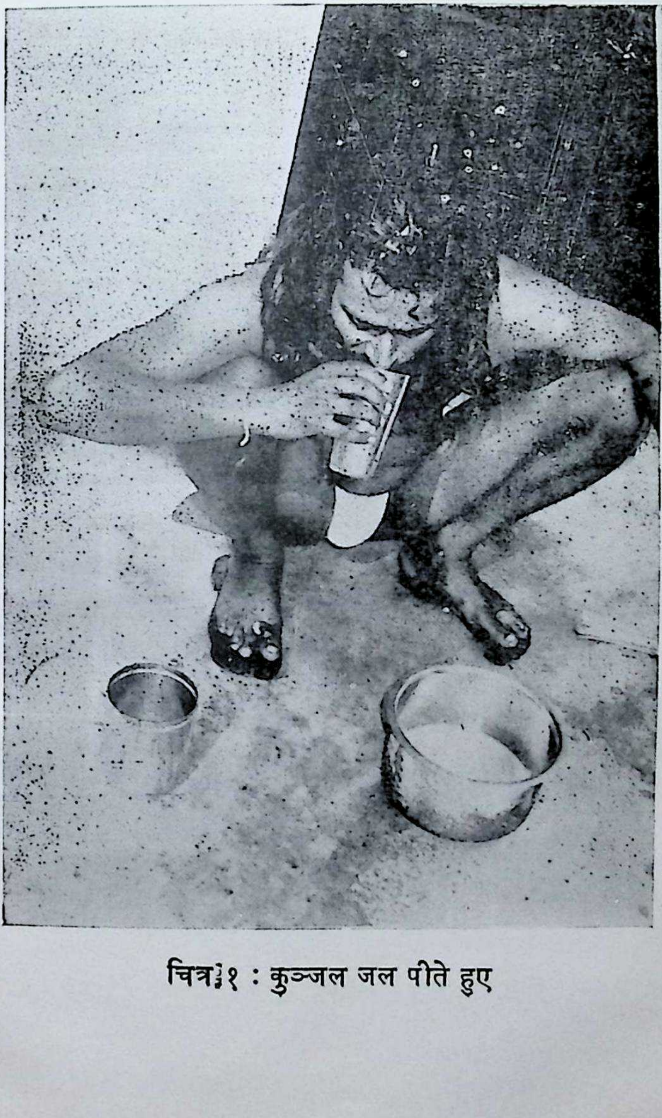

चित्र १ : कुञ्जल जल पीते हुए

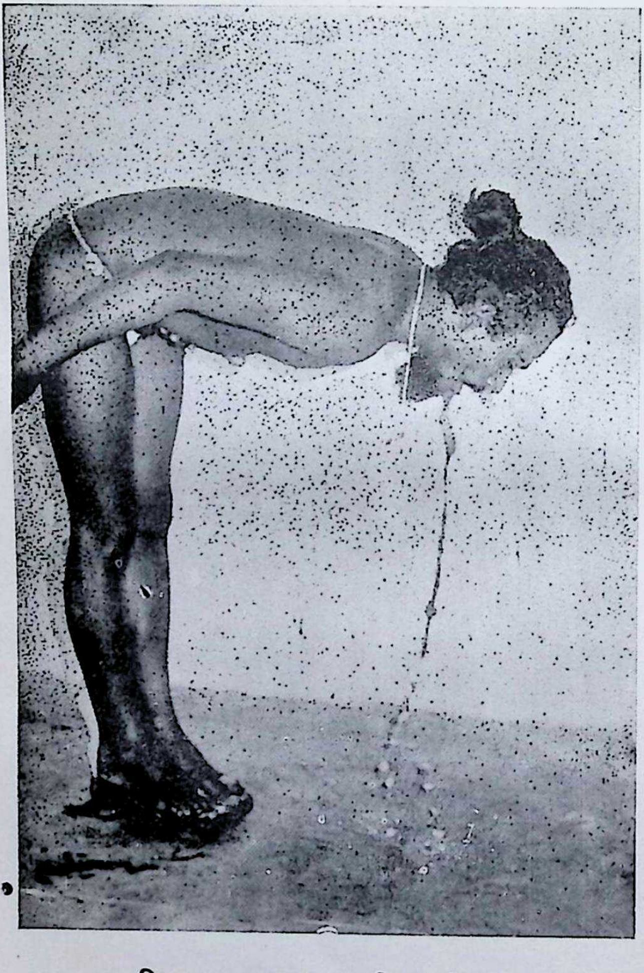

चित्र २ : कुन्जल जल निकालते हुए

लाभ :—

इस क्रिया से आमाशय में संग्रहीत दूषित पित्त, अधपका आहार रस और विकृत कफ जल में मिश्रित होकर वमन के साथ बाहर निकल आते हैं जिससे साधक को अपने आप में हलकापन महसूस होता है। वायुगोला, अफरा, मितली, गैस-सी बनना उदर के भारीपन दूर हो जाता है।

पित्त वृद्धि एवं कफ प्रकुपित होने पर यह क्रिया काफी लाभदायक है।

अजीर्ण, रक्तविकार, आमवात, विषविकार, त्वचादि रोगों को दूर करने के लिए यह क्रिया गुणकारी है।

शरद ऋतु में कफ की वृद्धि स्वाभाविक रूप में अधिक होती है। अतएव इस समय आवश्यकतानुसार कुन्जल कर लेना चाहिए।

निषेध :—

तीक्ष्ण वमन रोग, आन्त्र-निर्बलता (Intestinal weakness) और हृदय की निर्बलता की स्थिति में यह क्रिया नहीं करनी चाहिये।

सावधानियाँ (Precautions) :—

कुन्जल के बाद रोमकूप से पसीना निकलने लगता है। अतः इस समय शरीर को तेज हवा की झोंकों एवं ठण्ढक से बचाना चाहिए।

कुन्जल से त्वचा के सारे बन्द रोमकूप खुल जाते हैं जिससे त्वचा स्थित ग्रंथियाँ (gland) गतिशील हो जाती हैं। आँत की नाड़ियाँ संवेदनशील हो जाती हैं जिससे चेतना शक्ति (conscious power) में वृद्धि होती है।

कुन्जल के बाद आँख, मुँह, नाक को ठण्ढे जल का छींटा देकर धो लें, क्योंकि इस क्रिया के दरम्यान नेत्र से गरम आँसू नाक संश्लेष्मा एवं मुँह से कफ, लार (saliva) निकलता है।

२. धौति :—

इस क्रिया में चार अंगुल चौड़ा एवं २२ फुट लम्बा मलमल का मुलायम कपड़ा होता है जिसे धौति कहते हैं।

विधि :—

दोनों घुटनों को मोड़कर पंजे के सहारे जमीन पर बैठें। दोनों हाथों की केहुनियों को घुटने पर टेक दें। एक पात्र में गरम जल लेकर उसमें धौति को निचोड़ें। उसका एक सिरा दोनों हाथों के सहारे मुख में डालें और निगलने की कोशिश करें। जब निगलने में कोई कठिनाई मालूम पड़े तो एक दो घूँट गुनगुना जल पीलें। इस तरह प्रतिदिन एक-एक हाथ धौति निगलने का अभ्यास कर लें। करीब एक हाथ कपड़ा जब बाहर रह जाये तब फिर धौति को मुख में दबाकर नौलि करें। फिर खड़े होकर झुकते हुए धौति को धीरे-धीरे बाहर निकालें।

यह सम्पूर्ण क्रिया सात मिनट के अन्दर कर लें। अन्यथा धौति आँत में प्रवेश करके फंस जायेगा। क्योंकि ७ मिनट के पश्चात् पेट में गया हुआ कोई चीज आँत में प्रवेश करने लगता है। धौति निगलने के पहले कुछ जल पी लें। इससे धौति निगलने में सुविधा तथा कफ, पित्त का उसमें सटना आसान हो जाता है और धौति को बाहर निकालने में सहायता मिलती है।

धौति को रोज साबुन या सर्फ से गरम जल में धोना चाहिए अन्यथा धौति में लगा हुआ दूषित कफ रूप विजातीय द्रव्य के कीटाणु दूसरी बार धौति करने के समय पेट के अन्दर पहुँचकर नुकसान पहुँचायेंगे।

सावधानियाँ :—

धौति करते समय नये साधकों को नौलि नहीं करना चाहिए। पूर्ण अभ्यास हो जाने पर योग्य गुरु के निर्देशन में ही नौलि करनी चाहिए अन्यथा धौति फँसने का भय रहता है।

धौति क्रिया करने पर गले में यदि खरास मालूम हो तो थोड़ा गरम दूध या घी का सेवन करना चाहिये।

धौति को अधिक बार प्रयोग करने से घिसकर कमजोर हो जाती है जिससे इसे टूटने की संभावना रहती है। अतएव नयी धौति का उपयोग करना चाहिए। धौति खींचते समय कमर झुकाकर दोनों हाथों से पकड़कर धीरे-धीरे खींचना चाहिए।

धौति को प्रयोग करने के बाद अच्छी तरह साबुन या सर्फ से गरम जल में धोकर एवं धूप में सुखाकर तथा लपेटकर सुरक्षित

केवल रेचक एवं पूरक ही किया जाता है। कुम्भक नहीं किया जाता है। परन्तु भस्त्रिका में रेचक, पूरक एवं कुम्भक तीनों को आवश्यकतानुसार किया जाता है।

कपालभाति को षट्कर्म में इसीलिए रखा गया है कि जब सुषुम्ना में से अथवा फेफड़ों में से श्वासनलिका द्वारा कफ बार-बार ऊपर आता हो अथवा जुकाम हो गया हो तब सूत्रनेति अथवा धौति से इच्छित शोधन नहीं होता है। ऐसे समय में कपालभाति लाभदायक है।

लाभ :—

इस क्रिया से फेफड़ों और समस्त कफवाहा नाड़ियों में से इकट्ठा हुआ कफ कुछ तो जल जाता है और कुछ प्रस्वेद द्वारा बाहर निकल जाता है जिससे फुसफुस कोष शुद्ध होकर स्वस्थ हो जाते हैं और साथ ही साथ सुषुम्ना, मस्तिष्क और आमाशय की शुद्धि होकर पाचन शक्ति प्रदीप्त होती है। इस क्रिया से प्राणायाम की क्रिया आसान हो जाती है। धारणा, ध्यान एवं कुण्डलिनी जागरण में सहायक है।

निषेध :—

हृदय की दुर्बलता, दिल की धड़कन, रक्त चाप, वमन रोग, उबाका, हिक्का, मन की भ्रमित अवस्था, तीक्ष्ण-ज्वर, अनिद्रा इत्यादि की स्थिति में यह क्रिया नहीं करनी चाहिये।

सावधानियाँ :—

यात्रा में वर्षा हो रही हो उस समय यह क्रिया न करें।

यदि यह क्रिया अधिक वेगपूर्वक की जायेगी तो किसी नाड़ी में आघात पहुँच सकता है और शक्ति से अधिक प्रमाण में करने पर फुसफुस कोष (Lungs cells) में शिथिलता आ सकती है जिससे वायु बाहर फेंकने की शक्ति न्यून हो जायेगी तथा फेफड़ों में वायु शेष रहकर बार-बार डकार बनकर मुँह से निकलता रहेगा।

नौलि :—

इसे नौलि, नौलिक, न्योलि या नल क्रिया भी कहते हैं। पेट को दाँयें से बाँयें और बाँयें से दाँयें घुमाने को नौलि कहते हैं। इस क्रिया में आँत के अवयवों को उठाकर घुमाया जाता है अत. इसे

'आँत उठाना' भी कहते हैं। यह क्रिया पद्मासन में बैठकर या खड़े होकर आगे की ओर झुकते हुए भी की जा सकती है। परन्तु नये साधकों को खड़े होकर ही करना चाहिये।

विधि :—

दोनों पैरों को डेढ़ फुट की दूरी पर फैलाकर दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर अड़ाकर पेट को अन्दर की ओर ले जायें। फिर बाहर लायें। रेचक करके बाह्य कुम्भक किये रहें। ऐसा कई बार करने पर न्योली दिखलाई देने लगेगी। इस न्योली को पेट के बीच में स्थिर रखने का अभ्यास करें। इस न्योली को मध्य नौलि कहते हैं। जब इसका अभ्यास हो जाता है तब नौलि को दाँयें से बाँयें घुमाते हैं। इस क्रिया को वाम नौलि कहते हैं। इसी तरह जब इसका अभ्यास हो जाता है तव फिर बाँयें से दाँयें घुमाते हैं इस क्रिया को दक्षिण नौलि कहते हैं।

इस तरह से नौलि के तीनों क्रियाओं का अभ्याम हो जाने पर फिर अपने इच्छानुसार न्योली को घुमाते हैं। जिस तरह दधि को मथने पर मक्खन निकलता है उसी तरह न्योली से पेट को मथने पर पेट के सारे मल गुदा द्वार से बाहर निकल जाते हैं।

सावधानियाँ :—

इस क्रिया के पूर्व पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन एवं चक्रासन का अभ्यास कर लेने पर नौलि चालन करने में आसानी हो जाती है। अग्निसार, उड्डीयान की क्रिया नौलि में मुख्य रूप से सहायक हैं।

नौलि करते समय साँस को बाहर रोककर करना चाहिए नहीं तो आँत में वायु प्रवेश कर जाने पर पेट रोग और वात जनित कई व्याधियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। नौलि को यथास्थान लाने के बाद ही साँस अन्दर लेना चाहिए। पेट साफ रहने पर नौलि क्रिया सुगमता से सम्पन्न हो जाती है।

कभी-कभी नये साधकों को न्योली से पतला दस्त हो सकता है, इससे घबराना नहीं चाहिए।

जब तक आँत पीठ के अवयवों से भलीभाँति पृथक् न हो तब तक आँत उठाने की क्रिया सावधानी से करनी चाहिए अन्यथा आँतें निर्बल हो जायेंगी।

नौलि क्रिया में शीघ्रता करने से कभी-कभी आँत पर आघात हो जाने से उदर रोग, आमवात, कटिवात, साइटिका, शुक्र-दोष या अन्य कई रोग हो जाते हैं। अतः इस क्रिया को सावधानी से करना चाहिए।

लाभ :—

मन्दाग्नि-सन्दीपन-पाचनादि-सन्धापिकानन्दकरीसदैव ।
अशेषदोषामयशोषिणी च हठक्रियामौलिरियं च नौलिः ॥

हठ० प्र० २–३४

यह नौलि मन्दाग्नि को प्रदीप्त करती, आहार को भली प्रकार पचाती और साधक को सदा प्रसन्न रखती है। उदर पर छाया भेद समाप्त हो जाता है, अँतड़ियों में कोई विकार नहीं आता, कब्ज नहीं रहता, गुल्मरोग, गुर्दे की पीड़ा, उदर पीड़ा नहीं होती, यदि कभी-कभी हो तो नष्ट हो जाती है। मल-मूत्र, मूत्राशय, वीर्य के दोष नहीं होते हैं, शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है, यकृत् कभी बढ़ नहीं पाता, जलोदर नहीं होता।

प्राणायाम के तीनों बन्ध नौलि के पश्चात् आसान हो जाते हैं। नौलि कुण्डलिनी जागरण में मुख्य रूप से सहायक है, क्योंकि नौलि चालन करने पर मूलाधार से सहस्त्रार पर्यन्त समस्त चक्र उत्तेजित हो जाते हैं। बार-बार कुछ दिनों तक अभ्यास करने पर कुण्डलिनी जागृत हो जाती है। प्राणोत्थान में सहायता मिलेती है।

नौलि के फलस्वरूप पेट में स्थित चौदह मुख्य नाड़ियों में चेतनता आती है। शरीर में गर्मी या चर्मरोग हो जाने पर नौलि करके शीतली करने से पूर्ण लाभ होता है।

जल पीकर नौलि चालन करने से कोष्ठ-बद्धता दूर हो जाती है।

शंख प्रक्षालन एवं वस्ति-कर्म में नौलि सहायक है।

निषेध :—

आन्त्र-शोध, पित्त-प्रकोप, रक्त-चाप, हृदय की धड़कन अथवा दुर्बल हृदयवाले को नौलि नहीं करना चाहिए।

इस क्रिया के पश्चात् खिचड़ी, घी, दूध, मक्खन, दलिया का सेवन करना चाहिये। रूक्ष-शुष्क वस्तुका सेवन न करें अन्यथा इससे पेट को क्षति पहुँच सकती है

बस्ति-कर्म :—

गुदाद्वार से जल खींचकर आँतों को नौलि द्वारा धोकर इस जल को पुन: गुदा द्वार से निकाल देने का नाम बस्ति कर्म है।

बस्ति दो प्रकार के हो होते हैं—

(१) पवनब्रस्ति और (२) जलबस्ति

पवनबस्ति :—

नौलि कर्म द्वारा अपान वायु को ऊपर खींचकर त्यागने की प्रक्रिया को पवनबस्ति कहते हैं। पवनबस्ति उत्कट आसन में बैठकर करें। पवनबस्ति पूरी सिद्ध हो जाने पर जलबस्ति सुगम हो जाती है क्योकि जल को खींचने का कारण वायु ही है।

लाभ :—

पवन बस्ति से उदर के दूषित वायु (प्रकुपित वायु) बाहर निकल जाते हैं। पेट में बनने वाले गैस भी इस क्रिया से बाहर आ जाते हैं एवं शरीर का भारीपन दूर होकर हलकापन महसूस होता है।

जलबस्ति :—

इस क्रिया के लिए गुदा के मध्य में छ: इञ्च लम्बी बाँस या लकड़ी की बनी हुई नली जिसका एक सिरा मोटा और दूसरा पतला हो तथा उसका छिद्र कनिष्ठिका अँगुली प्रवेश करने के योग्य हो उसे घी अयवा तेल लगाकर चिकना करके और सावधानी के साथ चार इञ्च गुदा में प्रवेश करें और दो अंगुल बाहर रखें। इसके वाद जल से भरे हुए टब में उत्कट आसन से बैठें अर्थात् दोनों एड़ियों को मिलाकर खड़ी रखकर उनपर अपने चूतड़ (Sitch) को रखें और पैरों के अग्रभाग पर बैठें और इस आसन पर बैठकर गुदा से संकोचन करें जिससे बड़ी आँत में अपने आप जल चढ़ने लगेगा। अन्दर प्रविष्ट हुए जल को नौलि से चलाकर त्याग दें। इस तरह उदर क्षालन को बस्ति कर्म कहते हैं।

लाभ :—

गुल्मण्डलीहोदरं चापि वात-पित्त-कफोद्भवाः ।
बस्ति-कर्म-प्रभावेन क्षीयन्ते सकलामयाः ॥
धात्विन्द्रियान्तः करणप्रसादं, दद्याच्च कान्ति दहन प्रदीप्तम् ।
अशेषदोषोपचयं निहन्यादभ्यस्यमानं जलवस्ति कर्मं ॥

—हठ० प्र० उप० २ श्लो० २७-२८

बस्तिकर्म उदरगत वायुगोला, जलोदर तथा वात-पित्त-कफज दोष, धातु दोष, इंद्रियों के विकार और मानसिक मलों को नष्ट करके इन्हें निर्मलता एवं प्रसन्नता प्रदान करता है। जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। त्रिदोष को सम करता है। तमोगुण को नष्ट कर प्रसन्नता उत्पन्न करता है।

तथा

प्रमेह च उदावर्तं क्रूरवायुं निवारेयत् ।
भवेत् स्वच्छन्ददेहश्च कामदेवसमो भवेत् ॥

—घेरण्ड १–४८

शुक्राशय एवं मूत्राशय सम्बन्धित प्रमेह आदि रोग, गुदावर्त, कुपित वायु को दूर करके देह को आत्मवशी बनाकर कान्तिमान कर देता है। इससे क्षुधा की वृद्धि, अतड़ियों का शोधन, अपान की शुद्धि होकर कब्ज दूर हो जाता है, उदर सम्बन्धी विकार प्रायः नहीं रहते। कुछ दिनों के अभ्यास के उपरान्त मोटापा दूर हो जाता है। कई दिन की समाधि लगाने से पूर्व बस्ति के द्वारा उदर का समस्त मल निकाल दिया जाता है, अन्यथा अतड़ियों में रहा मल सड़कर शरीर को रोगी बना देता है। बढ़े हुए पित्त के निःसारण में वस्तिकर्म अति उपयोगी है। इस क्रिया से बवासीर, आँव, कृमि एवं यकृत सम्बन्धी रोग नष्ट हो जाते हैं।

तीव्र अन्तरंग यौगिक क्रिया या अखण्ड क्रिया (जिसमें सूक्ष्म-शरीर से अलग कर लिया जाता है) करते समय जरा-सी असावधानी होने के कारण यदि सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर से विलगाव हो जाता है उस समय योगी लोग बस्तिकर्म से सूक्ष्म शरीर का पुनः स्थूल शरीर में आकर्षण करते हैं। अतएव योगियों के लिए इस क्रिया का अभ्यास कर लेना आवश्यक है।

सावधानियाँ :—

बस्ति-क्रिया प्राणायाम का अभ्यास चालू होने के बाद नित्य नहीं करना चाहिए। नित्य करने से आन्त्र शक्ति परावलम्बी और निर्बल हो जायेगी जिससे भविष्य में बिना बस्ति-क्रिया की मल शुद्धि नहीं हो पायेगी।

बस्तिकर्म नदी या तालाब में नहीं करना चाहिए। क्योंकि दूषित जल आँत में पहुँचकर नुकसान पहुँचा सकता है एवं जलीय विषैले जानवर भी प्रविष्ट हो सकते हैं।

बस्ति में गुनगुना जल का जिसमें नींबू एवं नमक मिला हो, प्रयोग करना चाहिए। अधिक शीतल जल से बस्ति करने से सूक्ष्म नाड़ियों द्वारा शीघ्र जल शोषण करने की क्रिया चालू हो जाती है जिससे आँव या कफ की उत्पत्ति होती है। अतः गुनगुने जल को किसी टब में रखकर आकर्षण करना हितकर है।

एनिमा की क्रिया बस्ति क्रिया से भिन्न है अतः बस्ति जैसा एनिमा से लाभ नहीं होता है। एनिमा एक कृत्रिम क्रिया है, बस्ति एक शारीरिक, प्राकृतिक एवं यौगिक क्रिया है।

बस्ति क्रिया के बाद तुरन्त खिचड़ी-घी का सेवन करना चाहिए, क्योंकि इस क्रिया के फलस्वरूप जल का कुछ अंश बड़ी आँत में शेष रह जाता है, वह धीरे-धीरे मूत्र द्वारा बाहर आ जाता है। यदि तुरन्त भोजन नहीं किया जायेगा तो वह दूषित जल आँत में सूक्ष्म नाड़ियों द्वारा शोषित (Absorb) हो करके रक्त में चला जायेगा; जिससे हानि होगी।

निषेध :—

राजयक्ष्मा (T. B.), संग्रहणी, भगन्दर, मलाशय एवं गुदाशोथ में, टाइफायड, आन्त्र-शोथ व्रण (Intestinal swelling or ulcer), कफ, प्रकोपजनित तीक्ष्ण श्वास प्रकोप आदि रोगों में बस्तिकर्म नहीं करना चाहिये।

त्राटक :—

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्॥

(हठ० प्र०)

त्राटक :—

समाहित और एकाग्रचित्त होकर उन्निमेष और निर्निमेष दृष्टि से सूक्ष्म लक्ष्य को अर्थात् लघु पदार्थ को तब तक देखते रहना जब तक कि अश्रुपात न हो जाये, त्राटक कहलाता है।

त्राटक तीन तरह के होते हैं—

(१) बाह्य त्राटक

(२) मध्य त्राटक

(३) आभ्यान्तर त्राटक

(१) बाह्य त्राटक :—

चन्द्रमा, प्रकाशित तारे, पर्वत के तृणाच्छादित शिखर, वृक्ष के पत्ते के अग्रभाग अथवा अन्य किसी दूरवर्ती लक्ष्य पर दृष्टि स्थिर रखने की क्रिया को बाह्य त्राटक कहते हैं। चन्द्रमा पर त्राटक प्रारम्भ करने के कुछ दिनों के पश्चात् उस पर अवस्थित पहाड़, खड्ढे आदि दिखलाई पड़ने लगे तो त्राटक सिद्ध समझना चाहिए।

बाह्य त्राटक उनके लिए लाभदायक है—

(१) जिनकी दृष्टि दूर की वस्तुओं के लिए कमजोर हो (Short sightedne:s) हो गयी हों।

(२) जिनकी प्रकृति वात-प्रधान हो।

(३) जिन्हें शुक्र की निर्बलता हो।

(४) जिन्हें चन्द्र-ग्रह सम्बन्धित दोष हों उन्हें चन्द्रमा पर त्राटक करना चाहिए। इससे चन्द्रशक्ति प्राप्त होती है और चन्द्र-ग्रह से होनेवाली परेशानियाँ भी शमित हो जायेंगी।

लाभ।—

(१) दूर दृष्टि (Power of vision) एवं दिव्य दृष्टि की प्राप्ति

(२) नेत्र-शक्ति (Far sightedness) की प्राप्ति।

(३) चन्द्रमा पर त्राटक करने से नेत्र में शीतलता एवं चेहरे पर कान्ति आती है।

निषेध :—

(१) बाह्य त्राटक का अभ्यास करने वाले समीपस्थ मूर्ति पर त्राटक न करें।

(२) सूर्य पर त्राटक न करें, क्योंकि सूर्य और नेत्र में एक ही प्रकार की शक्ति होने से नेत्र शक्ति सूर्य में आकर्षित हो जायेगी। चूँकि सूर्य की शक्ति नेत्र से करोड़ों गुणा अधिक है जिससे कुछ महीनों में ही नेत्र शक्ति खो जायेगी। यदि सूर्य पर त्राटक करना हो तो जल में पड़े हुए सूर्य के प्रतिबिम्ब पर करें।

आभ्यान्तर त्राटक :—

भ्रूमध्य अथवा नासिकाग्र में दृष्टि स्थिर रखने की क्रिया को आभ्यान्तर त्राटक कहते हैं। भ्रूमध्य में त्राटक करने से सम्भवतः कुछ दिनों तक आरम्भ में कपाल में दर्द हो सकता है तथा नेत्र की बरौनी में चञ्चलता आ सकती है। परन्तु कुछ दिनों के पश्चात् नेत्र वृत्ति में स्थिरता आ जाती है। चित्र के लिए आगे खेचरी मुद्रा देखें।

आभ्यान्तर त्राटक उनके लिए अधिक लाभदायक है—

(१) जो हृदयाकाश में अपनी वृत्ति के एकाग्रता का अभ्यास करते हैं।

(२) जो स्वभाव से हृदयाभिमुखी (Heart oriented) प्रवृत्ति के हैं।

(३) जो पित्त प्रकृति वाले हैं

(४) जिनके मस्तिष्क, नेत्र, नासिका या हृदय में दाह, जलन (Burning sensetion) रहता हो, नेत्रों में फूला जाला या अन्य कोई रोग हों।

सावधानियाँ :—

(१) भ्रूमध्य में खुले नेत्र से देखने की क्रिया प्रारम्भ में अधिक देर तक न करें अन्यथा नेत्रों की नाड़ियाँ निर्बल हो जायेंगी और दृष्टि कमजोर (Short sighted) हो जायेगी।

(२) अनिद्रा, चित्त की चञ्चलता, विक्षिप्तता हो सकती है।

६५०

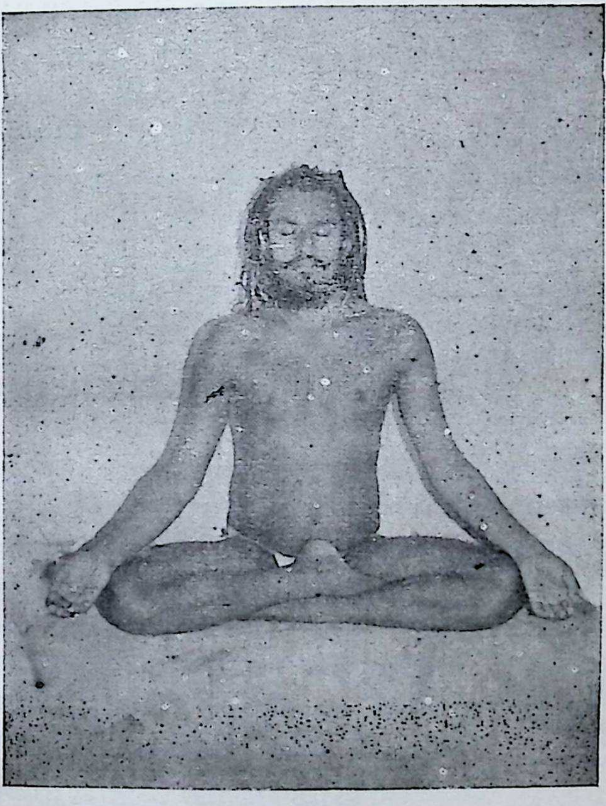

चित्र ८ : सिद्धासन में आभ्यान्तर त्राटक

मध्य त्राटक :—

सफेद दीवाल पर सरसों के बराबर काला चिह्न अथवा कागज पर काली स्याही से लिखे हुए ॐ बिन्दु, किसी देवमूर्ति अथवा भगवान के लिये चित्र, मोमबत्ती या घी अथवा तिल्ली के तेल की अचल बत्ती या बत्ती के प्रकाश से प्रकाशित धातु की मूर्ति या समीपवर्ती किसी अन्य लक्ष्य पर दृष्टि स्थिर रखने की क्रिया को मध्य त्राटक कहते हैं।

दीपक की लौ पर त्राटक :—

शान्त एवं एकान्त स्थान में घी अथवा शुद्ध अण्डी के तेल या तिल के तेल में दीपक को जलाएँ। दीपक की लौ दोनों नेत्रों के सामने ठीक डेढ़ फुट की दूरी पर आँखों के सीध में रखकर अपलक देखें। प्रतिदिन निश्चित समय पर त्राटक का अभ्यास करें। इस त्राटक का लक्ष्य दृष्टि की स्थिरता एवं मन की एकाग्रता है।

काले बिन्दु पर त्राटक :—

एक फुट वर्गाकार सफेद कागज लें। उसके ठीक केन्द्र बिन्दु पर परकाल से एक इञ्च व्यास का वृत्त के केन्द्र पर एक छोटा-सा सफेद बिन्दु छोड़कर शेष भाग में काला रंग भर दें। इस कागज को आँखों से दो फुट दूर सामने दिवाल पर चिपका दें और प्रतिदिन निर्धारित समय पर एवं अनुकूल प्रकाश व्यवस्था रखते हुए त्राटक करें। अनेक प्रकार के रंग एवं आकृतियाँ परिवर्तित होते दिखलाई पड़ेंगे। जब इच्छानुसार आकृति देख सकने की क्षमता प्राप्त हो जाये तब त्राटक की सिद्धि समझनी चाहिये। इसके सिद्ध होने पर त्राटक करते समय सिद्धों, सन्तों एवं ऋषियों के दर्शन होते हैं।

दर्पण त्राटक का अभ्यास :—

दीवाल पर दर्पण को टाँग दें। उसके मध्य भाग में चवन्नी बराबर सफेद कागज काटकर चिपका दें। दर्पण से डेढ़ फुट दूरी पर सुखासन में बैठ जायें। आँखों को न अधिक तानें और न दृष्टि बड़े ही नीचे गिरायें। दर्पण के कागज पर दृष्टि को स्थिर रखें। पलकों को हिलने न दें। एक दृष्टि से टकटकी बाँधकर देखते रहें वृत्ति को इस तरह स्थिर करें कि अपना प्रतिबिम्ब कांच में न दीखने पावे। प्रथम दिन एक मिनट, दूसरे दिन दो मिनट, इस प्रकार कम से कम

दस-पन्द्रह मिनट से आधा घण्टे तक का अभ्यास बढ़ा सकते हैं। आँखो से अपलक तब तक देखते रहें जब तक कि अश्रुपात न हो जाये। एक बार अश्रुपात होने पर त्राटक की एक आवृत्ति समझें। इसी तरह से क्रमशः आवृत्ति को बढ़ाते जायँ। यदि आँखों को त्रास मालूम हो तो एक दिन का विश्राम देकर पुनः अभ्यास करें। अभ्यास के बाद नेत्रों को ठण्डे जल से अच्छी तरह धो डालें। इस अभ्यास से निर्बल नेत्र सबल होंगे और आकर्षण बल बढ़ेगा।

यह त्राटक उन सभी लोगों के लिये लाभदायक है:—

(१) जिनकी दृष्टि दोष रहित हो।

(२) त्रिधातु सम हो या कफ-प्रधान प्रकृति हो।

वास्तव में यह त्राटक सर्वसाधारण के लिये सुविधाजनक है। साधक जो भली प्रकार यम-नियमों का पालन करते हुये इस त्राटक का अभ्यास करेंगे उन्हें ऋषि महर्षियों, महापुरुषों एवं देवताओं के प्रत्यक्ष दर्शन मिल सकते हैं।

त्राटक से सामान्य लाभ :—

(१) त्राटक नेत्र-रोग नाशक है।

(२) तन्द्रा-आलस्यादि को दूर करता है।

(३) नियमित रूप से त्राटक करने पर साधक के सर्वसंकल्प सिद्ध हो जाते हैं।

(४) दूसरे मनुष्यों के हृदय का भाप मालूम होने लगता है तथा दृष्टि तीव्र होकर दूरदर्शिनी बन जाती है।

(५) दूरस्थ पदार्थों और घटनाओं का सम्यक् ज्ञान होने लगता है।

(६) मेसमेरिज्म एवं हिप्नोटिज्म की विद्या इससे सिद्ध होती है

(७) इच्छा शक्ति (will power) बढ़ती है।

(८) त्राटक से शाम्भवी तथा उन्मनी मुद्रायें सिद्ध होती है।

सावधानियाँ :—

(१) सिफिलिस, गोनोरिया, जीर्णज्वर, विषमज्वर, पित्ताशय (Gall bladder) की विकृति इत्यादि व्यथाओं से पीड़ित व्यक्ति को त्राटक नहीं करना चाहिए।

(२) मानसिक चिन्ता; सूर्य ताप या अग्नि सेवन करने वाले को भी इस क्रिया में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

(३) त्राटक की क्रिया में नेत्र में उष्णता बढ़ती है क्योंकि गर्म अश्रुपात होता है। अतः त्राटक के बाद नेत्रों एवं मुँह को शीतल जल से धो डालना चाहिए तथा जलनेति कर लेना चाहिए।

(४) प्रारम्भ में नये साधक को आँखों में एक बार अश्रुस्रावित हो जाने पर उस दिन दूसरी बार न करें।

(५) आँखों में किसी प्रकार का दोष हो तो आभ्यान्तर त्राटक करें। इस प्रकार षट्कर्म की क्रिया सम्पन्न करने के पश्चात् अधिक शारीरिक श्रम वाला कार्य नहीं करना चाहिये। क्योंकि इस समय शरीर में मल की शुद्धि हो जाने से तथा मल टूट जाने से शरीर कोमल हो जाता है। अधिक श्रम करने से शरीर को क्षति पहुँच सकती है।

षट्कर्म से शरीर की आन्तरिक शुद्धि हो जाती है जिससे नाड़ी समूह भी मृदुल हो जाती है। योग में प्रवेश करने के लिए यह क्रिया अत्यन्त सहायक है। षट्कर्म करने के बाद अष्टांग योग की सभी क्रियाएँ सहज हो जाती हैं। इस क्रिया के पश्चात् शरीर की चैतन्यता पहले की अपेक्षा काफी बढ़ जाती है।

षट्कर्म के बाद तुरन्त स्नान नहीं करें। तत्पश्चात् शीघ्र ही दलिया, खीर, खिचड़ी-घी आदि का सेवन करे। भोजन मधुर और स्निग्ध होना चाहिए।

अग्निसार :—

वह यौगिक क्रिया जिससे नाभिस्थान में स्थित जठराग्नि की वृद्धि होती है, अग्निसार कहलाती है। इस क्रिया में पेट को एक सौ बार बाहर और भीतर की ओर संकोच करते हैं। जैसा कि कहा गया है—"नाभिग्रन्थि मेरुपृष्ठे शतवारं च कारेयत्।" अर्थात् नाभिग्रन्थि को सौ बार मेरुदण्ड में संलग्न करने से अग्निसार क्रिया होती है।

विधि :—

पावों में डेढ़ फुट का फासला रखते हुए खड़े हो जाएँ। आगे की ओर झुककर दोनों हाथों को घुटने पर जमाएँ। रेचक करके बाह्य कुम्भक करें और नाभि ग्रन्थि अर्थात् पेट में स्थित आँत के अवयवों को कम से कम २५ बार पिचकाते हुए मेरुदण्ड से सटा दें। २५ बार से अभ्यास प्रारम्भ करके एक सौ बार तक करें।

लाभ :—

जठराग्नि प्रदीप्त होती है। जिन्हें भूख नहीं लगती हो तथा सिर में भारीपन रहता हो एवं कोष्ठबद्धता की शिकायत हो, वे नित्य इस क्रिया को खाली पेट में एक सौ बार करें। उदर के सभी प्रकार के रोगों के लिए लाभकारी है। इस क्रिया को शान्तचित्त से स्थिर होकर करना चाहिये नहीं तो आँतों को क्षति पहुँच सकती है।

बाघी :—

बाघी वह क्रिया है जिसके द्वारा अधपके गरिष्ठ भोजनांश को बाहर निकाल दिया जाता है। इस क्रिया की प्रेरणा सर्वप्रथम ऋषियों को बाघ से मिली है। बाघ जब आवश्यकता से अधिक एवं गरिष्ठ मांस खा लेता है। जिसे पचाने में कठिनाई प्रतीत होने लगती है या उसके कारण अन्य तरह की परेशानियाँ उत्पन्न होने लगती हैं तो बाघ उस अधपके (Undigested) भोजनांश को वमन करके बाहर निकाल देता है। यही क्रिया बाघी कहलाती है। स्पष्ट जानने के लिये कुन्जल का चित्र देखें।

मनुष्य को यह क्रिया उस समय करनी चाहिये जब कोई ऐसा भोजन कर लिया गया हो जिसका पाचन नहीं हो रहा हो या उस भोजन के कारण शरीर में भारीपन हो रहा हो अथवा किसी ने विष खिला दिया हो या किसी मादक द्रव्य की आवश्यकता से अधिक सेवन कर लिया गया हो जिसके कारण बेचैनी हो रही हो। यह क्रिया आवश्यकतानुसार किसी भी समय की जा सकती है। अभ्यास के लिए इस क्रिया को भोजन के तीन घंटे बाद करनी चाहिये।

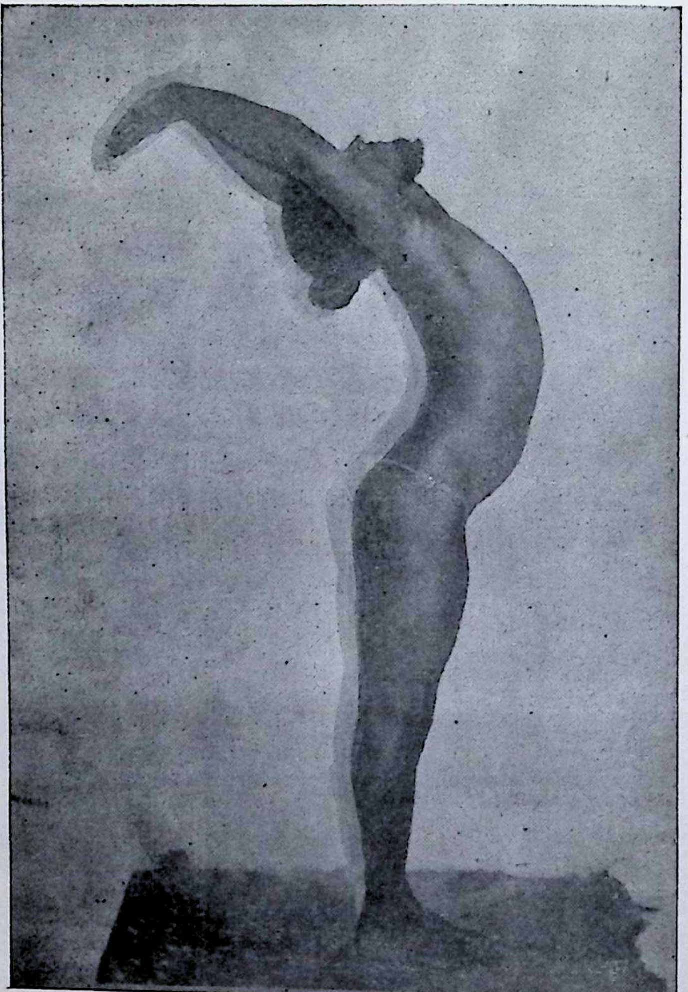

चित्र ६ : ताड़सन पीछे की ओर

विधि :—

काकासन में बैठकर गुनगुना जल इच्छा भर पी लें। दोनों पावों को सटाते हुए खड़े हो जायें, बाँयें हाथ को पेट पर रखते हुए आगे की ओर झुक जायें। दाँयें हाथ की अँगुलियों से जिह्वा मूल में घर्षण करें। वमन हो जाने पर पुनः जल पी लें और बार-बार इस क्रिया को दुहरायें जब तक कि पेट से साफ जल नहीं निकलने लगे। इस क्रिया के बाद तुरन्त खीर खाना चाहिए।

लाभ :—

इससे पेट के समस्त अपरिपक्व अन्न बाहर आ जाते हैं। विष, मादक पदार्थ के सेवन के फलस्वरूप विपरीत परिणाम होने पर रक्षा होती है। इस क्रिया से मन हल्का एवं शान्त हो जाता है। आलस्य एवं शरीर का भारीपन दूर होता है। यह क्रिया सभी लोगों के लिए लाभदायक है।

शंख प्रक्षालन :—

जिस तरह शंख के एक ओर से डाला हुआ जल घूमकर दूसरी राह से निकल जाता है उसी तरह मुख से लिया हुआ जल अतड़ियों से घूमता हुआ गुदा से निकल जाता है। जब मुँह से पीआ हुआ जल गुदा मार्ग से उसी रूप में बाहर निकलने लगता है तो समझा जाता है कि पेट के सारे मल बाहर निकल गये। चूँकि पेट साफ करने की यह प्रक्रिया शंख प्रक्षालित करने के समान है अतः इस विधि को शंख प्रक्षालन कहते हैं।

इस विधि में छः आसनों का समूह होता है जिसे क्रम से किया जाता है। इस क्रिया को करने के लिये प्रातःकाल नित्य क्रिया से निवृत्त होकर डेढ़ सेर गुनगुना जल पी लें। तत्पश्चात् २½ मीटर लम्बा एवं एक मीटर चौड़ा कम्बल या ऊन के आसन पर स्थित होकर उपर्युक्त आसनों के समूह को क्रम से ३।३ या ४।४ बार दुहरावें, जब तक कि मल वेग न आ जाये। जल पीते समय नींबू और नमक अवश्य मिला लें। जल पीने के पश्चात् अविलम्ब छः आसनों को क्रमपूर्वक करें—

१. ताड़ासन २. पादहस्तासन
३. हस्तउर्ध्वासन ४. हस्तकटिचक्रासन
५. भुजङ्गासन ६. उदरकर्षाषण

१. ताड़ासन (पीछे की ओर) :—

दोनों पैरों को मिलाकर खड़े हो जायें। दोनों हाथों के अँगूठे को एक दूसरे से फँसाते हुए पीछे ले जायें, सिर को दोनों हाथों के बीच में रखें। कुम्भक करें या साधारण स्थिति में रहें। ३० सेकेण्ड तक करें।

२. पादहस्तासन :—

अब दोनों हाथों को आगे की ओर लाते हुए, साँस को बाहर छोड़ते हुये जमीन पर दोनों पैरों के पञ्जे को आजू-बाजू टेक दें। दोनों घुटनों एवं हाथों को सीधा एवं तना हुआ रखें। ३० सेकेण्ड तक करें।

३. हस्तउर्ध्वासन :—

दोनों पावों को सटाते हुए सीधा खड़े हो जायें। दोनों हाथों के अँगुलियों को परस्पर मिलाकर हथेली के रुख को ऊपर को करते हुये एवं तानकर फैलायें। बाँयें की ओर दोनों हाथों एवं कंधे को झुकायें। सिर कन्धें से सटा रहेगा। इसी तरह दाहिनी ओर से भी करें।

४. हस्तकटिचक्रासन :—

दोनों पैरों के बीच एक फुट का फासला रखते हुए खड़े हो जायें। दोनों हाथों को सामने की ओर एक फुट के अन्तर से सीधा फैला दें। अब पैरों को यथावत् रखते हुये कमर और दोनों हाथों को वेग से पीछे पीठ की ओर घुमायें। इस स्थिति में बाँयीं हाथ पीठ के पीछे पहुँच जायेगा। परन्तु दाहिनी भुजा मुड़कर बायें कन्धे को स्पर्श करेगी साथ ही गर्दन भी घूमकर पीछे की ओर चली जायेगी। दृष्टि सदैव पीछे जाने वाली हाथ के अँगूठे पर रखें। पुनः झटके से साँस भरते हुये दोनों हाथों, गर्दन और कमर को घुमाकर सामने पूर्व स्थिति में लायें। इसी तरह यह क्रिया दाहिनी ओर से भी करें।

५. भुजङ्गासन :—

पेट के बल लेट जायें। दोनों हाथों को छाती के पास जमायें। अब धीरे-धीरे सिर तथा छाती को उठायें। कमर एवं पैर जमीन में ही सटा रहे। अब सिर को झटके के साथ क्रमशः बाँयीं एवं दाहिनी

१. ताड़ासन (पीछे की ओर) :—

दोनों पैरों को मिलाकर खड़े हो जायें। दोनों हाथों के अँगूठे को एक दूसरे से फँसाते हुए पीछे ले जायें, सिर को दोनों हाथों के बीच में रखें। कुम्भक करें या साधारण स्थिति में रहें। ३० सेकेण्ड तक करें।

२. पादहस्तासन :—

अब दोनों हाथों को आगे की ओर लाते हुए, साँस को बाहर छोड़ते हुये जमीन पर दोनों पैरों के पन्जे को आजू-बाजू टेक दें। दोनों घुटनों एवं हाथों को सीधा एवं तना हुआ रखें। ३० सेकेण्ड तक करें।

३. हस्तउर्ध्वासन :—

दोनों पावों को सटाते हुए सीधा खड़े हो जायें। दोनों हाथों के अँगुलियों को परस्पर मिलाकर हथेली के रुख को ऊपर को करते हुये एवं तानकर फैलायें। बाँयें की ओर दोनों हाथों एवं कंधे को झुकायें। सिर कन्धें से सटा रहेगा। इसी तरह दाहिनी ओर से भी करें।

४. हस्तकटिचक्रासन :—

दोनों पैरों के बीच एक फुट का फासला रखते हुए खड़े हो जायें। दोनों हाथों को सामने की ओर एक फुट के अन्तर से सीधा फैला दें। अब पैरों को यथावत् रखते हुये कमर और दोनों हाथों को वेग से पीछे पीठ की ओर घुमायें। इस स्थिति में बाँयीं हाथ पीठ के पीछे पहुँच जायेगा। परन्तु दाहिनी भुजा मुड़कर बायें कन्धे को स्पर्श करेगी साथ ही गर्दन भी घूमकर पीछे की ओर चली जायेगी। दृष्टि सदैव पीछे जाने वाली हाथ के अँगूठे पर रखें। पुनः झटके से साँस भरते हुये दोनों हाथों, गर्दन और कमर को घुमाकर सामने पूर्व स्थिति में लायें। इसी तरह यह क्रिया दाहिनी ओर से भी करें।

५. भुजङ्गासन :—

पेट के बल लेट जायें। दोनों हाथों को छाती के पास जमायें। अब धीरे-धीरे सिर तथा छाती को उठायें। कमर एवं पैर जमीन में ही सटा रहे। अब सिर को झटके के साथ क्रमशः बाँयीं एवं दाहिनी

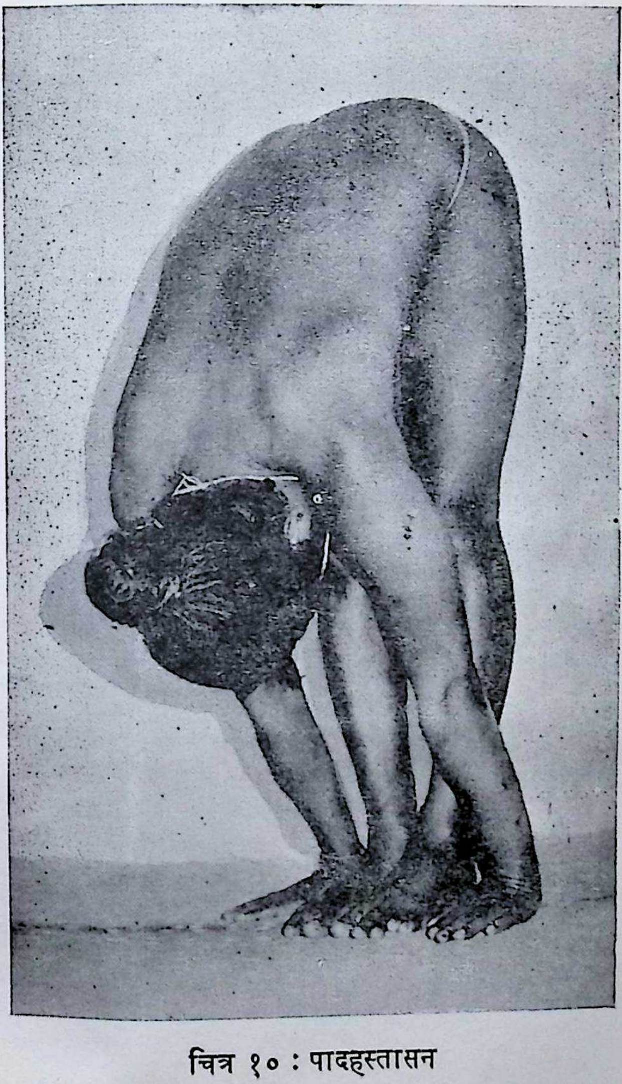

चित्र १० : पादहस्तासन

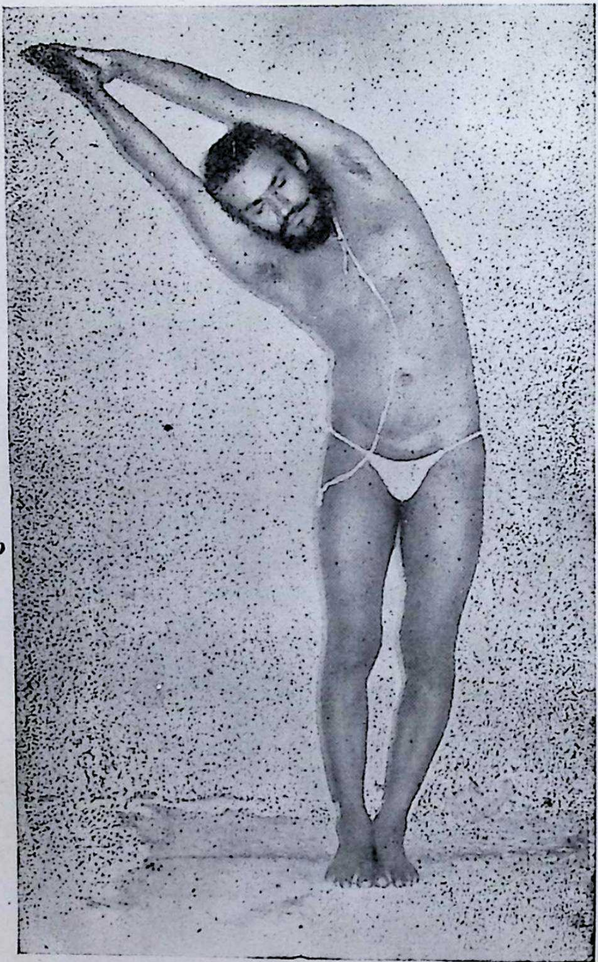

चित्र ११ : हस्तउर्ध्वासन दक्षिणावर्त्त

ओर घुमायें। फिर यथास्थान आ जाएँ। तीन बार बाँयें एवं तीन बार दाँयें की ओर करें।

६. उदरकर्षासन :—

घुटने मोड़कर जमीन पर बैठ जायें। दोनों पैरों में १६ इञ्च का फासला रखें। दोनों हाथों को दोनों घुटने पर जमायें। हाथों को यथास्थान रखते हुये दाहिने घुटने को बाँये पैर के अँगूठे के पास लायें। दृष्टि दाहिने कंधे पर रखें। पुनः पूर्व स्थिति में वापस आ जाएँ। यह क्रिया तीन बार बाँयें एवं तीन बार दाहिनी पार्श्व से करें।

उपर्युक्त छः आसनों की एक आवृत्ति हुई। पुनः जल पीयें एवं छः आसनों की पुनरावृत्ति करें। बीच-बीच में जब शौच महसूस हो तो निवृत्त हो लें। इस तरह इन आसनों की हुई आवृत्ति जल पीकर बार-बार तब तक करते रहें जब तक कि मल द्वार से स्वच्छ जल नहीं निकलने लगे। इस प्रकार से इस क्रिया को सम्पन्न करें।

किसी-किसी की आँतें बहुत ही कड़ी (Hard) होती हैं। अतः उन्हें उपर्युक्त आसनों से सम्पूर्ण मल नहीं निकल पाता है। ऐसे लोगों को अपनी सुविधानुसार मयूरासन, पवनमुक्तासन, नौकासन, ब्रह्मचर्यासन, विपरीतकरिणी, सूर्यनमस्कार से मदद लेनी चाहिये।

मयूरासन करने की विधि :—

इस आसन का उद्भव मयूर को देखने से हुआ है अतः इस आसन को मयूरासन कहते हैं।

दोनों हाथों के पञ्जों को एक साथ भूमि पर इस प्रकार स्थापित करें कि अँगुलियाँ परस्पर फैली हुई पीछे की ओर रहे, पूरक करके कुम्भक करें; दोनों केहुनियों के ऊपर नाभि प्रदेश को टिकाकर हाथों के बल पर सम्पूर्ण शरीर को सन्तुलित करते हुए दण्ड के समान सीधा कर दें। पश्चात् कुम्भक करते हुये यथा शक्ति इस स्थिति में स्थिर रहें।

निषेध :—

Ulcer, Heart Trouble, High Blood Pressure, Hernia में से किसी भी रोग से आक्रान्त व्यक्ति इस आसन को न करें।

लाभ :—

इससे गुल्म, जलोदर, उदर-वात, वात-पित्त-कफ के विकार दूर हो जाते हैं। तिल्ली, जिगर एवं उदर की अनुचित वृद्धि रुक जाती है। पाचन शक्ति, गुर्दों की कार्य क्षमता बढ़ती है। शरीर में रक्त-सञ्चार बढ़ने से रक्त-शुद्धि के द्वारा शरीर में तेज, कान्ति, लावण्यता आ जाती है। नेत्र रोग, दन्त रोग, मुँहासा आदि दूर हो जाते हैं, क्योंकि इस आसन को करने से पेट और मस्तिष्क सम्बन्धी समस्त नाड़ियों में गति (Movement) होती है। बस्तिक्रिया के बाद इस आसन को कर लेने से पेट का शेष समस्त जल बाहर निकल जाता है।

पवन-मुक्तासन :—

इस आसन से उदरगत अपान वायु मुक्त होता है इसलिये इसे पवनमुक्तासन कहते हैं।

विधि :—

चित्त लेटकर पूरक के द्वारा उदर को प्राणवायु से भर लें। फिर दक्षिण घुटने को मोड़कर उदर पर स्थापित करें, दोनों भुजाओं से घुटने को कसते हुए उदर को दबायें। सिर उठाकर नासिका से घुटने को स्पर्श करने का प्रयत्न करें। बाँयीं टाँग भूमि पर सीधी फैलाये रखें। इस क्रिया को पुनः बाँयीं टाँग को मोड़कर करें। जब एक पैर को मोड़कर यह आसन करते हैं तो उसे एक पाद मुक्तासन कहते हैं और दोनों पैर से करने से द्विपाद मुक्तासन कहते हैं।

लाभ :—

इसके निरन्तर अभ्यास से गैस्ट्रिक ट्रबुल दूर हो जाता है। उदरगत दूषित वायु का निःसरण हो जाता है। कब्ज नहीं रहता। फेफड़े तथा हृदय सम्बन्धी विकार नहीं होते। उदर का मोटापा दूर हो जाता है। पेट कभी अफर जाये तो इसे कर लेने से अपान वायु मुक्त होकर पेट हल्का हो जाता है। कुछ जल पीकर इस आसन को करने से थोड़े समय बाद ही शौच भली प्रकार हो जाता है।

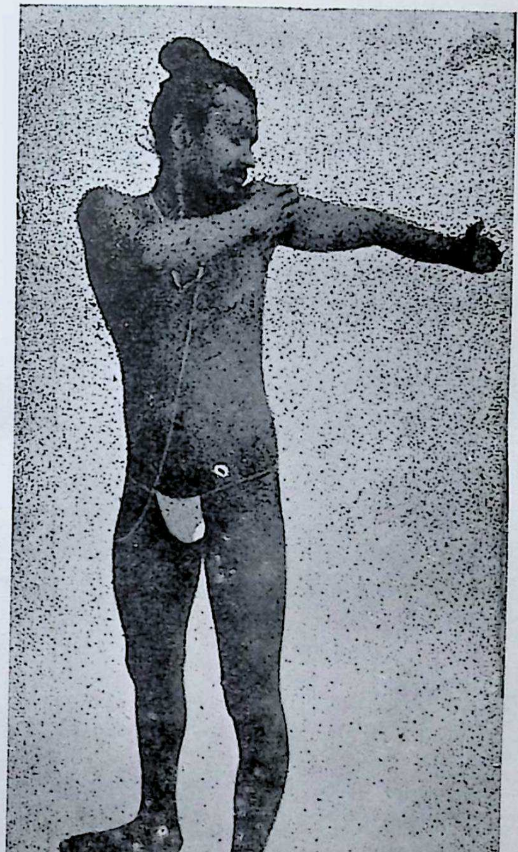

चित्र १२ : हस्तकटिचक्रासन

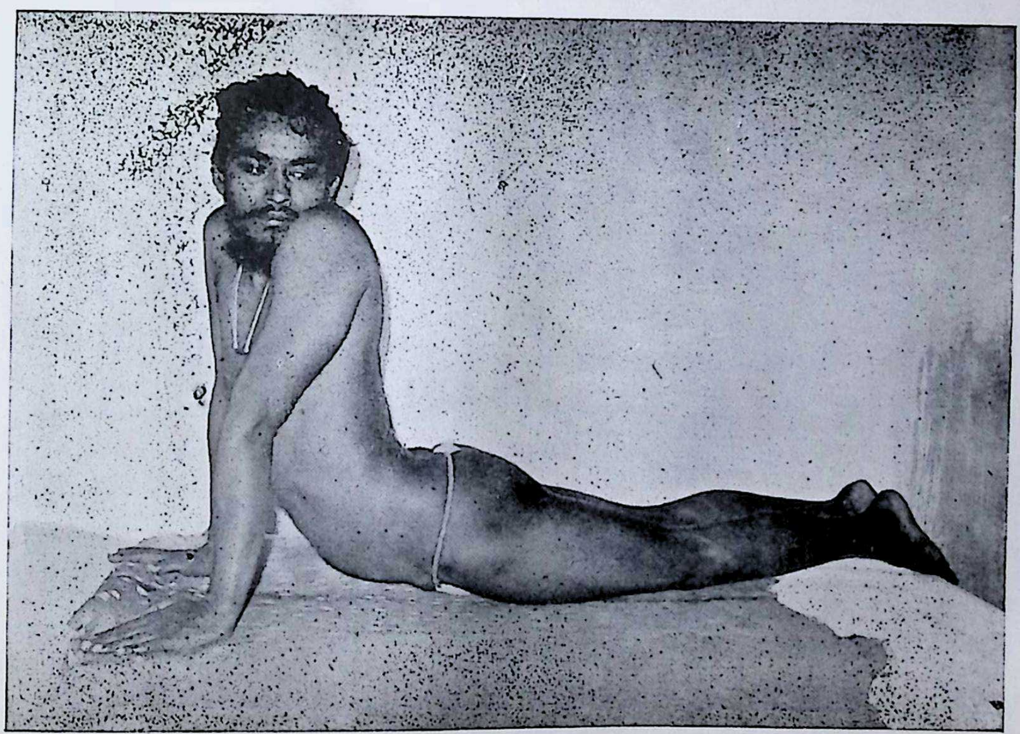

चित्र १३ : भुजंगासन (वामवर्त्ती)

नौकासन करने की विधि :—

पेट के बल लेट जायें। दोनों हाथों को सीधा आगे की ओर फैलाते हुये आगे से छाती को उठायें, पीछे से दोनों पैरों को उठायें, दृष्टि सामने की ओर रखें, कमर जमीन की सतह से सटा कर रखें। इस आसन में स्थिर हो जाने पर पूरक करके पेट में वायु भरकर कुम्भक किये रहें।

लाभ :—

यह आसन डकार (अनावश्यक डकार) तथा हिचकियाँ दूर करता है और छोटी-बड़ी आँतों को बल प्रदान करता है। अपान वायु का नि:सरण करता है। कब्ज को दूर करता है। गैस्ट्रिक ट्रबुल को निर्मूल करता है। जल पीकर इस आसन को करने पर मल का निष्कासन होता है। अतएव यह शंख प्रक्षालन में सहायक है।

ब्रह्मचर्य आसन :—

दोनों घुटने को मोड़कर बैठ जायें। एड़ियों को चूतड़ (Hip) से चार अंगुल दूर रखें। पैर का पञ्जा सीधा करके इस तरह से जमीन पर सटायें कि अँगूठा भूमि को स्पर्श करता रहे। दोनों हाथों को घुटने पर अड़ायें। कमर, पीठ और गर्दन सीधी रखें। इस स्थिति में कुछ देर तक बने रहें।

लाभ :—

इस आसन से पेट में स्थित मल को टूटकर बाहर निकलने में सुविधा होती है। वायु विकार दूर होता है। पैरों की ऐंठन एवं शरीर का अकड़न दूर होता है। जिनके हाथ-पैर में "टटैनी" रहता हो वे इस आसन को नित्य करें; काफी लाभ मिलेगा। इस आसन को करने से ब्रह्मचर्यव्रत के पालन में पूर्ण मदद मिलती है अतएव इसे ब्रह्मचर्यासन कहते हैं।

विपरीतकरिणी के लिए 'मुद्रा' अध्याय देखें।

शंख प्रक्षालन से लाभ :—

इस क्रिया से अतड़ियों में गले सड़े मल विकार बिल्कुल साफ एवं शुद्ध हो जाते हैं। नाड़ियों के मल से मुक्त रहने पर अन्यान्य रोग के कीटाणु पनप नहीं पाते। फलतः उदर के असंख्य रोग निर्मूल

हो जाते हैं। शरीर स्वस्थ बना रहता है। अतः रेचक औषध द्वारा पेट साफ करने के बदले इस प्रक्रिया से कोष्ठ परिष्कार करना अत्युत्तम है। इस प्रक्रिया से पेट के समस्त मल एवं कृमि नष्ट हो जाते हैं। आँतें पूर्ण स्वच्छ हो जाने से चित्त सदैव शान्त रहता है। नाड़ी समूह मृदुल हो जाने से ध्यान, समाधि की प्रक्रिया सुगम हो जाती है। समाधि लेने के पूर्व इस क्रिया को कर लेने पर पेट में मल नहीं सड़ता है और न सूखता ही है जिससे किसी प्रकार के रोगों की सम्भावना नहीं रहती है। इस क्रिया को महीने में एक बार करना चाहिये।

सावधानियाँ :—

शंख प्रक्षालन की क्रिया के पश्चात् पूर्ण विश्राम करें एवं खिचड़ी-घी का सेवन करें। दूसरे समय के भोजन में रोटी एवं पत्ती वाली उबाला हुआ साग लें। इसके अतिरिक्त उस दिन अन्य किसी भी वस्तुओं का सेवन न करें। इस क्रिया के तुरन्त बाद शीघ्र ही भोजन ग्रहण करें अन्यथा पेट में वायु भर जायेगा और वात-विकार के उपद्रव हो सकते हैं। बरसात के दिनों में यह क्रिया नहीं करनी चाहिये।

चित्र १४ : उदरकर्षासन (दक्षिणावर्त्त)

चित्र ९४ : [illegible]

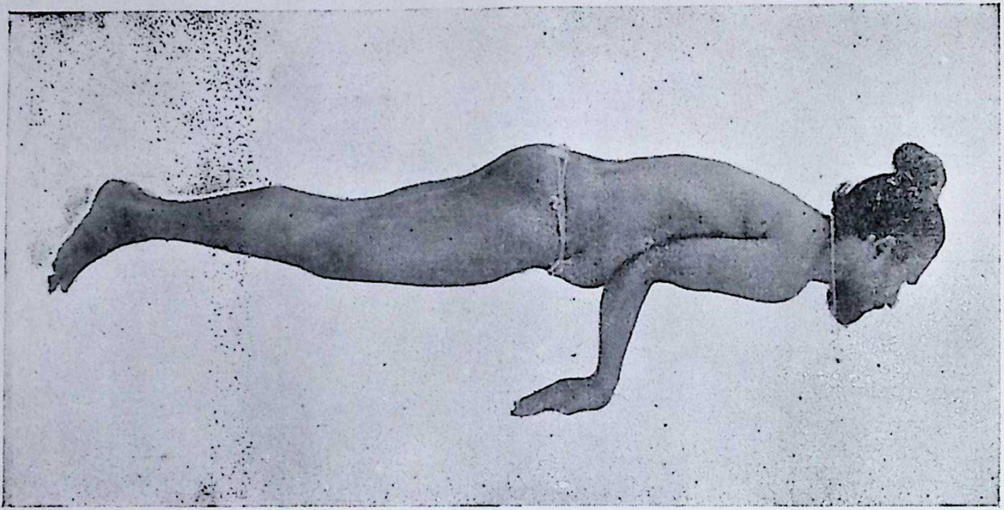

चित्र १५ : मयूरासन

चतुर्थ अध्याय

प्राणायाम

प्राणायाम अष्टांग योग का चतुर्थ अंग है। समाधि सिद्धि के पहले प्राणायाम का अभ्यास कर लेने पर शरीर हलका एवं स्फूर्तिवान हो जाता है, शरीर में आलस्य नहीं रह जाता। अतः प्राणायाम की साधना आवश्यक हो जाती है।

प्राणायाम का अर्थ है "प्राणस्य आयामो गतिरोधः प्राणायामः।"

अर्थात् प्राण को आयाम करना, नियमन करना या वश में करना ही प्राणायाम है। जिस क्रिया के द्वारा प्राण को अपने नियंत्रण में किया जाता है उसे प्राणायाम कहते हैं।

Pranayam means lenthening (Ayam) of Prana, life-breath.

"The inhaling and exhaling of air is controlled with a view to make vital currents (life-breath) equable and produce a state favourable for mental concenration is called Pranayam."

प्राणायाम प्राण का संयम है। क्योंकि प्राणायाम का प्राण के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः प्राण के सम्बन्ध में कुछ जानकारी आवश्यक हो जाती है।

प्राण :—

प्राण सब भूतों की आयु है। मातृगर्भ में भ्रूण उत्पन्न होने के बाद प्राण का सञ्चार होता है एवं मृत्यु-पर्यन्त इसका अस्तित्व बना रहता है। अतः प्राण सर्व व्यापक ब्रह्म शक्ति का द्योतक है। प्राण ही ब्रह्म है। मुंडकोपनिषद (२।२।३) में कहा गया है कि—

> एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
> खं वायुर्ज्योतिरापः पृथ्वी विश्वस्य धारिणी॥

अर्थात् इस परमात्मा से प्राण, मन समस्त इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, ज्योति जल और सबको धारण करने वाली पृथ्वी उत्पन्न होती

है। प्रश्नोपनिषद में भी इसकी पुष्टि की गयी है। जिस प्रकार विद्युत् शक्ति से नाना प्रकार के यन्त्रों का सञ्चालन होता है उसी प्रकार प्राण द्वारा समस्त प्राणी सञ्चालित होते हैं। जिस प्रकार विद्युत् केन्द्र से विद्युत् संयोग कट जाने पर बत्ती, पंखे रेडियो अर्थात् विद्युत् शक्ति से चलने वाले सभी यन्त्र बन्द हो जाते हैं उसी प्रकार प्राण शक्ति रहित हो जाने पर सभी इन्द्रियों के व्यापार लोप हो जाते हैं। इसलिये प्राण को अंग्रेंजी भाषा में Subtle psychic force, Subtle cosmic element, Suprem universal energy आदि कई नामों से पुकारते हैं।

Pran is the Primeval energy.
or Pran is the span of life.
or Pran is creator (Brahma).

अथर्ववेद में प्राण की महत्ता इस प्रकार बतायी गयी है।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे
यो भूतः सर्वेश्वरो यस्मिन् सर्वंप्रतिष्ठितम्।

--अथर्ववेद ११-४-१

हे प्राण तू जगदाधार है, तुझे हमारा नमस्कार है। तू ही सब लोक लोकान्तरों का प्रकाशक है। तू ही समस्त सृष्टि का आधार है।

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राणउच्चते।
प्राणो ह भूतं भव्यञ्च प्राणे सर्वंप्रतिष्ठितम्॥

--अथर्ववेद ११-४।१५

अर्थात्, प्राण जीवन दाता है। समस्त आकाश में वायुरूपेण व्यापक है। भूत, वर्त्तमान और भविष्य तीनों काल उसमें स्थित है।

जब तक शरीर में प्राणशक्ति गतिमान रहती है तब तक इसके प्रत्येक अवस्था में गति बनी रहती है। प्राण के बिना शरीर निर्जीव है।

जिस काल में माता-पिता के रज-वीर्य के संयोग से गर्भ का आधान होता है, उस समय प्राण के रूप में वायु परिणत होकर शिशु के शरीर का सहकारी बनता है। पृथ्वी और जल से उत्पन्न खाद्य पदार्थों से ही रज और वीर्य बनते हैं। ये दोनों ही नूतन शरीर पिण्ड के उपादान कारण हैं तथा अग्नि और वायु से उत्पन्न

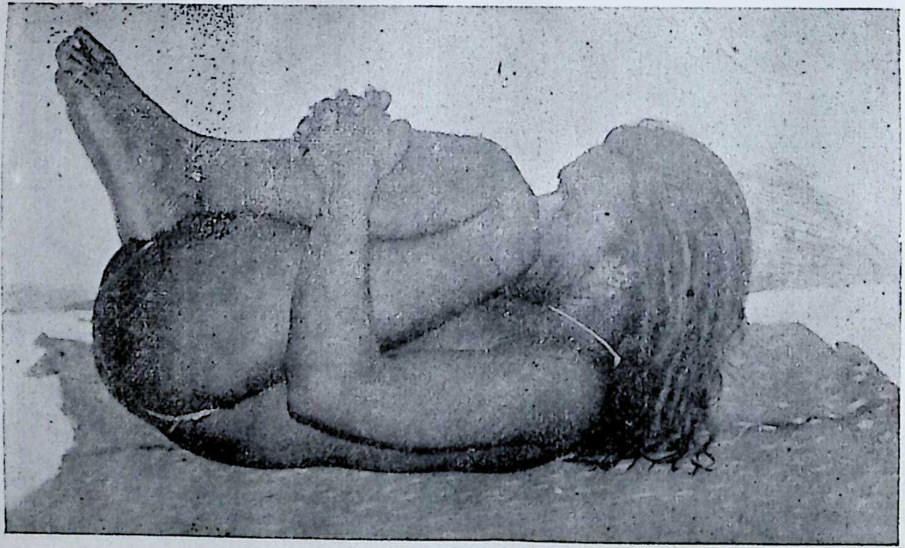

चित्र १६ : पवनमुक्तासन

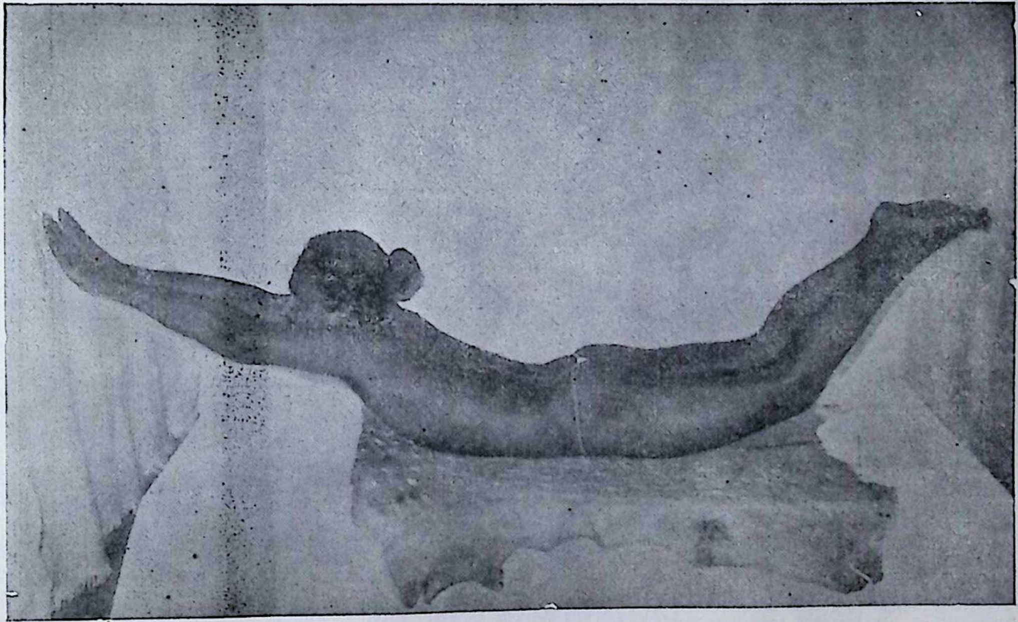

चित्र १७ : नौकासन

तेज और प्राण सहकारी बनते हैं। इस प्रकार आकाश भी शब्द के रूप में परिणत होकर सहकारी उपादान कारण बनता है। ये पाँचो भूत भौतिक देह के उपादान कारण हैं।

वायु प्राण के रूप में परिणत होकर शरीर में गति, कर्म और क्रियादि व्यापारों का कारण बना हुआ है। वैयक्तिक शरीरस्थ प्राण में ही सम्पूर्ण जीवन का संचार करने की क्षमता है।

प्राण के भेद :—

योगशास्त्र के अनुसार मानव शरीर में दस प्रकार के वायु प्राण रूप में स्थित हैं जो शरीर की क्रियाओं को नियन्त्रित करते हैं। जैसा कि उपनिषद में कहा गया है—

वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य

(मुण्डकोपनिषद २-१-४)

अर्थात् "इस विश्व के हृदय में वायु प्राणरूप से स्थित है।"

ये दस वायु हैं—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म कृकल, देवदत्त और धनञ्जय।

प्राणवायु :—

भौतिकविदो की भाषा में इस प्राणवायु को जीवनी शक्ति (Vital Force or Vital Current) कहते हैं। इस स्थूल शरीर का अस्तित्व इसी प्राण वायु के कारण है। हृदय से कण्ठपर्यन्त तक प्राणवायु है। इसका मुख्य स्थान हृदय है। सभी वायुओं का स्वामी प्राणवायु ही है।

प्राणवायु अपानवायु द्वारा मल-मूत्रादि के त्याग से होने वाली रिक्तता को नित्य पूर्ण करता है और प्रति प्राणों का प्राणयन (प्रेरणा) करता है। जीव में आश्रित यह प्राण श्वासोच्छ्वास और कास आदि द्वारा प्रयाण (गमनागमन) करता है; इसलिये इसे प्राण कहा गया है। हृदयस्थ प्राण चौबीसों घंटे रक्त-प्रक्षेपण का कार्य करता रहता है।

अपानवायु :—

इसका स्थान नाभि से गुदा तक है। मणिपुर, स्वाधिष्ठान तथा मूलाधार चक्र भी इसी अपान के अन्दर वर्त्तमान हैं। अपान वायु

मनुष्य के आहार को नीचे की ओर ले जाता है और मूत्र एवं शुक्र आदि को नीचे की ओर वहन करता है। इस अपानयन के कारण इसे अपान कहा जाता है। गर्भस्थ बालक का पोषण भी इसी अपान के द्वारा होता है। गर्भस्थ शिशु भी अपान के वेग से ही गर्भ सें निकल पाता है।

समानवायु :—

समान वायु मनुष्यों के खाये-पीये और सूँघें हुये पदार्थों को एवं रक्त, पित्त, कफ और वात को सारे अङ्गों में समानभाव से ले जाता है इस कारण उसे समान वायु कहते हैं। इसका मुख्य स्थान नाभि से हृदय पर्यन्त है। मृत्यु-पर्यन्त इसी वायु के माध्यम से जीवात्मा का प्रयाण होता है।

उदान :—

उदानवायु मुख और अधरों को स्पन्दित करता है। नेत्रों की अरुणिमा को बढ़ाता है और मर्मस्थान को उद्विग्न करता है। इसीलिए इसका नाम उदान है। इसका मुख्य स्थान कण्ठ है तथा यह कण्ठ से शिखा पर्यन्त फैला हुआ है।

अथैकयोर्ध्वं उदानः पुण्येन पुण्यलोकं नयति।
पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्।

प्रश्नोपनिषद प्र० ३-७

अर्थात् कण्ठ में जो उदान प्राण है यह पुण्य कर्म करने वालों को स्वर्ग लोक प्राप्त कराता है और पापियों को नरक ले जाता है। जब पाप और पुण्य दोनों समान होते हैं तब मनुष्य जन्म की प्राप्ति कराता है।

व्यानवायु :—

अंगों को पीड़ित करता है। यही व्याधि को कुपित करता है। कण्ठ को अवरुद्ध करता है। व्यापनशील होने से इसे व्यान कहा गया है। यह वायु सम्पूर्ण शरीर में फैला हुआ है।

नाग :—

डकार के वायु को नाग कहते हैं। इसका मुख्य कार्य उद्गार और हिचकी पैदा करना है। इसका स्थान मुख है।

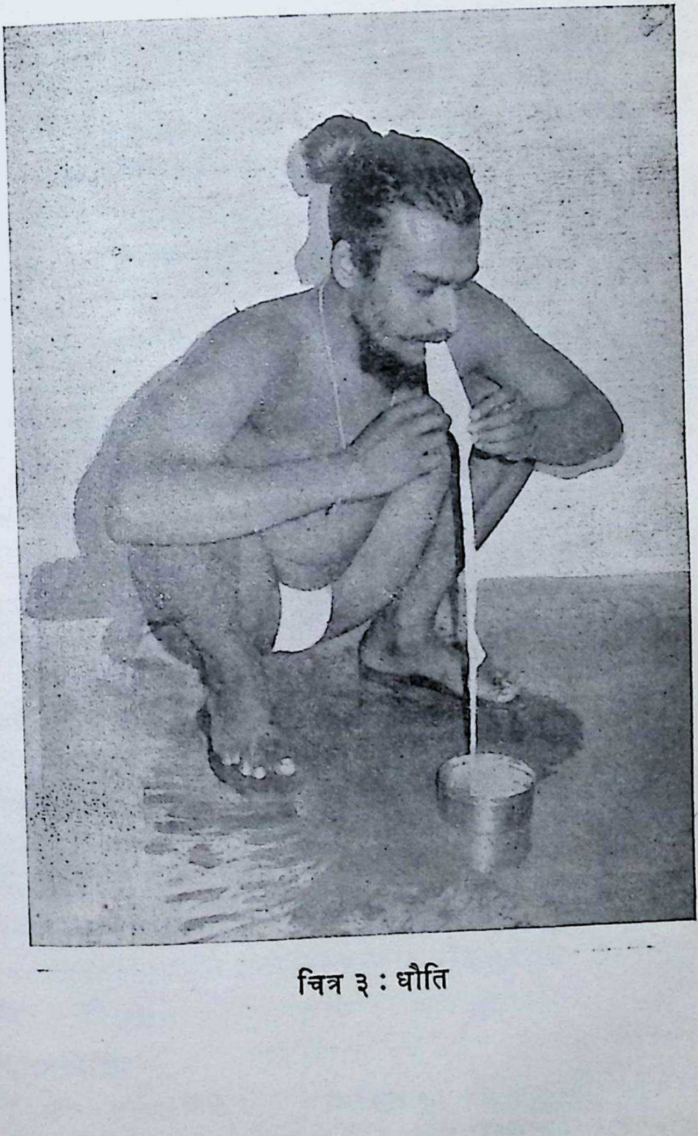

चित्र ३ : धौति

ढँग से रखना चाहिए। धौति करते समय कभी अगर उबाई आने लगे थोड़ी देर रुककर पुनः निगलने का अभ्यास करें।

लाभ :—

धौति करने से कफ, पित्त और रङ्ग विरंगे पदार्थ जो ग्रासनली (oesophagus) या इससे नीचे के भाग में इसकी दीवाल (wall) से चिपके रहते हैं, बाहर निकल जाते हैं। वसन्त या ग्रीष्मकाल में इसका साधन विशेष लाभदायक होता है।

कास-श्वास-प्लीहा-कुष्ठं कफरोगाश्च विंशतिः।
धौतिकर्मप्रभावेण प्रयान्त्येव न संशयः॥
हठयोग प्र० उ०प० २ श्लोक २५

खाँसी, श्वाँस, दमा, तिल्ली के विकार; कुष्ठ तथा कफज २० रोग, जुकाम, फुपफुस विकार दूषित पित्त आदि रोग नष्ट हो जाते हैं; आमाशय तथा पक्वाशय एवं जिगर, कण्ठ विकार नष्ट हो जाते हैं; पाचन-शक्ति बढ़ती है तथा स्वास्थ्य सुधर जाता है।

निषेध :—

श्वासनलिका में शोथ, हिक्का, वमन आमाशय में शोथ, उर्ध्व-रक्त पित्त (मुँह से रक्त गिरना) की स्थिति में धौति नहीं करनी चाहिए।

इस क्रिया को आवश्यकता होने पर ही करना चाहिए। क्योंकि प्रतिदिन करने से पाचन क्रिया में उपयोगी पित्त और कफ, धौति निगलने के कारण विकृत होकर बाहर निकते रहेगें जिससे पाचन क्रिया मन्द होकर निर्बल हो जायेगी। अगर कभी धौति फँस जाये तो गरम जल पीकर ब्रह्मदातुन करना चाहिए। इससे भी नहीं निकले तो घी पीना चाहिए।

३. नेति :—

यह दो प्रकार की होती है—जलनेति और सूत्रनेति। पहले सूत्र नेति करनी चाहिए।

सूत्रनेति :—

सूत्रनेति बनाने के लिए महीन सूत की दस-पन्द्रह तार की एक हाथ लम्बी बिना बटी डोरी लें, जिसका छः इञ्च लम्बा एक सिरा

बाँटकर पतला बना दें और इस बंटे हुए भाग को पिघले मोम से चिकना बना लें। इसी को सूत्रनेति कहते हैं।

प्रयोग विधि :—

दोनों घुटनों को मोड़कर काकासन में बैठ जायें। एक पात्र में गुनगुना जल लेकर सूत्रनेति को भिगोयें। फिर मोम वालें स्निग्ध भाग को मोड़कर जिस नासा छिद्र से साँस चलती हो उसी छिद्र से प्रवेश करायें। इस समय शिर को थोड़ा ऊपर की ओर उठाये रखें। अगर नेति को नासाछिद्र के अन्दर घुसाने में कोई कठिनाई मालूम हो तो नाक का दूसरा छिद्र अंगुली से बन्द करके खूब जोर से बार बार पूरक करें। ऐसा करने पर नेति का स्निग्ध सिरा मुख में आ जाएगा तब उस सिरे को तर्जनी एवं अँगूठे की मदद से पकड़कर बाहर निकालें। अब इसके दोनों छोर को दोनों हाथों से पकड़कर घर्षण करें। इस क्रिया को घर्षण नेति कहते हैं। पुनः सूत्र को निकालकर गुनगुने पानी में साफ करके दूसरे नासा छिद्र से घुसाकर घर्षण करें। इस तरह सूत्रनेति की क्रिया सम्पन्न करें।

जलनेति :—

जलनेति को सूत्रनेति के पश्चात् करें। इस कार्य के लिए आधा किलो जल अँटने लायक एक टोंटीदार बर्त्तन में गुनगुना जल लेकर उसमें नमक मिला लें। उसे एक तलहथी पर रखकर नाक के एक छिद्र से लगायें और सिर को दूसरी ओर थोड़ा झुकायें। जल दूसरी ओर नासाछिद्र होकर गिरने लगेगा। इसी प्रकार दूसरे नासा छिद्र से करते हैं। कभी-कभी जल मुख में आ जायेगा तो सिर के पिछले भाग में जहाँ मस्तिष्क का स्थान है, जलनेति के प्रभाव से गुदगुदाहट, सनसनाहट या गिनगिनाहट पैदा होगी। इससे कोई हानि नहीं होती और अभ्यास बढ़ने पर ऐसा नहीं होगा।

सावधानियाँ :—

अभ्यास के प्रारम्भ काल में सुविधा के लिए जल में थोड़ा नमक मिला लें जिससे जल आसानी से नाक में चढ़ जायेगा। जल गुनगुना और स्वच्छ होना चाहिए ताकि नासा में कोई कीटाणु या अन्य गन्दगी प्रवेश न कर पाये।

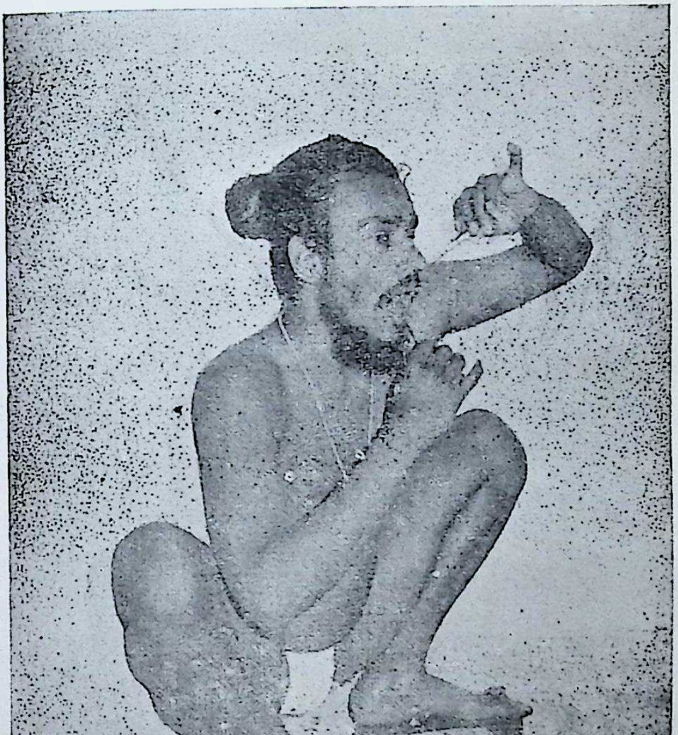

चित्र ४ : सूत्रनेति

चित्र ५ : जलनेति

सूत्रनेति के रगड़ से यदि घाव लग जाये या कभी थोड़ा खून आने लगे तो बालनेति के समय जल में नमक मिला देने से शीघ्र ही ठीक हो जाता है। इसके लिए परेशान न हों। ज्यादा तकलीफ होने पर गोघृत नासा में लगा लें या घृतनेति कर लें। इसके लिए चम्मच से या ड्रापर से घी क्रमशः दोनों नासा-रन्ध्रों से खींचते हैं और मुख में जाने पर निगल जाते हैं।

लाभ :—

कपालशोधिनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।
जत्रूर्ध्वंजातरोगौघं नेतिराशु निहन्ति च॥

(हठयोग प्र० २-३०)

नेति कपाल को शुद्ध करती, नासिका व कण्ठ के मल को निकालती, जुकाम नहीं होने देती, नजले को कण्ठ में गिरने से रोकती, शिर पीड़ा को दूर करती, दृष्टि को बढ़ाती, मोतियों को रोकती तथा स्कन्ध के ऊपर के भाग में होने वाले रोगों को नष्ट करती है।

नासिका के सभी तरह के रोग नेजल पॉलिपस, साइनोसाइटिस, पीम्पलस आदि दूर हो जाते हैं।

सर्दी, खाँसी, सिरदर्द, आधा शीशी नेति करने से ठीक हो जाता है। छात्रों के लिए नेति काफी लाभदायक है।

जो लोग हमेशा ठंढक से आक्रान्त रहते हैं उनके लिए नेति तो रामबाण है। नेति से खोई हुई स्मरण शक्ति प्राप्त होती है तथा मानसिक सभी तरह के रोगों के उन्मूलन में सहायक है।

घृतनेति—सूत्र और जलनेति के पश्चात् गोघृत ७-७ बूंद दोनों नासिका में डालें। इससे सूत्रनेति के पश्चात् नाक में लगे घर्षण से नाक की रूक्षता दूर हो जाती है तथा तार्किक एवं स्मरणशक्ति बढ़ती है। गोघृत जब मस्तिष्क के विभिन्न नाड़ियों में जाता है तो नाड़ियाँ मुलायम हो जाती हैं तथा उनकी गतिशीलता पहले की अपेक्षा काफी बढ़ जाता है।

निषेध :—

पाण्डु (Jaundice), ऊर्ध्वरक्तपित्त, पित्त-ज्वर की स्थिति में नेति नहीं करनी चाहिए। अधिक आवश्यकता होने पर जलनेति किया जा सकता है।

कपालभाति :—

कपालभाति दो शब्दों के योग से बना है, कपाल (Skull) + भाति (चमकना)। भाति शब्द संस्कृत् के भास् दीप्तौ धातु शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है चमकना (Shining)। अतः वह क्रिया जिससे कपाल (खोपड़ी, काया) देदीप्यमान हो जाय उसे कपालभाति कहते हैं। चूँकि ज्ञान-विज्ञान का केन्द्रस्थल Skull ही है जहाँ विभिन्न नाड़ियों के जाल बिछे हुए हैं और वे नाड़ियाँ ही विभिन्न विद्याओं एवं ज्ञान का प्रमुख केन्द्र हैं। परन्तु साधारण अवस्था में ये नाड़ियाँ सुषुप्त रहती हैं, क्योंकि इनका मार्ग श्लेष्मा या अन्य विकारों से अवरुद्ध रहता है। कपालभाति से यह अवरुद्धता दूर होकर नाड़ियाँ जागृत हो जाती हैं। अतः इस क्रिया का नाम कपालभाति रखा गया है।

नेति के बाद कपालभाति करना चाहिए क्योंकि जलनेति की क्रिया में मस्तिष्क के विभिन्न नाड़ियों में घुसा हुआ जल बाहर निकल जाता है। ऐसा न करने पर यह घुसा हुआ जल नुकसान पहुँचाता है जिसके कारण सिर में भारीपन तथा कान बन्द होने जैसा मालूम हो सकता है। अतः नेति के बाद यह क्रिया आवश्यक है।

कपालभाति में सिर्फ रेचक और पूरक ही शीघ्रता से किया जाता है। कपालभाति दो विधियों से किया जा सकता है। एक तो पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर शीघ्रता से रेचक और पूरक करें। यह विधि उस समय अधिक उपयोगी है जब कपाल शोधन करने के लिए सिर्फ कपालभाति ही करना हो। परन्तु जब नेति करें तो नीचे लिखे विधि का ही उपयोग करें।

विधि :—

दोनों पैरों को देढ़ फुट के फासले पर रखते हुए कमर और सिर को आगे की ओर झुकाते हुए बाँयें नासारन्ध्र को बाँयें हाथ की मध्यमा एवं तर्जनी अँगुलियों से बन्द करके दाँयें नासिका से झटके के साथ रेचक करें। इसी तरह बायें नासिका से भी करें। दोनों नासा रन्ध्रों से कम से कम सात-सात बार यह क्रिया करें।

कुछ लोग भस्त्रिका प्राणायाम को ही कपालभाति कह दिया करते हैं परन्तु वास्तव में दोनों में अन्तर है। कपालभाति षट्कर्म की क्रिया है और भस्त्रिका प्राणायाम की क्रिया है। कपालभाति में

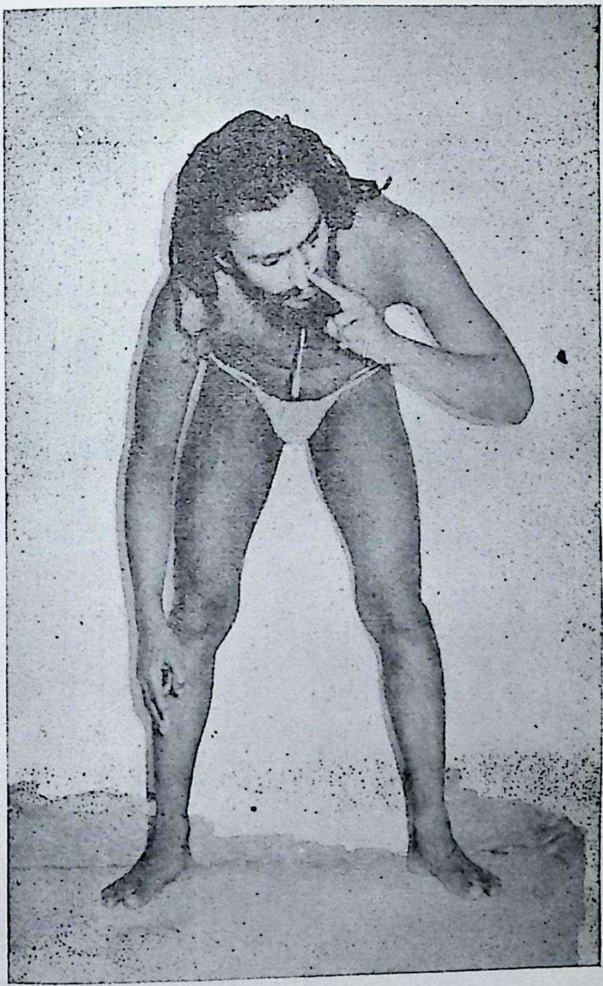

चित्र ६ : कपालभाति

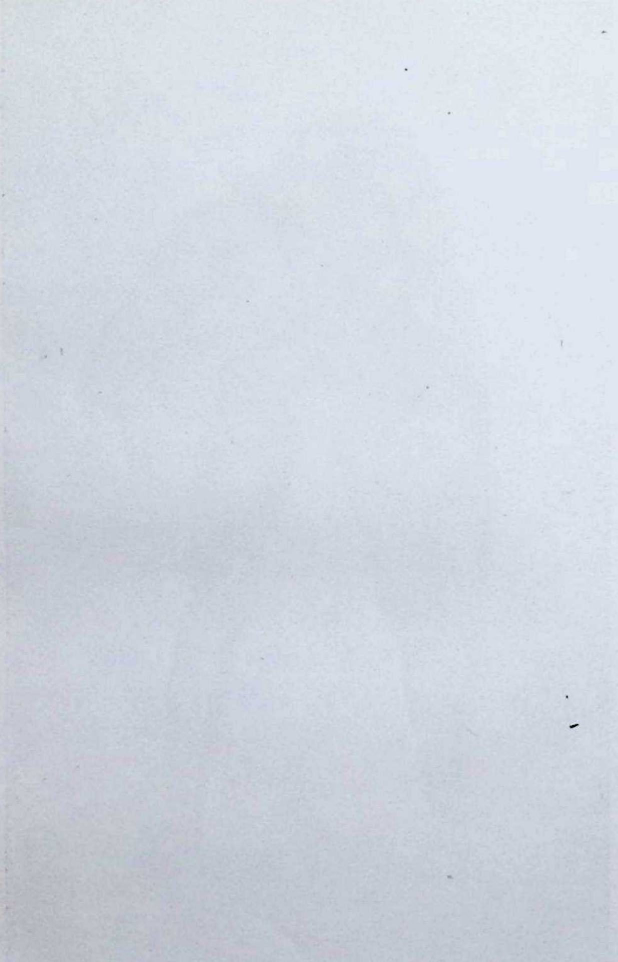

चित्रफलक : ७ मूर्ती

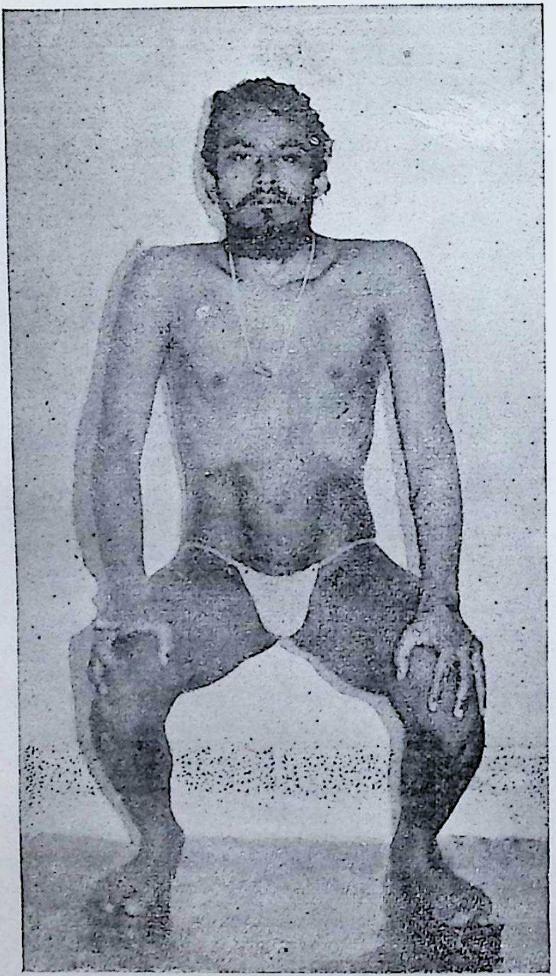

चित्र ७ : मध्यनौलि

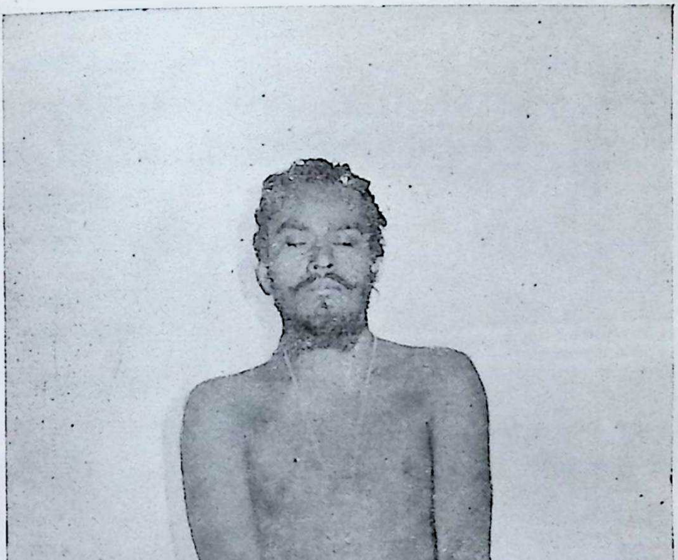

चित्र १८ : ब्रह्मचर्यासन

कूर्म :—

जिस वायु के द्वारा नेत्रों के पलक खुलते एवं बन्द होते हैं उसे कूर्म कहते हैं। इसका निवास नेत्र में है।

कृकल :—

इसका स्थान नासिका है। छींक लाना इसका मुख्य कार्य है। छींक आने में मस्तिष्क हल्का हो जाता है।

देवदत्त :—

जंभाई के वायु को देवदत्त कहते हैं। यह वायु जंभाई (उबासी) लाकर आलस्य और प्रमाद को दूर करता है। कण्ठ और मुख का विस्तार करता है।

धनञ्जय :—

सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है और शोथ को पैदा करने वाला है। यह मृत शरीर का भी त्याग नहीं करता।

उपर्युक्त प्राण जीवरूप धारण कर नाड़ियों में भ्रमण करता रहता है जिससे स्थूल शरीर का अस्तित्व बना रहता है।

नाड़ी :—

नाड़ी वह तन्तु है जो मेरुदण्ड में नीचे की ओर फैली रहती है तथा इसका सिरा मेरुदण्ड की दीवाल से जुड़ा रहता है।

> नाड्यस्तु ता अधोवक्त्राः पद्मतन्तुनिभाः स्थिताः।
> पृष्ठवंशसमाश्रित्य ....॥
>
> Śiva Saṁhitā, II, 17

[The Nāḍis are the fibres of a lotus and being supported by the vertebral column, spread downwards.]

ये मुख्य नाड़ियाँ निम्न लिखित हैं :—

१. इड़ा नाड़ी :—

बायीं नासारन्ध्र से चलने वाली नाड़ी को इड़ा नाड़ी या चन्द्र नाड़ी कहते हैं। जब बायीं नासारन्ध्र से तेजी से साँस चलता हुआ मालूम हो और दायीं से धीमा हो तो इड़ा नाड़ी में श्वाँस का चलना समझना चाहिए। इसी को चन्द्र स्वर का उदय भी कहते हैं।

मेरुदण्ड में यह नाड़ी बायीं ओर स्थित है। उस नाड़ी का वर्ण श्वेत है और इससे सतत् चन्द्र तत्त्व प्रवाहित होता रहता है। इससे शरीर में शीतलता बनी रहती है। अतएव प्राणायाम के समय जब चन्द्र नाड़ी से पूरक करते हैं तब बाह्य वायुमंडल की गर्म हवा भी अन्दर जाकर शीतलता प्रदान करती है। यह चन्द्र नाड़ी की विशेषता है।

पिंगला नाड़ी :-

दायीं नासारन्ध्र से चलने वाली नाड़ी को पिंगला नाड़ी कहते हैं। इसे सूर्य नाड़ी भी कहा जाता है। इससे सतत् सूर्य तत्त्व प्रवाहित होता रहता है। इससे शरीर में उष्णता बनी रहती है। इसलिए सूर्य भेदी प्राणायाम के समय जब सूर्य नाड़ी से पूरक करते हैं तो बाह्य वातावरण का शीतल वायु भी अन्दर जाकर उष्णता प्रदान करती है। यह सूर्य नाड़ी की विशेषता है।

Position of Iḍā and Piṅgalā from Scientific point of view

"The columns of sensory and motor fibres in the spinal cord are the Iḍā and Piṅgalā of the yogins. They are the main channels through which the afferent and efferent currents travell".

—According to Swami Vivekanand in his Lectur on Rāja yoga.

Dr. Rek in his Mysterious Kundalini writes :—

"From the description of the Nāḍīs Iḍā and Piṅglā, they are nothing but the gangliated cords of the sympathetic system, whic we know are situated one on each side of the spinal column." p. 35

सुषुम्ना :—

इड़ा और पिंगला के बीच में सुषुम्ना नाड़ी है। इड़ा और पिंगला सुषुम्ना को वक्रगति से लपेटते हुए चलती है जिसके फलस्वरूप पंच चक्र बनते हैं जिसे क्रमशः नीचे से ऊपर की ओर मलाधार,

स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत और विशुद्धि चक्र कहते हैं। सुषुम्ना कुण्डलिनी जब जागृत होती है तो इन्हीं चक्रो से होती हुई सहस्त्रार तक यात्रा करती है।

इड़ा और पिंगला जब सम गति से चलती हैं तब सुषुम्ना नाड़ी में उनका लय होता है। इसी अवस्था में कुण्डलिनी प्रवेश करती है। योगी लोग सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करके महाप्रयाण का समय बदल लेते हैं। इसीलिए सुषुम्ना नाड़ी को कालभक्षक या काल अवरोधक कहा गया है। कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करके सहस्त्रार चक्र में पहुँचकर जब वहाँ शान्त हो जाती है तब उस अवस्था को समाधि कहते हैं। योगी जब इस समाधि स्थिति में होते हैं तब उनके शरीर विकाररहित हो जाते हैं। उनके नखकेशादि नहीं बढ़ते। प्राणक्रिया का व्यापार बन्द होने से नाड़ी का चलना और हृदय का आकुञ्चन बन्द हो जाता है। इसलिए ऐसे योगी को कालभक्षक अथवा कालान्त योगी कहते हैं। सुषुम्ना नाड़ी समाधि में एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती है।

सुषुम्ना नाड़ी की पहचान :—

जब नासिका के दोनों छिद्रों से समानरूप से साँस चलता हो तब यह समझना चाहिए कि सुषुम्ना नाड़ी चल रही है। स्वरशास्त्र के अनुसार इसे सुषुम्ना स्वर कहते हैं। योगियों के लिए यह स्वर योग साधना में सहायक है।

सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड (spinal cord) में कनिष्ठिका अंगुलि के बराबर एक खोखली नली है जिसे विज्ञान की भाषा में Anatomy के अनुसार "Spinal Column" कहते हैं।

गांधारी :—बायीं आँख से बायें अँगूठे तक जाती है।

हस्तजिह्वा :—दाहिनी आँख से दायें पैर के अँगूठे तक।

पूषा नाड़ी :—दक्षिण कान से चलती है।

यशस्विनी :—बायें कान से प्रारम्भ होती हैं।

अलंबुषा :—मुख में स्थित है।

कुहू :—लिंग देश में रहती है।

शंखिनी नाड़ी :—गुदास्थान में स्थित है।

इस तरह शरीर के दस द्वारों के आधार से उक्त दस नाड़ियाँ रहती हैं।

वैयक्तिक और समष्टि प्राण :—

वैयक्तिक प्राण समष्टिप्राण (Universal Nucleas अर्थात् बाह्यगत वायु जो समष्टि प्राण का रूप है) से ही पोषित होता है। यदि इसे अपने उपादान कारण रूप वायु का आहार न मिले तो प्राणधारी का मरण हो जाता है। इस भाँति प्राण से आहार ग्रहण करके प्राणी शक्तिमान बना रहता है। चूँकि जीव का अस्तित्व प्राण है, अतः जीव को प्राणी कहते हैं अर्थात् प्राण को धारण करने वाले को प्राणी कहा जाता है।

वैयक्तिक प्राण समष्टि प्राण[1] का उपादान कारण है। इसका प्रमाण यह है कि जब हम अपने नासिका और मुख को बन्द कर देते हैं तो शरीरस्थ प्राण तड़पने लगता है और अपने उपादान कारण में मिलने के लिए बाहर गमन करने का यत्न करता है। इससे यह जाहिर होता है कि समष्टि प्राण ही वैयक्तिक प्राण का मुख्य आधार है।

पञ्चमहाभूतों की परिणत होती हुई अवस्था ही महाप्राण है। स्थूल शरीर के समस्त कार्यों का संचालन प्राण से ही होता है। सुषुप्ति की अवस्था में इन्द्रियों के सब व्यापार विलीन हो जाने

---

१. समष्टि प्राण : सृष्टि रचनाकाल में प्रकृति और सर्वव्यापक चेतन के संयोग से जो शक्ति उत्पन्न होती है उसे प्राण की संज्ञा दी जाती है।

कम्पनात्— ब्रह्मसूत्र अध्याय १ पाद ३, सूत्र ३९।

अतः प्राण का सूक्ष्म उपादान कारण मूलप्रकृति ही है। यही प्राण सर्वप्रथम जीवन का सञ्चार करता है। इस प्राणरूपी जीवनी शक्ति से ही मनुष्य के भोग प्रारम्भ होते हैं और अपवर्ग तक चलते हैं। सर्वप्रथम चित्त में प्राण की उत्पत्ति होती है। इसे ही चित्त की सर्वप्रथम वृत्ति मानते हैं। अतः पतञ्जलि ने कहा कि "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। क्योंकि प्राण के कारण ही चित्त में वृत्तियों का उदय हुआ है और यही वृत्ति मनुष्य को सांसारिक बन्धनों में फँसाती है। इसी से जीव गमनागमन में चक्कर काटता रहता है। योग के माध्यम से विशेषकर प्राणायाम से इन वृत्तियों का निरोध कर दिया जाता है तब जीव को मोक्ष प्राप्त होता है।

पर भी प्राण अपना कार्य करता रहता है। मूर्च्छावस्था में भी प्राण का व्यापार चालू रहता है। प्राण सदा ही रज प्रधान तत्त्व है और रजोगुण का स्वभाव क्रियामय है अतः उसमें गति सदैव बनी रहती है। प्रलयकाल में यह प्राण सुषुप्तावस्था में चला जाता है अतः उस समय समस्त सृष्टि का कार्यव्यापार बन्द रहता है।

शरीर में प्राण के बिना अकेला जीवात्मा कुछ नहीं कर सकता। यदि प्राण समानभाव से विकार रहित कार्य करता रहे तो शरीर सर्वथा स्वस्थ बना रहता है। प्राण के विकृत हो जाने पर मनुष्य अनेक प्रकार के रोगों से घिर जाता है। प्राण के वश में हो जाने से इन्द्रियों और मन पर भी नियन्त्रण हो जाता है।

प्राणवायु :—

इस प्राण का संचालन वायु के माध्यम से होता है। बिना वायु का प्राण क्रियाहीन रहता है। अतः प्राण और वायु का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इसलिए दोनों का संयुक्त नाम प्राणवायु कहा जाता है। भौतिक विज्ञानवादी इस प्राण और वायुरूप शक्ति को vital force vital current, universal energy आदि नामों से पुकारते हैं।

हमारे शरीर की प्रत्येक क्रिया जैसे उठना, बैठना. बोलना, चलना, देखना, सुनना आदि दैनिक कार्य-प्रणाली में रक्त के साथ प्राणवायु का विचरण तथा आपूर्ति होती रहती है। किसी भी कारण से शरीर में खराबी आ जाने पर भी प्राणवायु की क्रिया धमनियों द्वारा शरीर में संचारित होती रहती है। इससे शरीर में नयी स्फूर्ति पैदा होती है। स्नायु की यह शक्ति ही शरीर के अन्दर प्राण है और अभ्यास द्वारा इसको अपने वशीभूत करना ही प्राणायाम है।

दैनिक कार्य-प्रणाली जैसै चलना, दौड़ना, कठिन परिश्रम, भोजन, शयन, मैथुन आदि के समय हमारे श्वास-प्रश्वास पर अस्वाभाविक प्रभाव पड़ता है। हमारी प्राणशक्ति का अपचय होता है। अतः जिससे प्राणशक्ति का अपव्यय न हो और श्वास-प्रश्वास की अनियमितता न होने पाये, इसके लिए उत्तम साधन प्राणायाम है। श्वास-प्रश्वास को अपने वशीभूत करते हुए संभावित अव्यवस्थित गति का अवरोध करके इच्छानुसार उसे रेचक, पूरक के द्वारा

फैलाने-बढ़ाने से प्राण-शक्ति वश में आती है। यह प्राणायाम क्रिया द्वारा ही नियन्त्रित हो सकता है।

हम सर्वदा साँस लेते हैं परन्तु इससे पूर्ण मात्रा में प्राण प्राप्त नहीं कर पाते। यदि स्वच्छ खुले वायुयुक्त स्थान पर प्राणायामिक क्रिया द्वारा नियम तथा विधिपूर्वक श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया का अभ्यास किया जाये तो परिमित रूप में अपने अन्दर प्राण-शक्ति को प्राप्त किया जा सकता है। चर-अचर सभी प्राणियों में श्वास-प्रश्वास क्रिया दिखाई देती है। वैसे ही स्थावर वनस्पति में भी प्राण है। आक्सीजन छोड़ना और कार्बन-डाई-आक्साइड ग्रहण करना वनस्पति में निहित जीवनी शक्ति का प्रमाण है।

हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने प्राणायाम को, शरीर के नियमों की सूक्ष्मरीति से निरीक्षण, विचार तथा अध्ययन करके अपनाया है।

श्वास-प्रश्वास की क्रिया द्वारा ही शरीरस्थ प्राण का गमनागमन होता है। यदि ध्यानपूर्वक देखें तो कुछ समय तक दक्षिण नासारन्ध्र पूर्णरूपेण क्रियाशील रहता है एवं उस समय वाम नासारन्ध्र पूर्णतया सक्रिय नहीं रहता है। फिर कुछ समय के उपरान्त वाम नासिका पूर्णरूपेण सक्रिय हो जाती है एवं दक्षिण नासिका में पूर्ण गतिशीलता नहीं रहती है। शरीर के प्रकृति के अनुसार इस विधि का तारतम्य बना रहता है।

योगशास्त्र में दक्षिण नासारन्ध्र को पिंगला अर्थात् सूर्य नाड़ी एवं वाम नासारन्ध्र की इड़ा अर्थात् चन्द्र नाड़ी की संज्ञा दी गयी है। दक्षिण और वाम नासिका से शरीर को क्रमशः सूर्य एवं चन्द्र तत्त्व की प्राप्ति क्रम से होती रहती है। सूर्य एवं चन्द्र तत्त्व शरीर में जिस परिणाम में सञ्चित होते हैं उसी परिणाम में शरीर की आरोग्यता की पृष्ठभूमि तैयार होती रहती है। शरीर में सूर्य तत्त्व अधिक और चन्द्र तत्त्व न्यून होता है तो उष्णता एवं पित्त सम्बन्धी रोगों की प्रधानता रहती है।

इसी प्रकार शरीर में चन्द्र तत्त्व के आधिक्य तथा सूर्य तत्त्व की न्यूनता होने से शीतलता संबंधी रोगों का बाहुल्य रहता है। अतः मनुष्य शरीर में जब दोनों तत्त्व समरूप रहते हैं तब मनुष्य निरोग रहता है। इसीलिए प्रकृति समय-समय पर दोनों नासारन्ध्रों को पूर्णरूपेण खोलकर तथा अवरुद्ध करके शरीर को चन्द्र-सूर्य दोनों

तत्त्वों की समानता प्रदान करती रहती है। यदि किसी कारण से उपर्युक्त स्वाभाविक क्रम में व्यतिक्रम हो जाता है तो शरीर नाना रोगों से आक्रान्त हो जाता है। प्राणायाम सूर्य-चन्द्र तत्त्वों की समता करने का उत्तम साधन है।

श्वास-प्रश्वास और आयु का सम्बन्ध :—

श्वास-प्रश्वास के साथ जीवों की आयु का निकट सम्बन्ध है। श्वास-प्रश्वास क्रिया जिस प्राणी की जितनी कम है, उसकी आयु उतनी ही अधिक है एवं जिस प्राणी की जितनी अधिक है उतनी ही आयु कम हो जाती है। इसलिए प्राचीन ऋषियों ने समय का परिणाम और श्वास-प्रश्वास के अनुपात से आयु का हिसाब निकाला था। एक मिनट में श्वास-प्रश्वास की संख्या के अनुसार विभिन्न प्राणियों की आयु निम्न प्रकार से है--

क्र. सं	प्राणी	श्वास-प्रश्वास की संख्या एक मिनट में	आयु वर्ष में
१	कछुआ	४–५	१४०–१५५
२	सर्प	७–८	१२०
३	मनुष्य	१६–१८	१००
४	कुत्ता	२८–३०	१३–१४
५	बन्दर	३१–३२	१३–१६
६	खरगोश	३८–३९	८–९

उपर्युक्त तत्त्वों से यह भी ज्ञात होता है कि जिस प्राणी में श्वास-प्रश्वास की रफ्तार जितनी तेजी से चलता है वह प्राणी उतना ही अधिक चञ्चल स्वभाव का होता है। इसलिए मनुष्य की अपेक्षा बन्दर अधिक चञ्चल होता है। छोटे बच्चे सयाने की अपेक्षा अधिक चञ्चल होते हैं क्योंकि श्वास-प्रश्वास की क्रिया की रफ्तार उनमें अधिक होता है। इसलिए मन भी अधिक गति से दौड़ने लगता है।

इससे चित्त में सहज ही वृत्तियों का प्रादुर्भाव अधिक होता है। योग में इन्हीं वृत्तियों को निरोध करना होता है। जिसके लिए प्राणायाम सर्वोत्तम है। प्राणायाम के द्वारा श्वास-प्रश्वास की चाल कम होने पर जीवनी शक्ति में वृद्धि के फलस्वरूप ही दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है।

योगदर्शन के अनुसार प्राणायाम :—

प्राणायाम के सम्बन्ध में महर्षि पतञ्जलि का मत है—

"तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।"

—योगदर्शन

आसन सिद्ध होने पर श्वास-प्रश्वास की गति का रुक जाना ही प्राणायाम है। प्राणवायु का शरीर में प्रवेश होना श्वास (Inhalation) और बाहर निकलना (Exhalation) कहलाता है। इन दोनों की गति को रोक लेना अर्थात् प्राणवायु के गमनागमन को अवरुद्ध कर देना ही प्राणायाम का सामान्य लक्षण है।

When two movements of breath viz. inhalation and exhalation are stopped, it is called pranaym.

साधारणतः मनुष्य चौबीस घंटों में २१,६०० श्वास-प्रश्वास लेता है। परन्तु प्राणायाम की साधना करने पर यह संख्या घटने लगती है क्योंकि प्राणायाम के फलस्वरूप प्राण सूक्ष्म और हल्का होने लगता है इससे ऊर्जा शक्ति का क्षय नहीं होता।

प्राणायाम की आवश्यकता क्यों :—

मन और प्राण का पारस्परिक अटूट सम्बंध है, अविच्छेद्य है। मन सवार है तो प्राण वाहन है। अतः मन के निरोध से प्राण का स्पन्दन रुक जाता है और प्राण-स्पन्दन की शिथिलता मन को एकाग्र बना देती है। इसलिए मन के निरोध के वास्ते 'प्राणस्पन्दन' की गति-विधि पर सम्यक् अनुशासन रखना नितान्त आवश्यक है। प्राण स्पन्दन का संबंध श्वास-निःश्वास से है। अर्थात् जितनी ही तीव्रता से श्वास चलेगी, 'प्राणस्पन्दन' में उतनी ही गतिशीलता आयेगी और श्वास जितनी धीरे-धीरे चलेगी 'प्राणस्पन्दन' में उतनी ही अधिक शिथिलता आयेगी। अतएव मनो निरोध के लिए प्राणस्पन्दन को

वशीभूत करना पड़ता है और इसके लिए प्राणायाम की आवश्यकता होती है। प्राणायाम से प्राणस्पन्दन नियन्त्रित हो जाता है और उसी अवस्था में मन का निरोध होता है। अतः प्राणायाम मन निरोध की एक-विधि है। मन के निरोध होने पर ही समाधि की स्थिति प्राप्त होती है।

दूसरी बात यह है कि आसन की स्थिरता के बाद भी नाड़ी चक्र नाना-प्रकार के मलों से आच्छादित रहने के कारण वायु सुषुम्ना मार्ग में प्रवेश नहीं कर सकता इसीलिए प्राण-तत्त्व के संग्रह से पहले नाड़ी-शोधन की आवश्यकता होती है। नाड़ी विशुद्ध हुए बिना उन्मनी भाव अथवा मनो-निवृत्ति की कोई आशा नहीं की जा सकती। अतः विधिपूर्वक प्राणायाम करने पर सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर का समस्त मल नष्ट हो जाता है। क्योंकि सुषुम्ना वह नाड़ी है जो मेरुदण्ड के नली में स्थित है और मस्तिष्क के नीचे तक पहुँचती है। यह कनिष्ठिका उँगली के बराबर मोटी होती है। जब शरीर के स्थिर होने से और प्राणायाम की क्रिया से प्राण-सुषुम्ना की ओर प्रवृत्त होता है तभी कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर सहस्त्रार तक निर्विघ्नतापूर्वक यात्रा कर पाती है।

शरीर की कृशता, कान्ति, इच्छानुसार वायुधारण करने की क्षमता, अग्नि वृद्धि, नाद की अभिव्यक्ति और आरोग्यता—ये सब लक्षण जब आविर्भूत हो जायँ तब समझना चाहिए कि प्राणायाम की क्रिया के फलस्वरूप सब नाड़ियाँ शुद्ध हो गई हैं। प्राणायाम से चित्त की चञ्चलता दूर हो जाती है एवं शरीर शुद्ध हो जाता है। इससे कफ-पित्त एवं वायु समान हो जाता है और शरीर में कोई रोग नहीं रह जाता है एवं मन वश में हो जाता है तथा सूक्ष्म प्राण भी स्वाधीन हो जाता है।

तीसरी बात यह है कि अन्तः करण में जो अंश चित्त के नाम से प्रसिद्ध है उसमें जीव के जन्म-जन्मान्तर के संस्कार एकत्रित रहते हैं। जब तक यह चित्त क्षीण नहीं होता तब तक सांसारिक वासना समाप्त नहीं होती। हजारों-लाखों जन्मों के संस्कारों से चित्त भरा हुआ होता है। इसलिए चित्त पर विजय प्राप्त करना सहज काम नहीं है। चित्त के मूल कारण दो हैं।

'हेतुं द्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरण:'

चित्त के अन्दर वृत्ति प्रवाह के केवल दो हेतु हैं एक तो वासना अर्थात् भावनामय संस्कार और दूसरा है प्राण-प्रवाह । प्राण के अन्दर वासना का बीज और संस्कार रहता है। प्राण के जागृत होने पर मन भी जागृत हो उठता है । अतएव प्राण और मन के स्पन्दन का नाश करने की आवश्यकता होती है। निरन्तर नाड़ियों से होकर प्राणधारा जीव के शरीर में प्रवाहित हो रही है और वही श्वास के रूप में स्थूलत: दिखायी देती है। यह श्वास ही जीव का जीवन है। परन्तु श्वास की इस प्रकार की गति संसार वासना का मूल कारण है। इसलिए श्वास की निरोध की आवश्यकता है।

"पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते ।"

जब वायु का निरोध होता है तब मन भी विलीन हो जाता है। अर्थात् प्राणवायु स्थिर होने पर मन स्थिर होता है मन स्थिर होने पर अवश्य ही प्राण भी स्थिर होता है। इन्द्रिय विकारादि दोष समूह प्राण-निग्रह के द्वारा दूर होते हैं। जब महामोहमय इन्द्रजाल के द्वारा प्रकाशशील सत्त्व ढक जाता है तब अन्य गुण कार्यशील होकर जीव को अकार्य में प्रवृत्त करता है। इस प्रकाश को ढकने वाला कर्म प्राणायाम के द्वारा नष्ट होता है—

'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'

—योगदर्शन

जब तक रजो और तमोगुण बना रहता है तब तक बुद्धि का विकार नष्ट नहीं होता है। अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेशादि पञ्च-क्लेश कार्य-कारण-स्त्रोत को उत्पन्न कर कर्म-विपाक की सृष्टि करते हैं। इसी कारण समाधि साधना द्वारा बुद्धि स्थिर करने और सब क्लेश क्षीण करने के लिए प्राणायाम आवश्यक है। जब तक सब क्लेश क्षीण नहीं हो जाते—तब तक वे अप्रसवधर्मा नहीं होते। क्लेश की प्रबल अवस्था रहने पर अशुद्धि दूर नहीं होती, परन्तु प्राणायाम द्वारा शुद्धि हो जाती है। अशुद्धि के नष्ट होने पर सब क्लेश क्षीण हो जाते हैं। सभी क्लेशों के क्षीण हुए बिना अशुद्ध वृत्तियों को नष्ट करना संभव नहीं होता। इन्हें दूर करने का एकमात्र उपाय है प्राणायाम।

साधारणतः हमारा चित्त सांसारिकता में लगा रहता है तब श्वास भी बाहर की ओर विचरण करता है। जब श्वास हमारी बायीं अथवा दायीं नासिका से चलता है तब वासना स्पन्दित होती है। सभी जीवों का श्वास-प्रश्वास इन्हीं दो नासापुटों से प्रवाहित होता है, अतएव वासना किसी तरह निवृत्त नहीं होती। इसलिए योगियों ने, श्वास बाहर की ओर गमन न करे, इसके लिए चेष्टा की है। बाहर की ओर गमनागमन करने का पथ इड़ा और पिंगला नाड़ी है और साधारणतः अज्ञानी की ज्ञान नाड़ी (सुषुम्ना-पथ) बन्द रहती है। योगी इसीलिए इड़ा और पिंगला नाड़ी का द्वार बन्द करके सुषुम्ना मार्ग से प्राण चलाने की चेष्टा करते हैं, अन्यथा मनुष्य के अन्दर वास्तविक ज्ञान का उदय होना संभव नहीं है। हमें समस्त ज्ञान नाड़ी-पथ से होता है। ब्रह्मज्ञान भी नाड़ी-पथ से होता है। वह ब्रह्म-ज्ञान प्रवाहिका नाड़ी सुषुम्ना है। इसी से सुषुम्ना नाड़ी से प्राणवायु का संचालन किया जाता है।

विधिवत् प्राण संयम के द्वारा नाड़ी-चक्र के विशुद्ध होने पर सुषुम्ना का मुख खुल जाता है और उसके अन्दर प्राण वायु सहज में ही प्रवेश कर जाता है। मध्य नाड़ी अर्थात् सुषुम्ना के अन्दर प्राणवायु सञ्चालित होने पर मन को जो स्थिर भाव प्राप्त होता है उसी स्थिरावस्था का नाम 'उन्मनी अवस्था' है।

जो विधिवत् प्राणायाम का अभ्यास करता है उनके श्वास की ऊर्ध्व-अधः गति का शेष हो जाता है। प्राण उस समय सुषुम्ना के मध्य से होकर मस्तक में जाकर स्थिर हो जाता है। प्राणायाम के द्वारा जब सुषुम्ना में प्राण की गति होती है तब सहजावस्था प्राप्त होती है और उसके बाद निर्विकार स्वरूप में स्थित हो जाती है। इसीलिए योगियों ने चित्त के निरोध के लिए प्राणायाम सर्वश्रेष्ठ बतलाया है।

सुषुम्ना के अन्दर प्राणवेग सञ्चारित होने पर मन शून्य के अन्दर प्रविष्ट हो जाता है अर्थात् निरालम्ब होकर स्थिर हो जाता है। इस समय योगी के सभी कर्म निर्मूल हो जाते हैं। यद्यपि सुषुम्ना के अन्तर्गत प्राण की स्थिति नित्य है तथापि इड़ा-पिंगला के अन्दर जो प्राण-प्रवाह चल रहा है उसे बन्द हुए बिना उसका अनुभव नहीं होता। इसीलिए इड़ा-पिङ्गला के प्रवाह का अवरोध करने की आव-

श्यकता है। प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में सर्वदा ही प्रवाहित होती है। परन्तु जो योगी इसे जान लेते हैं वे समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं।

प्राण की चञ्चलता के कारण ही जीव संसार चक्र में परिभ्रमण करता है। अतएव सब प्रकार से इस प्राण को स्थिर करना आवश्यक है। प्राण स्थिर हो जाने पर कामादि रिपुगण फिर नाड़ियों को दूषित नहीं कर पाते। चूंकि हमें समस्त ज्ञान नाड़ी द्वारा ही होता है, अर्थात् मन में कोई विचार आने के पूर्व नाड़ी-प्रवाहिका के अन्दर कंपन होता है और वही संकल्प-विकल्पादि के रूप में ऊपर उठता है। उस अवस्था को ही मन कहते हैं। अतएव नाड़ी शुद्ध करना प्राणायाम से ही संभव है। प्राणवायु के कारण ही जीव-समूह इस संसार चक्र में निरन्तर भ्रमण करता है। अतएव योगी दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिए प्राणवायु को स्थिर करते हैं। क्योंकि इसके अभ्यास से नाड़ियाँ पुनः कामादि अष्ट दोषों से दूषित नहीं हो पाती हैं। नाड़ी विशुद्ध हो जाने पर ही कुण्डलिनी शक्ति अपने रन्ध्र को छोड़ देती है अन्यथा नहीं छोड़ती। यह क्रिया प्राणायाम से ही संभव है।

प्राणायाम के अंग :—

प्राणायाम के तीन अंग हैं—

"बाह्याभ्यान्तरस्तम्भवृत्तिः।"

(योगदर्शन)

अर्थात् बाह्य (रेचक), आभ्यान्तर (पूरक), स्तंभवृत्ति (कुम्भक) है।

१. पूरक (Inhalation) :—

आकाशस्थ प्राणवायु का नासिका से खींचकर छाती में भरना।

२. रेचक (Exhalation) :—

रोके हुए अशुद्ध वायु को नासिका द्वारा बाहर निकाल देना।

३. कुम्भक (Optional) :—

भरे हुए वायु को यथाशक्ति रोकना।

बाह्य, आभ्यन्तर एवं स्तंभवृत्ति प्राणायाम देश[1], काल[2] और संख्या[3] द्वारा देखा जाता हुआ हल्का और लंबा हो जाता है, अर्थात् इन तीनों प्राणायाम के अङ्गों को साधक देश, काल और संख्या द्वारा देखता रहता है कि वे किस अवस्था तक पहुँच चुके हैं। इस प्रकार परीक्षा करते-करते जैसे-जैसे प्राणायाम उन्नत होता जाता है वैसे ही वैसे उनमें लंबाई और हल्कापन बढ़ता जाता है जैसा कि योगदर्शन में बताया गया है—

बाह्याभ्यान्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टोदीर्घसूक्ष्मः ।

(योग० सा० पा०–५०)

१. पूरक या आभ्यान्तरवृत्ति (Inhalation or Internal Form) :—

प्राणवायु को भीतर ले जाकर यथाशक्ति रोके रहना और साथ ही साथ यह भी देखते रहना चाहिये कि आभ्यान्तर देश में कहाँ तक जाकर प्राणवायु रुकता है, वहाँ कितने काल तक सुखपूर्वक रुकता है ? तथा आभ्यान्तर देश में प्राणायाम कहाँ तक जाता है ? और उतने समय में प्राणवायु की स्वाभाविक गति क्या है ? अर्थात् कितनी संख्या है ? यह आभ्यान्तरवृत्ति या पूरक कहलाता है। अभ्यास से यह भी दीर्घ एवं सूक्ष्म होता है।

२. रेचक या बाह्यवृत्ति (Exhalation or External Form) :—

प्राणवायु को शरीर से बाहर निकालकर जितने काल तक सुखपूर्वक रोक सकें और साथ ही साथ इस बात की परीक्षा करते

---

१. यहाँ देश से अभिप्राय यह है कि श्वास को लेने और त्यागने में श्वास जितना लम्बा भीतर जाय उतना ही लम्बा बाहर आये। इस दीर्घता को देश कहते हैं। अभ्यास से श्वास की दीर्घता क्रम से बढ़ती जाती है।

२. काल से यहाँ उद्देश्य है कि पूरक में जितना समय लगे उससे चारगुना समय तक कुम्भक करना चाहिए। फिर रेचक के लिए पूरक से दुगुना समय लगाना चाहिए अर्थात् पूरक, कुम्भक और रेचक में क्रमशः १ : ४ : २ का अनुपात होना चाहिए।

३. संख्या शब्द से अभिप्राय है कि पूरक जितनी संख्या नाम-जप की हो उससे चारगुना संख्या नाम जप की कुम्भक में होनी चाहिए और दुगुना संख्या रेचक में।

रहना कि वह बाहर आकर कहाँ ठहरा है, कितने समय तक ठहरा है और उतने समय में स्वाभाविक प्राण की गति की कितनी संख्या है, रेचक या बाह्यवृत्ति कहलाता है।

अभ्यास करते-करते यह लंबा अर्थात् बहुत काल तक रुके रहने वाला और सूक्ष्म अर्थात् हल्का हो जाता है। यह अनायास ही साध्य होने लगता है।

३. स्तंभवृत्ति या कुम्भक (Optional) :—

शरीर के भीतर जाने या बाहर निकलने वाली जो प्राणों की स्वाभाविक गति है; उसे सुखपूर्वक बाहर या भीतर निकलने या ले जाने का अभ्यास न करके प्राणवायु स्वभाव से बाहर निकला हो या भीतर जाता हो, जहाँ हो वहीं उसकी गति को स्तंभति कर देना और यह निरीक्षण करते रहना कि प्राणवायु किस देश में रुका है और कितने समय तक सुखपूर्वक रुका रहता है; इस समय स्वाभाविक गति की कितनी संख्या होती है; यह प्राणायाम स्तंभवृत्ति या कुम्भक कहलाता है। अभ्यास के अनुसार यह भी दीर्घ और सूक्ष्म होता है।

प्राणवायु का नाभि, हृदय, कण्ठ या नासिका के भीतर के भाग तक का नाम आभ्यान्तर देश है और नासिका पुट से वायु का बाहर सोलह अंगुल[1] तक बाह्य देश (स्थान) है। जो साधक पूरक

---

१. प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास के बाद जब श्वास की लम्बाई सोलह अंगुल आने लगे तो जल तत्व का उदय होता है और इस श्वास की आकृति अर्धचन्द्राकार एवं रंग सफेद होता है। जब श्वास की लंबाई बारह अंगुल आने लगे तो पृथ्वी तत्त्व का उदय होता है एवं इसकी आकृति चौकोर और रंग पीला होता है; जब श्वास की लंबाई आठ अंगुल आने लगे तो वायुतत्त्व का उदय होता है एवं इसकी आकृति गोल तथा रंग नीला, हरा या काला होता है, आकृति त्रिकोण एवं रंग लाल होता है।

प्राणायाम के अभ्यास के समय श्वास के दीर्घ एवं सूक्ष्म होने के साथ ही साथ विभिन्न तत्वों का उदय होता है जो स्वर विज्ञान के साधना में सहायक है। विशेष जानकारी स्वर-विज्ञान शीर्षक में लिखी गयी है।

करते समय नाभि तक श्वास को खींचता है वह सोलह अंगुल तक बाहर फेंके; जो हृदय के अन्दर खींचता है, वह बारह अंगुल तक बाहर फेंके, जो कण्ठ तक श्वास को खींचता है वह आठ अंगुल बाहर निकाले और जो नासिका के अन्दर ऊपरी अन्तिम भाग तक ही श्वास को खींचता है, वह चार अंगुल बाहर तक श्वास को फेंके। इसमें पूर्व-पूर्व से उत्तर-उत्तर वाले को सूक्ष्म और पूर्व-पूर्व वाले को दीर्घ समझना चाहिए।

प्राणायाम में देश काल और संख्या का घनिष्ठ संबन्ध होने के कारण इसके नियम में व्यतिक्रम नहीं होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यदि कोई प्रतिदिन २० प्राणायाम करता है तो सभी प्राणायाम समान होना चाहिए अर्थात् उसके देश काल और संख्या प्राणायाम के नियमानुसार होना चाहिए। प्राणायाम प्रारंभ में सूक्ष्म होते हैं, आगे चलकर दीर्घ हो जाते हैं। नियमानुसार प्राणायाम करने से क्रमशः रेचक, पूरक एवं कुम्भक शक्ति में वृद्धि होती है। पारमार्थिक लाभ के अतिरिक्त अनेक प्रकारों के स्वास्थ्य लाभ भी होता है। जैसे चार प्रणव से पूरक करते समय एक सेकेण्ड समय लगा तो सोलह प्रणव (ओम ॐ) से कुम्भक करते समय चार सेकेण्ड और आठ प्रणव से रेचक करते समय दो सेकेण्ड समय लगना चाहिए। मन्त्र की गणना का नाम काल है। काल और मात्रा की अधिकता एवं न्यूनता से भी प्राणायाम दीर्घ और सूक्ष्म होता है।

विभिन्न तत्त्वों की तालिका :—

क्र सं.	तत्त्व	रंग	आकृति	लम्बाई
१.	जल	सफेद	चन्द्राकार	१६ अंगुल
२.	पृथ्वी	पीला	चौकोर	१२ अंगुल
३.	वायु	नीला या हरा या काला	गोल	८ अंगुल
४.	अग्नि	लाल	त्रिकोण	४ अंगुल

विषयाक्षेपी प्राणायाम :—

एक विशेष प्रकार का प्राणायाम जिसका उल्लेख योग दर्शन में किया गया है—

बाह्याभ्यान्तरविषयाक्षेपीचतुर्थः ।

(योग सं०-५१)

शब्दस्पर्शादि जो इन्द्रियों के बाहरी विषय हैं और संकल्प-विकल्पादि जो अन्तःकरण के विषय हैं, उनके चिन्तन का त्याग कर देने से अर्थात् इस समय प्राण बाहर निकल रहे हैं कि ठहरे हुए हैं, इस जानकारी को त्याग करके मन को इष्ट-चिन्तन में लगा देने से देश, काल और सख्या के ज्ञान के बिना अपने आप जो प्राणों की गति जिस किसी देश में रुक जाती है वह चौथा प्राणायाम विषयाक्षेपी कहलाता है ।

यह प्राणायाम मन्त्र-जप से आसानी से सिद्ध हो जाता है और स्वाभाविक ढंग से अपने आप प्रकट हो जाता है । जब साधक नियमित रूप से स्थिर आसन पर बैठकर किसी मन्त्र का जप करता है तो कुछ समय बाद अनायास ही यह प्राणायाम प्रत्यक्ष हो जाता है । यह राजयोग का प्राणायाम है । इसमें मन की चञ्चलता शान्त हो जाने के कारण प्राणों की गति अपने आप नियन्त्रित हो जाती है ।

अन्य प्राणायामों में प्राणों के निरोध से मन का संयम है और चतुर्थ प्राणायाम में मन और इन्द्रियों के संयम से प्राणों का संयम है । यहाँ प्राणों के रुकने का कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं है--जहाँ कहीं भी रुक सकता है तथा काल और संख्या का भी विधान नहीं है । यही इस प्राणायाम की विशेषता है ।

प्राणायाम के अभ्यास से अज्ञान का आवरण हट जाता है और ज्ञान का प्रकाश होता है ।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।

(यो०-५२)

जैसे-जैसे साधक प्राणायाम का अभ्यास करता जाता है वैसे-वैसे उसके सञ्चित कर्म-संस्कार और अविद्यादि क्लेश दुर्बल होते चले जाते हैं । ये कर्म-संस्कार और अविद्यादि क्लेश ही ज्ञान के आवरण हैं । इस आवरण के कारण ही मनुष्य का ज्ञान ढका हुआ है । अतः

वह मोहित हुआ रहता है। जब यह पर्दा दुर्बल होते-होते क्षीण हो जाता है तब साधक का ज्ञान सूर्य की भाँति प्रकाशित होता है। इसके अभ्यास से धारणा की योग्यता आती है। यानि उसे किसी जगह सहज ही स्थिर किया जा सकता है।

महर्षि मनु ने कहा है—

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथामलाः।
तथोन्द्रियाणां दहयन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

(मनुस्मृति)

अर्थात् "अग्नि से तपाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष जलकर नष्ट हो जाते हैं।"

वह प्राणायाम जो जप और ध्यान के साथ किया जाता है उसे सगर्भ प्राणायाम एवं जो बिना मन्त्र एवं ध्यान के किया जाता है उसे निगर्भ प्राणायाम कहते हैं।

"अगर्भश्च सगर्भश्च प्राणायामोद्विधास्मृताः।
जपं ध्यानं विनागर्भः सगर्भस्तत्समावयात् ॥

निगर्भ या अगर्भ से सगर्भ प्राणायाम का गुण सौगुणा अधिक है इसलिए योगी सगर्भ प्राणायाम करते हैं--

अगर्भाद्गर्भसंयुक्तः प्राणायामः शताधिकः।
तस्मात्सगर्भं कुर्वन्ति योगिनः प्राणसंयम ॥

प्राणायाम का महत्व (Importance of Pranayam):-

प्राणायाम शारीरिक एवं मानसिक क्रिया है। इससे शरीर और मन दोनों का निग्रह होता है। प्राणायाम से सभी प्रकार के मल धुल जाते हैं। प्राणायाम से बढ़कर दूसरा कोई मल-शोधक नहीं है। प्राणायाम के साधन से ज्ञानरूप प्रकाश को रोक रखनेवाला आवरण नष्ट हो जाता है। इससे बढ़कर कोई तप नहीं। इससे सारे मल जलकर ज्ञानरूप दीपशिखा प्रदीप्त हो जाती है। प्राणायाम से शरीर ओजस्वी हो जाता है। इससे हम शारीरिक एवं मानसिक समता प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि काम, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह-मद, मात्सर्य, ईर्ष्या,

घृणा, शोक, अनुताप आदि मनोविकारों से ही मानसिक शान्ति भंग होती है। ये विकार हमारे मन के उस स्तर में उत्पन्न होते हैं जहाँ चेतना अथवा ज्ञान अर्धजागृत रहता है।

प्राणायाम के द्वारा हमारे मस्तिष्क के स्नायुजाल तथा मन के बोधपूर्वक व्यापारों पर ही हमारा अधिकार नहीं होता बल्कि उससे उपर्युक्त स्तर के द्वार भी खुल जाते हैं जहाँ हमारा ज्ञान अर्द्ध जागृत रहता है उस स्तर पर हमारा अधिकार हो जाता है। यही कारण है कि प्राणायाम का साधक अपने मनोविकारों को दबाकर मानसिक संतुलन (Mental Balance) स्थापित करने में सक्षम हो पाता है।

मानसिक संतुलन में हलचल पैदा करनेवाले कारणों को मल कहा जाता है क्योंकि वे प्रकाशरूप आत्मा का आच्छादन कर देते हैं। इन मलों को धोने तथा आत्मा को अपने निज स्वरूप में स्थित करने के लिए महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम को ही साधन बतलाया है। भाष्यकार व्यास ने उसका समर्थन किया है।

'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।"

(पा० यो० सू. २।५२)

"ततो परं प्राणायामात्, ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य ।"

(व्यासभाष्य)

प्राणायाम सम्यक होने से वात, पित्त और कफ में संतुलन रहने से शरीर निरोग रहता है। किन्तु अनुष्ठान के व्यक्तिक्रम से नाना प्रकार के रोगों की प्राप्ति भी होती है। यथा-

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः ॥
हिक्काश्वासश्च काशश्च शिरःकर्णाक्षिवेदना ।
भवन्ति विविधादोषाः पवनस्य व्यतिक्रमात् ॥

(सिद्धयोग)

अर्थात् नियमपूर्वक प्राणायाम करने से साधक सर्वरोग से मुक्त होता है; किन्तु अनियमित तथा वायु का व्यतिक्रम हो जाने पर हिचकी, दमा, खाँसी और आँख, कान तथा सिर की नाना प्रकार की बीमारियाँ होती हैं। कुम्भक से मन मलरहित हो जाता है जिससे योगी

का प्राण बहिर्गमन नहीं करता तो उसकी मृत्यु कैसी ? जिस योगी का केवल कुम्भक सिद्ध हो गया, उसको भी कुछ दुर्लभ नहीं है। जैसे भीष्मपितामह ने अपने शरीर को दक्षिणायन में न त्यागकर अपने इच्छानुसार उत्तरायण में त्यागा। यह प्राणविद्या की महिमा है। जहाँ तक प्राणवायु कुम्भक से निरुद्ध है, वहाँ तक मन भी वृत्ति-रहित और दृष्टि भी भृकुटी में अचल है।

प्राणायाम की सिद्धि होने पर मन स्थिर होकर धारणाओं के योग्य हो जाता है।

प्राणायाम के लिए उपयुक्त समय (Proper time for Pranayam) :—

प्राणायाम का अभ्यास दिन में दो बार करें। प्रातःकाल सूर्योदय से पहले अपनी नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर। इस समय वायु में जीवनी शक्ति (Vital Force) अधिक होती है। सन्ध्या को सूर्यास्त के दो घण्टे बाद करें। गर्मी का मौसम हो तो अभ्यास कुछ और देर से प्रारम्भ करें। क्योंकि दिन के वायु में कार्बन-डाई-आक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है और सूर्यास्त के बाद धीरे-धीरे वायु शुद्ध होने लगती है। सुविधा नहीं मिलने पर सुबह में एक समय भी प्राणायाम करने से कोई हानि नहीं होती है।

ऐसे तो प्राणायाम सभी ऋतुओं में किया जा सकता है। परन्तु शरद ऋतु अधिक अनुकूल है। दूसरी ऋतु में नये साधक को थोड़ी विघ्न की संभावना हो सकती है। वसन्त ऋतु में अन्तःस्थित कफ प्रकुपित होकर बाहर निकलने लगता है और शरद ऋतु में पित्त-प्रकोप होता है। इससे कफ-दोष शीघ्र जल जाता है। इस हेतु ये दोनों ऋतुएँ हितकर हैं। वास्तव में अपनी शारीरिक स्थिति के अनुसार ही प्राणायाम शुरू करें। जिस देश या स्थान में स्वभाविक नित्य कफ की वृद्धि होती है ऐसे देश में रहकर योगाभ्यास नहीं करना चाहिए।

प्राणायाम की तैयारी (Preparation of Pranayam) :—

प्राणायाम के अभ्यास के लिए निर्वात, स्वच्छ और प्रशान्त स्थान होना चाहिये। स्थिर आसन में बैठने के लिए कुश, कम्बल,

मृगचर्म, बाघंबर, ऊन में से किसी एक चीज का आसन लेना चाहिए। क्योंकि इस आसन पर बैठकर अभ्यास करने पर जो आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है वह शक्ति हमारे अन्दर ही रह जाती है और उसका संग्रह (Storage) हो जाता है। परन्तु जमीन पर बैठकर कपड़ा या टाट पर बैठकर जब प्राणायाम का अभ्यास करते हैं तो इस क्रिया के फलस्वरूप शरीर से निकली हुई तेजस् शक्ति एक प्रकार की विद्युत् शक्ति जमीन में प्रवाहित हो जाती है। कंबल, ऊन या कुश का प्रयोग करने से तेजस् शक्ति जमीन में Earthing नहीं हो पाती, क्योंकि ये सब विद्युत् का कुचालक (Bad Conductor of Electricity) हैं।

प्राणायाम के अभ्यास के पूर्व किसी आसन जैसे सिद्ध आसन, पद्मासन, वज्रासन या स्वस्तिक आसनों में से किसी एक आसन में कम से कम बीस-पच्चीस मिनट बैठने का अभ्यास कर लेना चाहिए। जो साधक गृहस्थाश्रम में हैं उन्हें सिद्धासन में नहीं बैठना चाहिए क्योंकि यह एक पूर्ण यौगिक आसन है। सिद्धासन के अभ्यास से काम-विषयक नाड़ियाँ मृदुल हो जाती हैं जिससे काम-वासना का आवेश शिथिल हो जाता है। अतएव इसके बाद काम-वासना में प्रवृत्त होने पर साधक को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक वृत्ति हो सकती है। किसी एक आसन में बैठकर बाएँ हाथ के तलहथी के पिछले भाग को घुटने पर रखें। अँगूठा एवं तर्जनी से इस प्रकार गोलाकार बनाएँ कि तर्जनी अँगूठे के प्रथम पोर को अन्दर से छूता हुआ एवं शेष तीनों अँगुलियाँ परस्पर सही और मुड़ी हुई हों। दाहिने हाथ की अँगुलियों से नाक को दबायें। सिद्धासन और पद्मासन के लिए ज्ञान मुद्रा और ब्रह्मांजलि मुद्रा का चित्र देखें।

प्राणायाम में प्रयोग होने वाले बन्ध :—

प्राणायाम शुरू करने से पहले रेचक, पूरक, कुम्भक, मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध एवं जालन्धर बन्ध का पूर्ण अभ्यास कर लेना चाहिये। बिना बन्धों के प्राणायाम कदापि नहीं करना चाहिये अन्यथा प्राणायाम वास्तविक लाभ नहीं मिल पायेगा।

बन्धों के प्रयोग का तरीका निम्नलिखित है :—

पूरक के समय :—मूलबन्ध और उड्डीयान बन्ध।

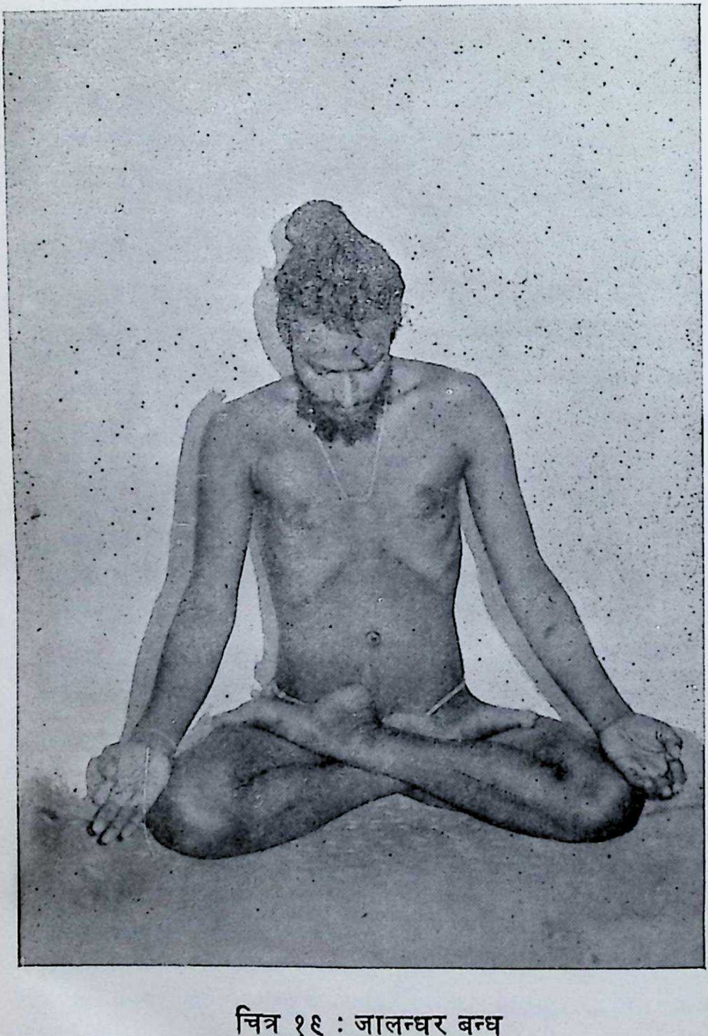

चित्र १९ : जालन्धर बन्ध

कुम्भक के समय :—मूलबन्ध और जालन्धर बन्ध।

रेचक के समय :—मूलबन्ध और उड्डीयान बन्ध।

पूरक, रेचक, कुम्भक प्रत्येक के साथ दो बन्ध रहते हैं। इससे यह भी स्पष्ट है कि मूल बन्ध प्राणायाम के शुरू से लेकर अन्त तक रहता है।

मूलबन्ध :—

स्थित आसन में बैठकर गुदा को ऊपर की ओर संकोच करके अपान वायु को ऊपर की तरफ खींचकर स्थित रखने को मूलबन्ध कहते हैं।

लाभ :—

मूलबन्ध से प्राणवायु का लय होने लगता है। मूलबन्ध से प्राणवायु, अपानवायु, नाद एवं विन्दु को एक किया जाता है (अनाहत ध्वनि को नाद कहते हैं और अनुस्वार को विन्दु)। मूलबन्ध से अपान-वायु प्राणवायु के साथ एक होकर सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाती है। और नाद उत्पन्न होने लगता है। नाद के साथ प्राणवायु और अपान-वायु हृदय में जाकर विन्दु की एकता करके मस्तक में पहुँच जाती है, जिससे योग सिद्धि मिलती है। इसे करने से अन्दर से उत्साह और आनन्द मिलता है और वृद्धावस्था दूर चली जाती है। भूख बढ़ती है। बवासीर, मूत्रेन्द्रिय रोग (Urenal disease) दूर हो जाते हैं।

जालन्धर बन्ध :—

जालन्धर बन्ध का अर्थ है जाल समूह। समस्त नाड़ियों के जाल को जो बाँध देता है और अमृत को नीचे जाने से रोकता है उसे जालन्धर बन्ध कहते हैं।

कण्ठ को सिकोड़कर दृढता से ढोढ़ी को कण्ठ कूप से लगायें। ढोढ़ी को इस प्रकार सटाएँ कि हृदय और ढोढ़ी के बीच मात्र छः अंगुल का फासला रह जाये। इस क्रिया को जालन्धर बन्ध कहते हैं। यह बन्ध कुम्भक के समय करना चाहिए। इस बन्ध से अमृत जठराग्नि में नहीं गिरता है और प्राणवायु प्रकुपित नहीं होता है। दूसरे इससे गले की समस्त बीमारियाँ दूर हो जाती हैं।

उड्डीयान :—

उदर के नाभि वाले भाग को पीछे की ओर खींचकर स्थिर रखने को उड्डीयान बन्ध कहते हैं। इस बन्ध से प्राणवायु उड़कर सुषुम्ना नाड़ी में जाता है। इस बन्ध से पेट सम्बन्धी सभी प्रकार के रोग जैसे—कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, अम्ल-पित्त (Acidity) आदि दूर हो जाते हैं। इस तरह आसन पर दृढ़ होकर जीवन-मृत्यु एवं इंद्रियों को जीतने वाले तथा परिमित भोजन करने वाले साधक को गुरु के बतलाये हुए मार्ग से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

प्राणायाम के भेद (Kinds of Pranayam) :—

प्राणायाम के निम्नलिखित नव भेद हैं :—

१. नाड़ीशोधन	२. सूर्यभेदी	३. चन्द्रभेदी
४. उज्जायी	५. सीत्कारी	६. शीतली
७. भस्त्रिका	८. भ्रामरी	९. मूर्च्छा

१. नाड़ी-शोधन :—

पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर वाम नासिका से पूरक और दक्षिण नासिका से रेचक और पुनः दक्षिण से पूरक एवं वाम से रेचक करने की क्रिया को नाड़ी-शोधन या अनुलोम-विलोम प्राणायाम कहते हैं।

विधि :—

वाम नासिका से पूरक करें, यथाशक्ति कुंभक करें, दक्षिण से रेचक करें, पुनः दक्षिण से पूरक करके कुंभक करें और वाम से रेचक करें। कुंभक करते समय मूलबन्ध और जालन्धरबन्ध का प्रयोग करें। यह प्राणायाम की एक आवृत्ति हुई। इस तरह तीन आवृत्ति से प्राणायाम प्रारंभ करें।

लाभ :—

१. शरीर में निहित त्रिदोष संबंधित सभी रोग दूर हो जाते हैं।

२. जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है।

३. रक्त-चाप (Blood Pressure), साँस की दुर्गन्ध, सर्दी, खाँसी तथा सभी तरह के मल दूर हो जाते हैं। अतः इसे मल-

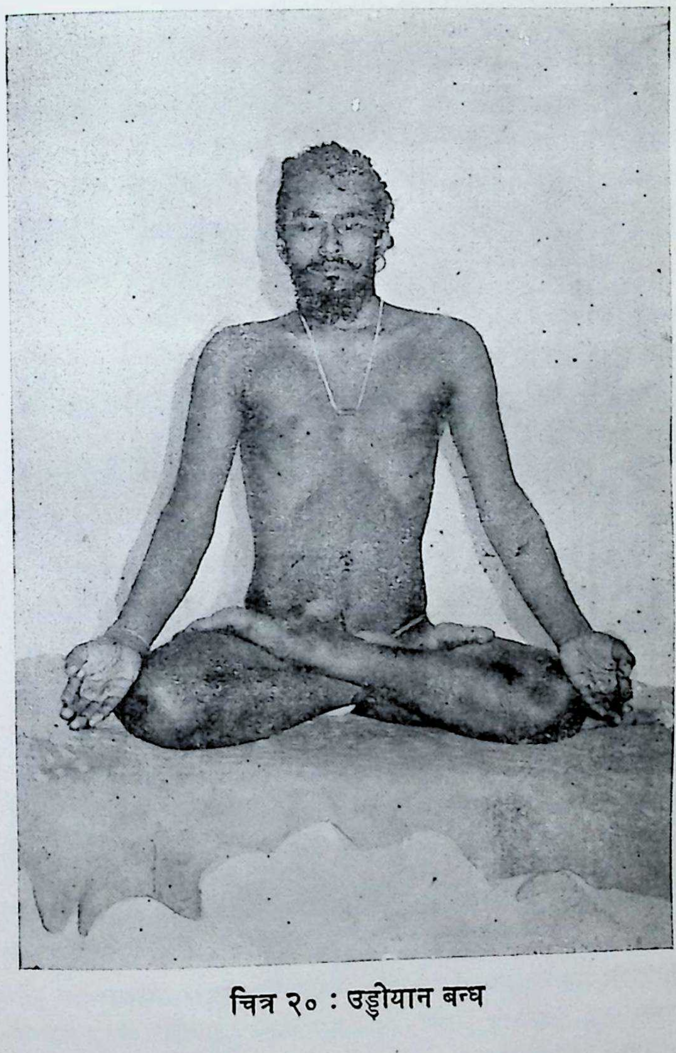

चित्र २० : उड्डीयान बन्ध

शोधक प्राणायाम भी कहा जाता है। इससे नाड़ियों में स्थित समस्त मल दूर हो जाते हैं अतः इसे नाड़ी-शोधन भी कहते हैं।

सिद्ध होने की पहचान :—

नाड़ी-शोधन सिद्ध हो जाने पर देह खूब हल्की मालूम होती है। आलस्य, जड़ता, सुस्ती सब कुछ दूर हो जाता है। कभी-कभी आनन्द से मन प्रफुल्लित हो जाता है और समय-समय पर सुगन्धि से नाक भर जाती है। जव ये लक्षण प्रकट होने लगे तो समझना चाहिये कि क्रिया सफल हो गयी है।

सावधानियाँ :—

गलत तरीके से करने पर हिचकी (Hiccup), श्वास फूलना, खाँसी, सिर में पीड़ा, कान में पीड़ा, नेत्र में पीड़ा हो सकती है। ऐसा होने पर फिर उचित रीति से प्राणायाम करने पर ठीक हो जाता है।

२. सूर्यभेदी प्राणायाम :—

विधि :—

स्थिर आसन में बैठकर दक्षिण नासिका से पूरक करके, कुम्भक करें एवं वाम नासिका से रेचक करें। यह सूर्यभेदी प्राणायाम की एक आवृत्ति हुई। इसी तरह पाँच आवृत्ति से अभ्यास शनैः-शनैः बढ़ावें। कुम्भक में मूलबन्ध एवं जालन्धरबन्ध का प्रयोग करें।

लाभ :—

इसके करने से शिरोरोग, कृमिरोग, वायुविकार, रक्तदोष, चर्मरोग, प्रस्वेद से उत्पन्न कृमि, कुष्टादि रोगों से उत्पन्न कीटाणु समूल नष्ट हो जाते हैं।

सूर्यभेदी प्राणायाम की वैज्ञानिकता (Scientific Reason of Suryabhedi Pranayam) :—

यह प्राणायाम शीतऋतु में लाभदायक है क्योंकि इस प्राणायाम से बाहर की ठंढी हवा भी अन्दर जाकर उष्ण हो जाती है। इसका कारण यह है कि दक्षिण फेफड़े का संबंध यकृत से होने से प्राणायाम के दौरान शरीर में पित्त-वृद्धि होती है, चूंकि इस समय यकृत का कार्य तेजी से होने लगता है। इससे वात और कफ का प्रकोप शान्त

हो जाता है। कपाल देश में सञ्चित कफ-वात-वाही नाड़ियों का विकार दूर हो जाता है। इस प्राणायाम के अभ्यास से वर्फानी क्षेत्र में रहने वाले योगी शीत पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

निषेध :—

इस प्राणायाम को गर्मी के दिनों में पित्त-प्रकृति के लोगों को नहीं करना चाहिए।

३. चन्द्रभेदी प्राणायाम :—

स्थिर आसन में बैठकर वाम नासिका से पूरक करके कुम्भक करें और दक्षिण नासिका से रेचक करें। यह क्रिया चन्द्रभेदी प्राणायाम की एक आवृत्ति हुई। इस तरह पाँच आवृत्ति से अभ्यास प्रारंभ करें।

लाभ :—

इस प्राणायाम को करने से शरीर के अन्दर शीतलता की वृद्धि होती है क्योंकि बाहर की गर्म हवा भी अन्दर जाकर शीतल हो जाती है। यह इस प्राणायाम की विशेषता है। इस प्राणायाम को गर्मी के दिनों में करना चाहिये।

इसके करने से पेट के जलन, सिर दर्द एवं पित्त जनित व्याधियाँ ठीक हो जाती हैं।

मानसिक श्रम करने वाले तथा क्रोधी प्रवृत्ति के लोगों के लिए यह प्राणायाम काफी लाभदायक है।

४. उज्जायी प्राणायाम :—उद्+जायी=उज्जायी। उद्--जोर से, जायी--जीतनेवाला अर्थात् जिस प्राणायाम में जोर से उच्चारित करते हुए रेचक और पूरक करके प्राण पर विजय प्राप्त किया जाता है उसे उज्जायी प्राणायाम कहते हैं।

स्थिर आसन में बैठकर, मुख को अच्छी प्रकार बन्द करके गले को सिकोड़कर दोनों नथुनों से शब्द करते हुए पूरक करें। यह ध्यान रखें कि पूरक के द्वारा पहुँचा हुआ प्राण हृदय से नीचे नहीं जाए। कुम्भक करें तथा दोनों नथुनों से रेचक करें। यह प्राणायाम की एक आवृत्ति हुई। इसी तरह पाँच आवृत्ति से अभ्यास शुरू करें। इस प्राणायाम में पूरक, रेचक एवं जालन्धरबन्ध तीनों स्वल्प

मात्रा में ही करें। इसमें बन्धों का प्रयोग नहीं भी करें तो कोई हानि नहीं। सोकर, खड़े होकर भी यह प्राणायाम किया जा सकता है। शारीरिक अस्वस्थता के कारण जब दूसरा प्राणायाम नहीं हो सके तो केवल उज्जायी प्राणायाम के अभ्यास से भी पूर्ण लाभ मिलेगा। यह प्राणायाम उष्ण है।

लाभ :—

इस प्राणायाम से कफ प्रकोप, शोथ (Swelling), उदर रोग, मन्दाग्नि, अजीर्ण, धातु विकार, कोष्ठबद्धता दूर हो जाता है तथा अग्नि प्रदीप्त हो जाती है।

५. सीत्कारी प्राणायाम :—

अपने आसन पर बैठकर, ऊपर और नीचे के दाँतों को आपस में मिलाकर जिह्वा को दाँतों से सटाकर, ओष्ठ को खुले रखकर, मुख से सीत्कार की आवाज करते हुए पूरक करें, फिर कुम्भक करें तथा दोनों नयनों से रेचक करें। यह एक आवृत्ति हुई। इसी तरह पाँच आवृत्ति करते हैं। बन्ध नहीं भी लगाकर यह प्राणायाम किया जा सकता है।

लाभ :—

इस प्राणायाम से क्षुधा, तृषा, निद्रा और आलस्यादि का त्रास कम हो जाता है। पित्त-प्रकोप शान्त हो जाता है। शरीर तेजस्वी बनता है। पूरक के वायु से प्राण तत्त्व में वृद्धि होती है। अतः शरीर में निर्बलता नहीं आती।

इससे दन्त पायरिया, मसूढ़ों का फूलना, मुँह में छाले पड़ना बिल्कुल ठीक हो जाता है। कुछ महीनों के अभ्यास के बाद शरीर गौराङ्ग होने लगता है।

६. शीतली :—

शीतली प्राणायाम की प्रेरणा ऋषियों को सर्वप्रथम कुत्ते एवं सर्प से मिली है। कुत्ते के शरीर में अधिक गर्मी होती है इसलिए कुत्ता अक्सर जीभ निकालकर साँस लेता है जिससे उसके शरीर की गर्मी शान्त होती रहती है। इसीतरह गर्मी के दिनों में सर्प खुली हवा में जिह्वा निकालकर वायुपान करता है जो अन्दर जाकर

शीतल हो जाता है। ऐसा करके सर्प अपनी गर्मी का शमन करता है। बड़े-बड़े अजगर भी भोजन नहीं मिलने पर वायु भक्षण करके ही जीवन निर्वाह करते हैं। क्योंकि ऐसा करने से प्राण तत्त्व की बृद्धि होती है जो शरीर को प्रतिकूल परिस्थिति में भी बनाये रखता है।

विधि :—

स्थिर आसन पर बैठकर दोनों नासिकाओं को बन्द करके दाँतों के बीच से जिह्वा को ओष्ठ से एक अंगुल बाहर निकालकर इस प्रकार पक्षी की चोंच के समान आकृति बनाकर बाहर से वायु का आकर्षण करें। इस वायु को भोजन नलिका (Oesophagus) के मार्ग से पेट में इस प्रकार धकेलें कि गुट-गुट की आवाज उत्पन्न हो। बार-बार उसी प्रकार मुँह में वायु आकर्षण कर घूँट भरते जायें। फिर कुम्भक करके दोनों नासापुटों से रेचक करें। यह शीतली प्राणायाम की एक आवृत्ति हुई। पाँच आवृत्ति से अभ्यास शुरु करते हैं।

लाभ :—

इस प्राणयाम से कभी भी अजीर्ण और कफ-पित्तादि व्याधि नहीं होती है। शीतली कुम्भक से गुल्म, प्लीहा, ज्वर, रेतःक्षय आदि दोष नष्ट हो जाते हैं। इस क्रिया से कठिन शूल, छाती तथा पेट आदि सभी प्रकार का दर्द मिट जाता है।

जिगर, उदर रोग, अतिसार, पेचिस, पित्त-वृद्धि, दाह, अम्ल-पित्त (Acidity) रक्त-पित्त, क्षुधा, तृषा, उन्माद आदि रोग शमन होते हैं। विशेष रूप से इस प्राणायाम से रूप और लावण्य की वृद्धि होती हैं।

चेहरे पर छाँही, कालापन का होना इस प्राणायाम से बिलकुल ठीक हो जाता है। यह प्राणायाम शीतल है। अतः इसका अभ्यास ग्रीष्म-ऋतु में करना चाहिए। योगी लोग भूख-प्यास को शमन करने में इस प्राणायाम का उपयोग करते हैं। उपवास में इस प्राणायाम का काफी महत्त्व है।

भूख रोकने में यह प्राणायाम समर्थ है। ध्यानाभ्यासी योगियों को उदर समस्या से मुक्ति दिलाती है।

सावधानी :—

यदि इस क्रिया को करते समय पेट में बहुत वायु भर जाये तो इसे सामान्य रूप में लाने के लिए पश्चिमात्तोनासन, योगमुद्रा, मयूरासन, शीर्षासन तथा सर्वांगासन कर लेना चाहिए ।

शीतली प्राणायाम का वैज्ञानिक विश्लेषण (Scientific Analysis of Shitali Pranayam) :—

शीतली प्राणायाम के समय बाहर की हवा मुंह के लार (Saliva) के साथ मिलकर आमाशय में पहुँचती है। मुख के लार जो क्षारीय होता है, शीत वायु के आमाशय में पहुँचने से आमाशयगत अम्ल (Acid) की कामुकता कम हो जाती है और आमाशय में शीतलता आ जाती है। अतएव यह प्राणायाम कुछ समय के लिए भूख-प्यास को रोकने में सहायक होता है।

In Shitali Pranayam oxygenated air + saliva reach into the empty stomach. Saliva occupies the place of food and digestion continues and energy is librated. In this way Shitali Pranayam controls hunger and thirst.

७. भस्त्रिका प्राणायाम :—

भास् धातु दीप्ति अर्थ में "भास् दीप्तौ" होता है, अर्थात् भस्त्रिका क्रिया द्वारा जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा ज्ञानवाहक नाड़ी संस्थान के मल नष्ट होकर प्रकाशमान हो जाते हैं। इसीलिए इस प्राणायाम को भस्त्रिका कहते हैं। भास् धातु का अर्थ चमकना (Shining) होता है।

इस प्राणायाम में लोहार की भाथी के समान धौंकनी दी जाती है। इसलिए भी इसे भस्त्रिका कहते हैं। भाथी का ही संस्कृत भाषान्तर भस्त्रिका है।

पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर यह प्राणायाम दो प्रकार से किया जाता है :—

पहली विधि :—

वाम नासिका से दस बार वेगपूर्वक पूरक-रेचक करके ग्यारहवें बार उसी नासिका से पूरक करके कुम्भक करें। दक्षिण नासिका

से शनैः शनैः रेचक करें। पुनः दक्षिण नासिका से दस बार वेगपूर्वक रेचक-पूरक करके उसी से पूरक करें तब कुम्भक करें, वाम नासिका से रेचक करें। यह प्राणायाम की एक आवृत्ति हुई। इस तरह तीन आवृत्ति से अभ्यास प्रारंभ करते हैं।

यह प्राणायाम समशीतोष्ण है। इसलिये इसे बारहों मास किया जा सकता है। इसके अभ्यास से वात, कफ, पित्त की समानता होती है; यह कुण्डलिनी जागृति में सहायक है। ध्यान से पूर्व भस्त्रिका करने पर ध्यान शीघ्र ही अच्छा लगता है।

दूसरी विधि :—

दक्षिण नासिका से वाम नासिका की ओर दस बार वेगपूर्वक रेचक पूरक करके, दक्षिण नासिका से पूरक करके, कुम्भक करें। धीरे-धीरे वाम नासिका से रेचक करें। अब वाम नासिका से दक्षिण नासिका की ओर दस बार वेगपूर्वक रेचक-पूरक करके उसी से पूरक करके कुम्भक करें, दक्षिण नासिका से रेचक करें। इस तरह एक आवृत्ति हुई। तीन आवृत्ति से इस प्राणायाम का आरंभ करें।

लाभ :—

यह प्राणायाम मोटापा दूर करने में सहायक है। इस प्राणायाम से शरीरस्थ अग्नि प्रदीप्त होती है। सुषुम्ना स्थित मल समूल नष्ट हो जाते हैं। सुषुम्ना में प्राणतत्त्व विहङ्गम गति से ऊर्ध्वगमन करता है।

निषेध :—

यह प्राणायाम अधिक नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे फेफड़ों पर आघात होने का भय रहता है। कभी-कभी अधिक करने से यकृत (Liver) में दर्द हो सकता है। अत यथाशक्ति ही करनी चाहिये। जब इस प्राणायाम से प्राणवायु उर्ध्वगमन करने लगती है उस समय कामवासना भी बढ़ जाती है। ऐसे समय में साधक को सावधानी से काम लेना चाहिए।

८. भ्रामरी प्राणायाम :—

स्थिर आसन में बैठ जायें, भौंरे के समान कण्ठ से शब्द करते हुए पूरक करके कुम्भक करें। जालन्धरबन्ध तथा मूलबन्ध का

प्रयोग करें। फिर जालन्धरबन्ध खोल करके भ्रामरी के समान आवाज करते हुए धीरे-धीरे रेचक करें। यह प्राणायाम की एक आवृत्ति हुई। इसी तरह पाँच आवृत्ति करें। इस प्राणायाम में रेचक करते समय भ्रामरी के समान आवाज करते हैं और पूरक करते समय भ्रमर जैसा। अतः इस प्राणायाम को भ्रामरी कहते हैं।

लाभ :—

इससे चञ्चल चित्त आसानी से एकाग्र हो जाता है और साधक को नाद सुनाई पड़ने लगता है, उसमें मन का लय होने लगता है, जिससे एक विशेष प्रकार का आनन्द उत्पन्न होने लगता है। अतः इस प्राणायाम से लययोग की स्थिति प्राप्त होती है। आवाज में माधुर्य आ जाता है। गायक के लिए यह प्राणायाम बहुत ही उपयुक्त है। क्योंकि Vocal cord में स्पन्दन होने के कारण आवाज सुरीली और मधुर हो जाती है।

९. मूर्च्छा प्राणायाम :—

अपने अभ्यस्त आसन पर बैठकर दोनों नथनों से पूरक करके जालन्धरबन्ध लगायें। फिर दोनों कान, नेत्र, नासिका और मुँह पर क्रमशः अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठका को रखकर कुंभक करें। पश्चात् नासिका के छिद्र पर से अनामिका को शिथिल कर जालन्धरबन्ध रखते हुए धीरे-धीरे दोनों नासिकाओं से रेचक करें। यह प्राणायाम की एक आवृत्ति हुई। पाँच आवृत्ति से अभ्यास प्रारंभ करें।

इस प्राणायाम को करने से मन शून्य-सा होने लगता है, थोड़ा और अधिक करने पर साधक मूर्च्छा की स्थिति को प्राप्त करता है। अतः इसे मूर्च्छा प्राणायाम कहते हैं।

लाभ :—

इस प्राणायाम के अभ्यास से साधक दिव्य आनन्द का अनुभव करता है। इसके अभ्यास में रेचक के समय बन्द नेत्र से भ्रूस्थान में प्राणतत्त्व का श्वेत, नीला, काला, पीला प्रकाश देखने में आता है। यह चित्त को समाधि में निरोध करता है। इससे चित्त की एकाग्रता होती है। इस प्राणायाम से पाँच भूतों की पाँच रङ्गों की जानकारी प्राप्त होती है।

शेष सभी प्राणायामों के सिद्ध हो जाने पर ही इस प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये क्योंकि यह प्राणायाम समाधि के सन्निकट है।

प्राणायाम के बाद क्या करें ? :—

प्राणायाम के अभ्यास में तीन प्रकार की अवस्था आती है। प्रथम अवस्था में पसीना निकलता है उसे अधमावस्था कहते हैं। मध्यम अवस्था में साधक की देह काँपती है और प्राणायाम की उत्तम अवस्था में शरीर इतना हलका हो जाता है कि वह भूमि छोड़ सकता है।

प्राणायाम की क्रिया के बाद यदि अधिक थकावट मालूम पड़े तो शवासना में (शवासना की विधि आगे देखें) १५-२० मिनट तक लेट जायें और साँस के आने-जाने पर ध्यान केन्द्रित करें, शरीर के अंग-प्रत्यंग को शिथिल रखें अथवा स्थिर आसन में बैठकर आँख बन्द करके ध्यान में सीधे बैठ जायें। ऐसा करने से भिन्न-भिन्न अंगों में बिखरी हुई ऊर्जा संग्रहीत हो जाती है। मन में प्रसन्नता हो जाती है। आलस्य नहीं आता है। अतः प्राणायाम के बाद ध्यान या शवासन अवश्य करें। तत्पश्चात् समशीतोष्ण दूध, घी, मक्खन, दलिया आदि स्निग्ध और रस-प्रधान भोजन का सेवन करें। अधिक ठंढी चीज का सेवन न करें।

दही वर्जित है, क्योंकि प्राणायाम के उपरान्त नाड़ियों के मल जल जाते हैं जिससे उसका द्वार खुल जाता है। दही के सेवन से नाड़ियाँ उसे शोषण कर लेती हैं। दही नाड़ी में जाकर कफ पैदा करता है। इससे नाड़ियों की गति अवरुद्ध हो जाती है। जिससे मन भारी, शरीर में दर्द, ऐंठन एवं अन्य व्याधियाँ होने की संभावना हो जाती है।

शवासन करने की विधि :—

पीठ के बल लेट जायें, दोनों पैरों को डेढ़ फुट की दूरी पर फैला दें, दोनों हाथों को कमर से एक बालिस्त (बित्ता) की दूरी पर फला दें। पन्जे को सतह में लेटाकर रखें। दोनों हाथों की उँगलियों को स्वाभाविक रूप में मुड़े हुये रहने दें तथा हथेलियों का रुख

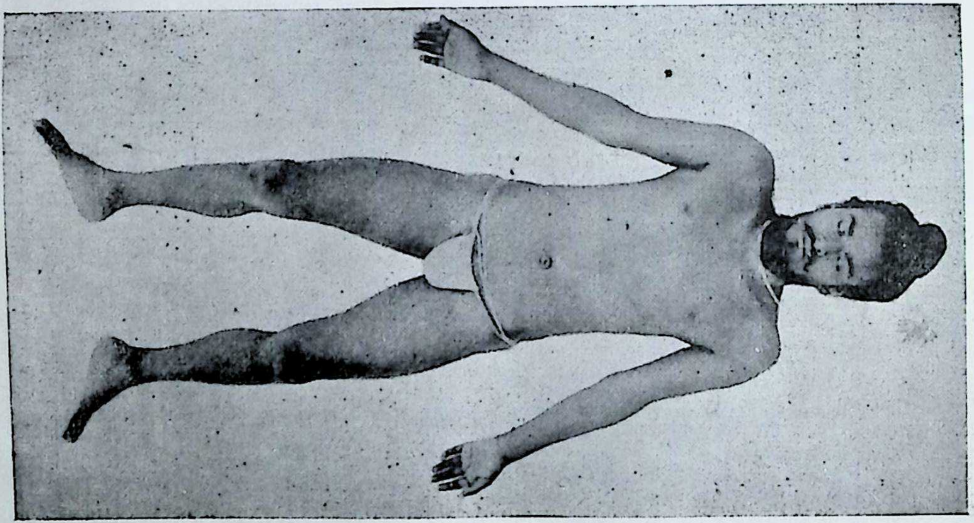

चित्र २१ : शवासन

ऊपर (आकाश) की ओर रखें। आँखें बन्द एवं मन को श्वास-प्रश्वास पर केन्द्रित रखें। शरीर के किसी भाग पर अपनी तरफ से कोई तनाव नहीं रखें। शरीर को द्रष्टा बनकर देखें। शरीर को अधिक से अधिक शिथिल रखने की कोशिश करें।

लाभ :—

उपर्युक्त बतायी गयी विधि से शवासन करने से मन एकाग्र होता है। विभिन्न दिशाओं में बिखरित ऊर्जा एक जगह केन्द्रित होती है। थकावट, अनिद्रा, रक्तचाप, मानसिक बेचैनी दूर होती है। कुण्ड-लिनी शक्ति को जागृत करने में मदद मिलती है। मांसपेशियों एवं नर्वस सिस्टम के विश्राम में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। मानसिक शान्ति और प्रफुल्लता में प्रगति होती है। यह शिथिलीकरण की बेहतरीन प्रक्रिया है।

आसन अथवा प्राणायाम के पश्चात् नाड़ियों के क्षोभ को शमन करके शान्त करने के लिए इस आसन का उपयोग होता है। साधक को प्रतिदिन अभ्यास के पश्चात् शवासन के द्वारा आधा घण्टा विश्राम करना चाहिये। शवासन में नसें सीधी रहती हैं और रक्ता-भिसरण क्रिया (Blood circulation) प्रकृति के अनुकूल होने लगती है। प्राण-तत्व मस्तिष्क की ओर बढ़ने लगता है, जिससे मन शान्त हो जाता है। Psychosomatic disorder को दूर करता है। मन को अन्तर्मुखी (Introvert) बनाता है।

प्राणायाम में ली जाने वाली सावधानियाँ (Precautions taken during the Process of Pranayam) :—

प्राणायाम के साधन काल में साधक को निम्न बातों को भली प्रकार ध्यान में रखना चाहिए।

१. प्राणायाम के साधक को नियमित, आहार-विहार, मितभाषी, श्रद्धालु एवं अच्छी प्रकार यम-नियमों का पालक होना चाहिए।

२. धूम्रपान एवं मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए।

३. साधन-काल में ब्रह्मचर्य-पालन करें, व्यवहार में अधिक प्रवृत्त नहीं रहें, सूर्य के ताप में भ्रमण न करें, अग्नि सेवन न करें, अधिक श्रमवाला शारीरिक या मानसिक कार्य न करें।

४. साधक को किसी सिद्ध योगी के तत्वावधान में रहना, अनुकूल संग और यौगिक भोजन करना चाहिए।

ऐसा नहीं करने पर साधक को भयंकर हानि उठानी पड़ सकती हैं जो उन्माद, हृदयरोग, श्वास और इसी प्रकार के अन्य दुष्ट रोगों के रूप में प्रकट हो सकती है। जैसा कि आजकल बहुधा ऐसे साधकों को देखा जाता है। परन्तु जो सिर्फ स्वास्थ्य-लाभ के लिए ही प्राणायाम करते हैं उनके लिए उपर्युक्त बातें उतनी हद तक लागू नहीं हैं क्योंकि योग साधना और सिर्फ स्वास्थ्य लाभ के लिए प्राणायाम करने में एक ही क्रिया का भिन्न-भिन्न फल होता है।

५. यौगिक साधना करने से पहले उपासना की सिद्धि कर लें, क्योंकि इससे विघ्न की सम्भावना कम रहती है। साधक जहाँ भ्रमित हो जाता है वहाँ उसकी उपासना के देवता आत्म-निवेदन (Auto-suggestion) के द्वारा साधक को दिशा-निर्देश करते हैं। बिना उपासना के योग सिद्धि दीर्घकाल तक करने पर भी उपलब्धि असम्भावित रहती है और कभी-कभी साधक कोई सफलता नहीं देखकर ऊब भी सकता है, परन्तु उपासक का परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता है। बिना उपासना से योग शुष्क है, नीरस है।

६. खुली हवा में प्राणायाम नहीं करना चाहिये। कारण वायु का प्रचण्ड आघात लगता रहेगा तो प्रस्वेद बाहर नहीं निकलेगा। प्रस्वेद निकलने से नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। प्राणायाम के समय जो स्वेद बाहर आये उसे शरीर पर मल देना चाहिए। ऐसा करने से शरीर के प्राणतत्व निकलना रुक जाता है और शरीर मुलायम हो जाता है। क्योंकि प्राणायाम के समय शरीर से आरियल रेडियेशन (Aurial Radiation) होता है। प्रस्वेद मल देने से आरियल रेडियेशन स्पाइनल कार्ड और मस्तिष्क में जमा हो जाता है।

७. प्राणायाम के अभ्यास काल में साधक को तेल मर्दन नहीं करना चाहिए। तेल मर्दन से नाड़ियों में स्थित मल दृढ़ हो जाता है वह बाहर जल्दी नहीं निकलता है। मल इकट्ठा हो जाने से विजातीय द्रव्य त्वचा के मूल में जमा हो जाते हैं।

जिससे चर्मरोग एवं अन्य बीमारियों की सम्भावना बन जाती है और यौगिक क्रिया के फलस्वरूप शरीर में जो दिव्य आभा प्रकट होनी चाहिये, वह भी प्रकट नहीं हो पाती है। प्राणायाम के फलस्वरूप आभ्यन्तर शुद्धि होती है और सभी अंग-प्रत्यङ्ग एवं नाड़ी समूह काफी क्रियाशील हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप शरीर से तेजस् (Aura) (एक तरह की दिव्य आभा) क्वान्टम (Quantum) रूप में विसर्जित होने लगती है। यह विसर्जन तेल लगाने पर बाधित हो जाती है।

यह नियम केवल तीव्र प्राणायाम के साधकों के लिए लागू है परन्तु जो केवल स्वास्थ्य लाभ के लिए ही प्राणायाम करते हैं उनके लिए यह नियम उतना आवश्यक नहीं है।

साधारण साबुन लगाने पर आरियल रेडिएशन एवं ऊँगली से निकलनेवाली ऑडीलिक फोर्स (Odylic force) साबुन के क्षारीय अंश से बाधित हो जाती है। परन्तु अच्छे किस्म के साबुन से कोई हानि नहीं पहुँचती है।

योगाभ्यास ठीक ढंग से करने के पश्चात् तेल साबुन की आवश्यकता भी नहीं रह जाती है क्योंकि तेल का उपयोग त्वचा को मुलायम करने के लिए ही किया जाता है और साबुन का उपयोग त्वचा की गन्दगी को दूर करने के लिए किया जाता है। परन्तु योगाभ्यास के फलस्वरूप ये सारी क्रियाएँ स्वतः होने लगती हैं।

८. प्राणायाम के समय शरीर को सीधा, तना हुआ रखना चाहिए जिससे कि पीठ, कमर एवं गर्दन एक सीध में रहें क्योंकि प्राणायाम के समय ऊर्जा शक्ति को ऊर्ध्वरेता गमन करने में सुविधा होती है। मूलाधार से सहस्रार तक मेरुदण्ड से जितनी नाड़ियाँ गुजरती हैं उन सभी में सीधे बैठने से ही ओजशक्ति का ऊपर की ओर संचार हो पाता है जिससे कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में मदद मिलती है।

९. प्राणायाम के समय फेफड़े को शिथिल रखना चाहिये। इससे कुम्भक में सुविधा होगी। इसके विपरीत फेफड़े के तने रहने पर पूरक अधिक मात्रा में नहीं हो सकेगा; वायु के वेग से फेफड़े आहत होकर निर्बल हो जाएँगे। फुसफुस-कोषों में वायु भर जायेगा जो दूषित होकर डकार रूप से बार-बार बाहर निकलता रहेगा। ऐसी

स्थिति हानिकारक मानी जाती है। कदाचित् ऐसा हो जाये तो प्राणायाम का अभ्यास बन्द कर दें।

विपरीतकरिणी मुद्रा, शीर्षासन, पश्चिमोत्तानासन कर लेना चाहिए। ऐसा करने से फेफड़े बलवान हो जाएँगे और दूषित वायु भी बाहर निकल जायेंगी।

१०. प्राणायाम करते समय मूलबन्ध आरम्भ से लेकर अन्त तक प्रयोग करना चाहिए। गुदा (Annus) को ऊपर की ओर दृढ़ता पूर्वक संकुचित रखना मूलबन्ध है। मूलबन्ध से अपानवायु ऊपर की ओर आकर्षित होती है। यदि मूलबन्ध दृढ़ होगा तो मल-मूत्र का त्याग नियमित्त रीति से होता रहेगा। रक्त-परिवहन (Blood circulation) बलवती बनने से नाद खुल जायेंगे। नाड़ियाँ मल-दोष के जल जाने से शुद्ध हो जायेंगी। कुण्डलिनी जागरण में मदद मिलेगी।

यदि मूलबन्ध दोषपूर्ण होगा तो फेफड़े पर आघात पहुँचेगा। जिससे वे निर्बल बनते जायेंगे। मलावरोध होगा, मल बकरी की मिंगनी की तरह बन जाता है और थकावट अधिक मालूम होगी।

११. पूरक के बाद जालन्धर बन्ध लगाएँ। सिर को झुकाकर चिबुक (ढोढ़ी) को कण्ठ और धड़ के सन्धि स्थल से लगायें। इसे कण्ठकूप कहते हैं और यहाँ पर विशुद्धि चक्र का स्थान है। यह बन्ध ठीक लगने से श्वास का निरोध होता है जिससे कुम्भक के समय फेफड़े के वायुकोष (Alveoli) से वायु उछलकर मस्तिष्क में प्रवेश नहीं करती है। इस बन्ध से समस्त शरीर के ज्ञानतन्तु बलवान होते हैं। कारण जालन्धर बन्ध का सम्बन्ध पादांगुल गुल्फ, घुटना, जंघा, सीवनी, लिंग, नाभि, हृदय, ग्रीवा (विशुद्धि चक्र के नीचे का स्थान), कण्ठदेश (विशुद्धि चक्र के ऊपर का भाग), घण्टिका (Oesophagus) नासिका, भ्रू, कपाल, मुर्द्धा और ब्रह्मरन्ध्र इन सोलह आधार स्थानों के साथ है। यद्यपि ज्ञानतन्तु का केन्द्रस्थल मस्तिष्क है, विशुद्ध चक्र नहीं तथापि नीचे के अवयवों का नियमन केन्द्र स्थान के अनुकूल करना और इसका सन्देश केन्द्र स्थान में भेजना विशुद्धि चक्र का कार्य है।

अतः प्राणायाम के समय मस्तिष्क को वायु का आघात नहीं पहुँचना, जालन्धर बन्ध पर निर्भर करता है। इससे स्पष्ट है कि

जालन्धर बन्ध सुदृढ़ रहने पर मस्तिष्क और समस्त ज्ञान तन्तु का रक्षण होता है। जालन्धर बन्ध दूषित होगा तो अनेक स्थानों में विकृति होने लगेगी। खास करके नासिका, नेत्र, मस्तिष्क और कण्ठस्थान में विकार होगा। किसी को वात-प्रकोपजन्य व्याधि भी हो जाती है।

जालन्धर बन्ध का अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। एक साथ अधिक समय तक जालन्धर बन्ध लगाने से गले के पीछे के भाग की नसों में दर्द हो जायेगा। ऐसा होने पर गोघृत मल लेना चाहिए।

१२. कुम्भक के बाद रेचक करते समय उड्डीयान बन्ध लगाकर जालन्धर बन्ध खोल लें। उदर को पीठ की ओर संकोच करने को उड्डीयान बन्ध कहते हैं। उदर स्थित आँत के संकोच से फेफड़ों का भी संकोच (Constriction) होने लगता है जिससे फेफड़े बलवान होते हैं।

वे पहले की अपेक्षा अधिक स्वस्थ हो जाते हैं। इस रीति से मस्तिष्क एवं मेरुदण्ड (Spinal chord) की नाड़ियाँ तथा अन्य सम्बन्धित नाड़ियों को स्वस्थ बना देती हैं। प्रणायाम की विधि में गहरा श्वास लेने से मस्तिष्क का दूषित रक्त शुद्ध हो जाता है क्योंकि हृदय से शुद्ध रक्त मिलने लगता है। इसीलिए प्राणायाम के बाद पहले की अपेक्षा अधिक स्फूर्ति महसूस करते हैं। शरीर में आक्सीजन की मात्रा जितनी अधिक होगी उतनी ही ताजगी महसूस होती है। यही कारण है कि सुबह में टहलने से ताजगी एवं स्फूर्ति आती है।

उड्डीयान बन्ध से जितना अधिक शुद्ध रक्त मिलता है उतना किसी स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यायाम से नहीं मिलता है। प्राणायाम से जो तुरन्त बल एवं नवीनता मिलती है उसका भी यही वैज्ञानिक कारण है। साधारणतया मेरुदण्ड एवं उससे सम्बन्धित नाड़ियों के चारों ओर रक्त की गति मन्द होती है। प्राणायाम से इनमें रक्त की गति बढ़ जाती है।

प्राणायाम का मानव शरीर के अन्दर कार्य करने वाले मुख्य अंगों एवं स्नायुजाले पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

इस क्रिया से त्रिदोषजनित समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। सुषुम्ना मार्ग शुद्ध होकर प्राणवायु का उर्ध्वगमन करता है। उड्डीयान बन्ध दोषयुक्त होने से फेफड़े एवं आमाशय निर्बल हो जाएँगे।

प्राणायाम के तीनों बन्ध का अच्छी प्रकार अभ्यास करके साधना शुरू करनी चाहिए।

१३. कुम्भक इतना करें कि रेचक धीरे-धीरे किया जा सके। पूरक इस प्रकार करें जैसे नली से धीरे-धीरे जल खींचा जाता है। पूरक शीघ्रतापूर्वक करने से दो प्रकार की हानि होती है एक तो फुसफुस-कोष पर आघात पहुँचता है और दूसरा कुम्भक अधिक देर टिकता नहीं है। रेचक भी शीघ्रतापूर्वक करने पर फेफड़ों एवं नाड़ियों में क्षोभ उत्पन्न होकर फेफड़ा, हृदय, आँख, नाक, मस्तिष्क आदि अवयवों को हानि पहुँचती है। अत: रेचक क्रिया यथाशक्ति धीरे-धीरे करना चाहिये। बाह्य कुम्भक के अभ्यास से फेफड़ा अधिक बलवान होता है।

१४. पूरक, कुम्भक और रेचक में क्रमशः १ : ४ : २ का अनुपात होना चाहिये। पूरक से द्विगुण समय रेचक का और रेचक से द्विगुण समय कुम्भक का होना चाहिये।

१५. प्राणायाम में पूरक द्वारा जो वायु लिया जाता है वह सीधे फेफड़े में जाता है। शरीर के अन्यत्र स्थान में कदापि नहीं जाता है, जो दूषित वायु आमाशय में उत्पन्न होता है। वह डकार रूप में निकलता है, जो आँत में उत्पन्न होता है वह गुदा द्वारा निकल जाता है।

१६. प्राणायाम की क्रिया द्वारा जब प्राण और अपानवायु मिलकर सुषुम्ना द्वार से मस्तिष्क में चढ़ती है तब बन्द नेत्र से भ्रूमध्य स्थान में प्रकाशरूप प्रतीत होता है, लाल, नीला, श्वेत, पीला ऐसे भिन्न-भिन्न रंग दिखलाई पड़ते हैं। इस तरह से प्राणों की उर्ध्वगति की क्रिया को ही कुण्डलिनी की जागृति कहते हैं। यही अवस्था आगे बढ़ने पर उन्मनी अवस्था और समाधि कहलाती है।

१७. प्राणायाम में प्रवेश होने के पश्चात् प्राणवायु सुषुम्ना द्वारा मस्तिष्क में चढ़ने लगती है। आरम्भ में वह चींटी के समान धीरे-धीरे सूक्ष्म परिणाम में चढ़ती है। जब चक्र का रास्ता पूरा खुल जाता है, तब मेढक के समान कूदकर चढ़ने लगती है और भस्त्रिका प्राणायाम के द्वारा कुम्भक बढ़ने पर विहङ्गम गति से प्राणवायु सहस्रार में प्रवेश करती है तब सिर भारी मालूम पड़ता है और नशा लगने

जैसी अनुभूति होती है। सहनशीतता भी बढ़ जाती है। इस समय किसी से बातें करने की इच्छा नहीं होती है। वैराग्य की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है। अद्भुत शान्ति मिलती है। जब प्राणतत्त्व अधिक वेग से गति करने लगती है तब मन भी एकाग्र होने लगता है।

१८. प्राणायाम के बाद कम से कम ३० मिनट तक शवासन अवश्य करना चाहिये। इसके पश्चात् दूध या दलिया का सेवन करना चाहिये।

१९. प्राणायाम के बाद जब कभी सिर में अधिक गर्मी मालूम पड़े तो दूध में घी मिलाकर या मक्खन सेवन करना चाहिए। दही का लस्सी या बहुत ठण्डा पेय का सेवन नहीं करना चाहिये। क्योंकि दही सा अन्य ठण्डे पेय से सुषुम्ना मार्ग में कफ के कारण अवरोध पैदा हो जाता है।

प्राणायाम का वैज्ञानिक विश्लेषण एवं शरीर पर उसका प्रभाव (Scientific Analysis of Pranayam and its effect on Body) :—

साधारण तौर पर साँस लेने में उदर की मांसपेशियाँ एबडोमिनल मसल (Abdominal Muscle) क्रमशः ऊपर और नीचे की ओर जाती हैं जिससे आँत (Intestine) एवं गुर्दा (Kidney) में हमेशा स्पन्दन होता रहता है। जिससे उसकी हल्की-हल्की मालिश होने लगती है। इस क्रिया से यदि कहीं रक्त जमा हो गया हो तो इस स्पन्दन के कारण उस पर जोर पड़ने से वह हट सकता है। इसके साथ ही साथ आँत एवं गुर्दा के व्यापार को नियन्त्रण करने वाले यकृत एवं मांसपेशियाँ (Muscles) भी सुदृढ़ हो जाती है जिससे वे अधिक स्वस्थ एवं शक्तिशाली बन जाती हैं।

श्वास क्रिया के ठीक से सञ्चार के लिए श्वास की मांसपेशियों को (Respiratory Muscles) सुदृढ़ होना एवं फेफड़े को लचकदार होना आवश्यक है। प्राणायाम के द्वारा इन मांस-पेशियों और फेफड़ों का संस्कार हो जाता है। छाती को कई बार फुलाने से एवं फेफड़ों को अधिक से अधिक फैलाने से इन अंगों में सुदृढ़ता आती है। फेफड़े के कार्बन-डाई-आक्साइड जैसे दूषित वायु का निराकरण हो जाता है। इस प्रकार प्राणायाम आँत, गुर्दा एवं फेफड़े के लिए बड़ी मूल्यवान कसरत है।

आहार के परिपाक करने वाले एवं रस बनाने वाले अंगों पर भी प्राणायाम का अच्छा असर पड़ता है। अन्न जल के परिपाक में यकृत एवं अग्न्यासय (Pancreas) मुख्य रूप से कार्य करती है और प्राणायाम में इन सबो का अच्छा व्यायाम है। प्राणायाम में डायफ्राम एवं एबडोमिनल मसल बारी-बारी से फैलते एवं सिकुड़ते हैं जिससे पाक अगों की मालिश हो जाती है जिनकी जठराग्नि मन्द पड़ गयी हो एवं कोष्ठबद्धता हो गयी हो उनमें से अधिकांश लोगों को यकृत में सदा ही रक्त जमा रहता है। फलतः उनकी क्रिया दोषयुक्त रहती है। इस रक्त सञ्चय को हटाने के लिए प्राणायाम एक उत्तम साधन है। प्राणायाम से अस्वस्थ पैंक्रियाज को वड़ी उत्तेजना मिलती है और उसके दोष दूर होते हैं। पाकोपयोगी पाचन अंगों को ठीक तरह से काम करने पर रस भी खूब बनता है और रक्त में आवश्यक पौष्टिक तत्वों की प्रचुरता हो जाती है।

किसी भी मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है कि उसकी नाड़ियों में प्रभावित होनेवाले रक्त को अधिक आक्सीजन मिले। इस पुस्तक में बतायी गयी पद्धति से प्राणायाम करने पर जितना अधिक आक्सीजन मिलता है उतना अधिक किसी भी प्रकार के व्यायाम से नहीं।

प्राणायाम के समय हमारे शरीर में अधिक आक्सीजन खपत होता है क्योंकि इस समय शरीर के सारे अंग एवं स्नायु उत्तेजित होते हैं और उनकी क्रिया-क्षमता स्वाभाविक स्थिति से अधिक बढ़ जाती है और विभिन्न अंगों में स्नायुओं में इकट्ठे दूषित गैस कार्बन-डाई-आक्साइड का निष्कासन होता है, जिसके लिए अधिक आक्सीजन की आवश्यकता होती है। तभी तो प्राणायाम के वाद अधिक चुस्ती दुरुस्ती एवं स्फुर्ति महसूस करते हैं। जो लोग अपने श्वास की क्रिया को ठीक करने के लिए किसी प्रकार का अभ्यास नहीं करते वे अपने फेफड़ों के कुछ अंशों से ही श्वास ले पाते हैं। शेष अंश निकम्मे पड़े रहते हैं। इस प्रकार निकम्मे रहने वाले भाग वहुधा फेफड़े के अग्रभाग होते हैं। इन भागों में वायु का सञ्चार अच्छी प्रकार नहीं होने के कारण टी॰ बी॰ के भयकर कीटाणु आश्रय पाकर बढ़ जाते हैं। प्राणायाम के द्वारा फेफड़ों के प्रत्येक भाग से

कार्य होने लगता है और उसके प्रत्येक छिद्र दिन में कई बार शुद्ध हवा से धुल जाया करती है। फिर इन कीटाणुओं का आक्रमण असंभव हो जाता है।

प्राणायाम के कारण पाचन, श्वसन एवं उत्सर्जन अंगों की क्रिया ठीक होने से रक्त अच्छा बना रहेगा। यही रस विभक्त होकर शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचता है। यह अंग खासकर हृदय का है। प्राणायाम के द्वारा उसके अधिक स्वस्थ हो जाने के कारण समस्त रक्तवाहक अंग अच्छी तरह से काम करने लगते हैं।

भस्त्रिका प्राणायाम में वायवीय स्पन्दन (Airy Pulsation) होकर मानव शरीर के प्रायः सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अङ्गों को यहाँ तक कि नाड़ियों एवं सूक्ष्म सिराओं तक को हिला देते हैं। इस प्रकार प्राणायाम से पूर्ण-रक्तवाहक अंग समूह की कसरत एवं मालिस हो जाती है और वह ठीक तरह से काम करने योग्य बन जाता है। इस प्राणायाम से लीवर एवं पैंक्रियाज पर काफी दवाव पड़ता है। यह प्राणायाम मधुमेह रोगियों के लिए काफी लाभदायक है क्योंकि Islets of Langher Han's के cells अपना कार्य बन्द कर देते हैं जिसके कारण शर्करा का पाचन नहीं हो पाता है। इस प्राणायाम से पैंक्रियाटिक सेलस में स्पन्दन होने के कारण काफी सक्रिय एवं संवेदनशील हो जाते हैं। जिससे कि बन्द शर्करा का पाचन पुनः होने लगता है।

प्राणायाम की क्रिया से एण्डोक्राइन ग्लैंड एवं नरबससिस्टम पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ता है। रक्त की उत्तमता एवं उसके समस्त स्नायु एवं ग्रन्थियों (ग्लैंड्स) में संमुचित मात्रा में विभाजन होने पर ही स्वास्थ्य निर्भर करता है। इस प्रकार प्राणायाम से एण्डोक्राइन ग्रन्थियों (ग्लैंड्स) को उत्तम एवं पहले की अपेक्षा प्रचुर मात्रा में रक्त मिलने लगता है। इस कारण उस पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इससे यह साबित होता है कि प्राणायाम हमारे शरीर को स्वस्थ रखने के लिए सर्वोत्तम व्यायाम है। प्राणायाम से शरीर के समस्त आभ्यन्तर क्रियाओं को स्वस्थ रहने में मदद मिलती है।

समाधि के परिप्रेक्ष्य में प्राणायाम का वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Concept of Pranayam in relation to Samadhi) :—

प्राणायाम की प्रक्रिया में जब हम एक विशेष प्रकार से श्वास लेते हैं तब नासिका रन्ध्र (Nasal Passage) से अन्दर जानेवाली वायु से शरीर को आक्सीजन मिलता है और इससे आक्सो एलेक्ट्रिक का निर्माण होता है और पुनः इससे जीवनीशक्ति (Vital Force) का आकर्षण होता है जिससे जीवन व्यापार चलता रहता है। यह सारी प्रक्रिया साधारण श्वसन में बहुत कम होती है परन्तु प्राणायाम में इसकी रफ्तार काफी बढ़ जाती है। जीवनीशक्ति का मेरुदण्ड में सञ्चय होने से समाधि लगती है और इसी जीवनीशक्ति से जीवन उस समय भी बना रहता है जब फेफड़ों में वायु का जाना कम या बन्द होकर समाधि लगता है। तब यह शक्ति त्वचा द्वारा पहुँचायी जाती है। प्राणायाम के अभ्यास से त्वचा काफी संवेदनशील हो चुका रहता है जिससे रोमकूप से वायु का आदान-प्रदान होने लगता है। फेफड़े की सहकारिणी त्वचा है। परन्तु जब फेफड़े एवं त्वचा को भी वायु का स्पर्श नहीं होता है, जैसे समाधि की स्थिति में जब शरीर जमीन के नीचे होता है उस समय ज्ञान-तन्तु में जो चक्र हैं उनका कार्य आरम्भ होता है और मेरुदण्ड एवं मस्तिष्क में प्राणतेज बढ़ता है। कुण्डलिनी जागृत होकर अपना कार्य करती है इसीसे जीवन व्यापार बना रहता है, इसलिए कुण्डलिनी को गुप्त शक्ति (Occult Power) कहा गया है। साधारणतया यह सुषुप्तावस्था में रहती है परन्तु जब यौगिक क्रियाओं के माध्यम से जागृत होती है तब यह अपना चमत्कार दिखलाती है।

समाधि की स्थिति में प्राणायाम का फल (Consequence of Pranayam during the period of Samadhi) :—

समाधि-स्थिति में शरीर के सारे अंगों की क्रियाशीलता बिल्कुल कम हो जाती है। साँस बन्द हो जाता है। मन शान्त रहता है। इस अवस्था में शरीर को बहुत ही कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है क्योंकि साधारण अवस्था में इन्द्रियों के पूर्ण गतिशील रहने से

उनके संचालन के लिए पर्याप्त ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसके लिए भोजन की आवश्यकता होती है। परन्तु समाधि में सारे कार्य बन्द रहते हैं, यहाँ तक कि नाड़ी संस्थान, हृदय की धड़कन, नाड़ी स्पन्दन और भी क्रियाएँ बन्द रहती हैं। ऐसी अवस्था में यकृत में संचित ग्लाइकोजन जो Food storage के रूप में जमा रहता है वह कार्य करता है।

मेढक वर्षाऋतु पर्यन्त जमीन से दो-तीन फुट नीचे जाकर निष्क्रिय होकर जाड़े के मौसम तक पड़ा रहता है। मेढक के इस अवस्था को शीत-निष्क्रिय अवस्था (Hibernation Period) कहते हैं। इस समय मेढक जमीन के अन्दर त्वचा से साँस लेने का कार्य करता है जिसे (Cutaneous Respiration) कहते हैं। इस रीति से साँस लेने में त्वचा के नीचे स्थित (Blood Capillary) के सहारे आक्सीजन ग्रहण करता है। यह आक्सीजन जमीन की नमी (Moisture) से ली जाती है और भोजन का काम यकृत में संचित ग्लाइकोजन के माध्यम से होता है। इसी तरह समाधि में त्वचा के द्वारा श्वसनक्रिया (Respiration) संभव है। प्राणायाम के फलस्वरूप त्वचा भी काफी संवेदनशील हो जाती हैं, शरीर भी प्राण शक्ति से भरपूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त योगी की एक विशेष अवस्था है जिसमें ब्रह्मचर्य पालन के फलस्वरूप वीर्य से एक उर्ध्वरेता शक्ति (Energy) निकलती है जिसे ओजस् शक्ति कहते हैं। यह समाधि की स्थिति बनाये रखने में मदद करती है। इसके अतिरिक्त षट्चक्र भी अपना कार्य करता है। प्राण भी शरीर से विलग रहता है परन्तु शरीर का अस्तित्व बना रहता है, शेष कार्य स्थगित रहता है।

समाधि के लिए प्राणायाम का क्रम

समाधि साधना के लिए नियमित रूप से यम-नियम का पालन करते हुए निम्न क्रम से प्राणायाम का नियमित अभ्यास करना चाहिये।

बारह प्राणायामों का एक प्रत्याहार होता है, १२×१२ अर्थात् एक सौ चव्वालीस प्राणायामों की एक धारणा होती है। फिर १२×१२×१२ अर्थात् १७२८ प्राणायामों का एक ध्यान होता है और १२×१२×१२×१२ अर्थात् बीस हजार सात सौ छत्तीस

प्राणायामों की एक समाधि होती है। ये सभी प्राणायाम क्रमिक ढंग से किये जाते हैं। तब अभीष्ट सिद्धि मिलती है।

यौगिक आहार (Yogic Diet) :—

योगाभ्यासी के लिये यौगिक क्रिया के साथ ही साथ आहार पर भी ध्यान देना चाहिए तभी योग साधना सफल हो सकती है अथवा कोई विशेष लाभ नहीं मिलेगा।

योगसाधक को सात्त्विक भोजन करना चाहिए। जैसा कि गीता में निर्देश है—

आयु: सत्वबलारोग्य सुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहारा सात्त्विकप्रियाः॥

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाला रसयुक्त, चिकना, स्थिर रहने वाला तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय ऐसा आहार सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।

योगाभ्यासी को मिताहारी होना चाहिए चतुर्थांशरहित चिकना और मधुर भोजन जो मोक्ष की प्राप्ति के लिए लिया जाता है वह मिताहार कहलाता है। चतुर्थांशरहित का अर्थ है अपने पेट का चार हिस्सों में विभाजित करके दो हिस्सा भोजन से भरें, एक भाग पानी से और शेष एक भाग को वायु के लिए रिक्त रखें। मुख्यतया योगी को १६ ग्रास और गृहस्थ को ३२ ग्रास भोजन लेना चाहिए।

योगाभ्यासी को गेहूँ, चावल, जौ, साठी, दूध, घी, मक्खन, खाण्ड, शहद, सोंठ, परवल, बथुआ तथा घृत मिले पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

इन पदार्थों में योगी उन पदार्थों को सेवन करें जो स्वभाव से प्रिय एवं रुचिकर हो।

वर्जित :—

कड़वे पदार्थ जैसे—करेला आदि अम्लीय पदार्थ, इमली आदि तीक्ष्ण पदार्थ, मिर्च आदि लवण, उष्ण पदार्थ, गुड़, मेथी आदि, तिली का तेल,सरसों का तेल,मदिरा,मांस, मछली, दही, छाछ, हींग, लहसुन, प्याज आदि पदार्थ योगी को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

द्वितीय बार अग्नि पर पकाया हुआ रूखा भोजन जिसमें घृत न हो, अधिक लवण वाला एवं बासी भोजन भी ग्रहण नहीं करना चाहिए ।

साधनकाल में योगाभ्यासी को अग्नि सेवन, तीर्थ-यात्रा भी नहीं करना चाहिए।

भोजन सम्वन्धित जो निर्देश दिये गये हैं वे वैसे साधकों के लिए अनिवार्य है जिनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य योगसाधना ही है अर्थात् त्यागी, तपस्वी, गृहत्यागी हैं तथा योग के अन्तरंग क्रिया (धारणा, ध्यान एवं समाधि) में प्रवेश करने के इच्छुक हैं। परन्तु जो गृहस्थाश्रम में हैं या ब्रह्मचर्याश्रम या छात्र जीवन में हैं उनके लिए कोई विशेष पाबन्दी नहीं है। हाँ, अगर उन नियमों का पालन कर सकें तो अच्छा ही होगा। क्योंकि हमारे मन पर आहार का बहुत भारी असर पड़ता है। उपनिषद् से भी इस बात की पुष्टि होती है—

आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धौ सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृति
स्मृति लभते सर्वग्रन्यिनां विप्रमोक्षः ।

(छान्दोग्योपनिषद)

आहार की शुद्धि से सत्त्व की शुद्धि होती है, सत्त्व की शुद्धि से अचलस्मृति प्राप्त होती है, स्मृति के प्राप्त होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः योग साधक को यौगिक आहार पर ध्यान रखना चाहिए।

प्राणायाम में जल्दीबाजी से खतरे की संभावना :—

जब साधक प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ करता है तो कुछ दिनों के पश्चात् साधनास्तर शनैः-शनैः बढ़ने लगता है। इस समय साधक की जिज्ञासा एवं तत्परता बढ़ने लगती है जिसके फलस्वरूप साधक पूरक, रेचक एवं कुम्भक की अवधि अधिक से अधिक बढ़ाने का प्रयास करने लगता है। ऐसा करने से साधना पर बुरा असर पड़ने की संभावना हो जाती है तथा व्याधियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं।

जब मैं कश्मीर में था, एक प्राणायाम का साधक मेरे पास आया और उसने कहा कि मैंने सुना था कि योग से अनेक दिव्य शक्तियाँ प्राप्त होती हैं परन्तु मुझे इतनी तकलीफ बढ़ गयी है कि अब मेरा जीवित रहना दुष्कर हो गया है। मेरे पूछने पर उसने बताया कि मैं कुम्भक दो मिनट से बढ़ाकर बीस मिनट तक करने का अभ्यास करने लगा तब मुझे ऐसा लगा कि अब मैं तीस मिनट तक श्वास रोक सकता हूँ। एक रोज मैंने बलात् आधे घंटे तक कुम्भक क्रिया की जिसका परिणाम यह हुआ कि मुझें छाती में जोरों का दर्द शुरू हो गया और श्वास की गति में भी अवरोध होने लगा। कभी-कभी तो दम घुटने लगा। मुझे ऐसा लगा कि अब मैं मर जाऊँगा। चार-पाँच दिनों से चिकित्सा करा रहा हूँ लेकिन कोई फायदा नहीं हो रहा है। आपके सम्बन्ध में मुझे किसी ने बतलाया है कि उनके पास जाओ ठीक हो जाओगे।

मैंने उससे सारी क्रियाओं की जानकारी प्राप्त की जो उसने की थी। उसने आधे घंटे तक बलात् कुम्भक किया था जिसके कारण श्वास की गति अस्वाभाविक हो चुकी थी और जिस अंग में वायु आवश्यकता से अधिक मात्रा में प्रवेश कर चुकी थी वहाँ दर्द हो रहा था। मैंने उसे आश्वासन देते हुए कहा कि अब तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगे। घबराओ नहीं। मैंने उसे पाँच दिनों तक अपने पास रखा और उसे नाड़ी-शोधन प्राणायाम बिना कुम्भक का कराने लगा और वह जिस एलोपैथिक दवा का सेवन कर रहा था उसे छुड़वा दिया। चार दिनों में उसकी श्वासप्रक्रिया स्वाभाविक हो गयी। छाती की वेदना एवं मानसिक बेचैनी भी शान्त हो गयी। वह साधक यदि दवा के आश्रय में ही रहता तो उसका मालिक भगवान ही होता।

योग के सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है— "देखा देखी करे योग, छीजे काया बाढ़े रोग।"

गलत योगाभ्यास करने पर काया क्षीण हो जाती है और साधक शीघ्र ही काल के गाल में चला जाता है। योग के फल-स्वरूप उत्पन्न व्याधियाँ योग से ही ठीक हो सकती हैं, दूसरे किसी साधन से मुश्किल हैं। साधारणतः जिस योगाभ्यास के फलस्वरूप जो बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं उसी अभ्यास को पुनः ठीक ढंग

से करने पर व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। विशेष स्थिति में योग्य गुरु का निर्देश तो आवश्यक ही है।

योगाभ्यास करते समय गीता के इस श्लोक का स्मरण रखना चाहिए।

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नाववोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

(गीता)

दुखों का नाश करनेवाला यह योग यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करनेवाले, यथायोग्य शयन तथा जागने वाले को ही सिद्ध होता है। अत; अभ्यास में धैर्य रखते हुए साधना करनी चाहिए। शीघ्रता करने से लाभ के बदले हानि ही होगी।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैवचार्जुन ॥

(गीता)

यह योग न तो बहुत खानेवाले को सिद्ध होता है और न बिल्कुल ही न खाने वाले को। न अति शयन करने वाले को और न अत्यन्त जागने वाले को ही सिद्ध होता है।

कई साधक अभ्यास काल में भोजन बिल्कुल ही कम कर देते हैं, इससे भी हानि होती है, क्योंकि कई एक आसन और प्राणायाम करने से जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है और इस समय भोजन नहीं देने से मांस और खून जलता है। इससे शरीर कृश हो जाता है। अतः आवश्यकतानुसार भोजन करना चाहिए। कई एक साधक ठूँस-ठूँस कर भोजन करने लगते हैं। इससे भी योग मार्ग में बाधा होती है। इस तरह से संतुलित एवं आवश्यकतानुसार आहार-विहार रखते हुए योगाभ्यास करना चाहिए। धैर्य के साथ धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाते जाने पर ही योगमार्ग में सफलता मिलती है जैसे कि कहा जाता है—

"Slow and Steady wins the race".

पञ्चम अध्याय

मुद्रा (Gesture)

मुद्रा का कई अर्थों में प्रयोग किया जाता है। एक अर्थ में मुद्रा से तात्पर्य रुपये-पैसे से है। जिसे अर्थशास्त्र (Economics) में विनिमय (Exchange) का साधन कहा गया है। जिस तरह विनिमय के साधन के लिए मुद्रा अति आवश्यक है उसी तरह योगी के लिए भी मुद्रा का अधिक महत्त्व है। जैसे मुद्रा को छिपाकर रखते हैं वैसे ही यौगिक मुद्रा गोपनीय है। यौगिक मुद्रा ही यहाँ पर चर्चा का विषय है।

आध्यात्मिक अर्थों में मुखमण्डल (Aura) के विशेष भाव-भंगिमा की स्थिति को मुद्रा कहते हैं अर्थात्

The particular state of face is called 'Mudra'.

जैसे मन्दिरो में विभिन्न मूर्त्तियाँ भिन्न-भिन्न मुद्राओं में प्रतिष्ठित की जाती हैं उसी तरह यौगिक मुद्राएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं जिनमें ब्रह्मांजलि एवं ज्ञान मुद्रा प्रमुख हैं।

इसके अतिरिक्त एक और यौगिक मुद्रा है जिसमें यौगिक आसन और प्राणायाम का एक विशेष प्रकार से संयोग होता है और जिसका मुख्य उद्देश्य यौगिक क्रियाओं को जागृत करने से है अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति का मुख्य केन्द्र कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से है। प्रत्येक मुद्रा की रचना इस तरह है कि उसका सीधा प्रभाव मूलाधार अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति के निवास स्थान पर पड़ता है। मुद्रा के अभ्यास से ब्रह्मद्वार या सुषुम्ना मुख से निद्रिता कुण्डलिनी जागृत होकर ऊपर की ओर उठती है। कुण्डलिनी के जागने पर चक्र और ग्रन्थि का भेदन होता है। प्राण अनायास सुषुम्ना में प्रवेश करता है। चित्त निरालम्ब होता है और मृत्युभय समाप्त हो जाता है। आधार शक्ति रूपा कुण्डलिनी समस्त योगाभ्यास का मूल अवलम्ब है।

मुद्रा की परिभाषा :—

आसन की यह विशेष स्थिति जिसमें प्राणायाम सम्मिलित हो या नहीं हो परन्तु जो कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने में मदद करती है उसे मुद्रा कहते हैं।

The particular state of Asan with or without the process of Pranayam or fixation of gaze in certain ways which helps in the actual arousal of the tremendous force of Kundalini is known as Mudra.

मुद्रा दो प्रकार के होते हैं :—

(i) प्राणायामिक मुद्रा (Mudra with Pranayam)

(ii) अप्राणायामिक मुद्रा (Mudra without Pranayam)

(i) प्राणायामिक मुद्रा :—

आसन और प्राणायाम का वह विशेष संयोग जो कुण्डलिनी की प्रचण्ड शक्ति को जगाने में मदद करती है उसे प्राणायामिक मुद्रा कहते हैं ।

The certain combination of Asan with the process of Pranayam which helps in the arousal of the tremendous force of kundalini is called Pranayamic Mudra.

इस मुद्रा के निम्नलिखित प्रकार हैं :—

(१) महामुद्रा (२) महाबन्ध

(३) महावेध (४) विपरीतकरिणी

(५) अश्वनि मुद्रा (६) योनि मुद्रा

(७) शक्तिचालिनीमुद्रा (८) योग मुद्रा

(१) महामुद्रा :—

बायें पैर की एड़ी को सिवनी नाड़ी (जिसका स्थान गुदा और लिंग के बीच में है) से लगाकर दाहिने पैर को सीधे फैलायें तथा दाएँ पैर के अँगूठे को दोनों हाथों से पकड़े रहें और सिर को घुटने पर लगायें या लगाने का प्रयत्न करें । अब बायें नथने से पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक करें । दायें से रेचक करें । इस तरह पाँच कुंभक बायें नथने से करें । अब दायें पैर को सिकोड़कर सिवनी नाड़ी से लगायें तथा बायें पैर को फैलायें फिर दाहिनी से पूरक करके कुंभक करें तथा बायें से रेचक करें, इस तरह दक्षिण नासिका से पाँच कुंभक करें । इसमें यह ध्यान रखें कि दोनों तरफ कुंभक की संख्या समान हो । कुम्भक के समय मूलबन्ध और जालन्धर बन्ध का प्रयोग करें ।

लाभ :—

इस मुद्रा से अविद्या, अस्मिता आदि पञ्चक्लेश दूर होते हैं। इससे इसका नाम महामुद्रा पड़ा। इसके अभ्यास से जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है तथा कुष्ठ रोग एवं गुदा (Annus) सम्बन्धी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। बढ़ी हुई तिल्ली, पुराना ज्वर, प्रमेह भी दूर हो जाते हैं।

(२) महाबन्ध :—

बायें पैर की एड़ी को योनिस्थल से लगाकर और बायें पैर के जंघा पर दाहिने पैर को रखें फिर दोनों नासिका से पूरक करके कुम्भक करें। मूलबन्ध और जालन्धर बन्ध का प्रयोग करें। मन को मध्य नाड़ी (सुषुम्ना) में लगायें। उसके पश्चात् दाहिने एड़ी को योनिस्थल से लगायें तथा बायें पैर को दाहिने जंघा पर रखें तथा दोनों नासिका से पूरक करके कुम्भक करें। यह ध्यान रखें कि दोनों नासिका से बराबर कुम्भक हो।

लाभ :—

इस महाबन्ध से इड़ा-पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ी तीनों का संगम होता है और मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी जागृत होकर आज्ञाचक्र तक शीघ्र ही पहुँच जाती है। क्योंकि इससे मूलाधार पर दबाव पड़ने के कारण तीनों नाड़ियों पर प्रभाव पड़ता है। इससे मन भृकुटि में लय हो जाता है। साधक ध्यानस्थ हो जाता है।

(३) महावेध या ताड़न मुद्रा :—

महाबन्ध मुद्रा में स्थित होकर एकाग्र बुद्धिवाला योगी पूरक करके जालन्धर बन्ध लगाकर प्राण की गति को रोकें। भूमि पर बराबर दोनों हाथों को टेककर सिवनी नाड़ी से लगी एड़ी सहित हाथों के बल पर दोनों नितंबों को ऊपर उठायें और फिर जमीन पर पटक दें। बार-बार इसी प्रकार करें। इस क्रिया को ताड़न कहते हैं। एक बार कुम्भक करके कई बार ताड़न करें। इस मुद्रा में एक पैर के बाद दूसरा पैर बदलते रहते हैं। ऐसा करने पर दोनों नाड़ियों इड़ा और पिंगला का उल्लंघन करके प्राणवायु मध्य में अर्थात् सुषुम्ना में बढ़ने लगता है।

चित्र २२ : विपरीतकारिणी

लाभ :—

इस मुद्रा से बुढ़ापे के कारण शरीर के चर्म में सिकुड़ाहट नहीं आती है। बुढ़ापे के कारण केशों का श्वेत होना दूर हो जाता है। यदि किसी और कारण से बाल श्वेत होता है तो इस क्रिया से रुक जाता है। बुढ़ापे के कारण कँप-कपी नहीं होती है क्योंकि इस मुद्रा से Pitutory एवं Adrenal gland पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

(४) विपरीतकरिणी :—

पीठ के बल लेट जायें, पूरक करके कुम्भक करें, फिर दोनों पैरों को मिलाकर ऊपर उठायें। पहले ३०° तब ६०° फिर ९०° पर ले जायें। तत्पश्चात् कमर को डेढ़ फीट की दूरी पर उठाएँ; दोनों हाथों को नितम्ब पर रखें। केहुनियों को जमीन पर, दोनों कंधे गर्दन भी जमीन पर सटाये रखें। इस स्थिति में कुछ देर रहने के बाद पूर्वस्थिति में वापस आ जाएँ और रेचक करते हुए पुनः शवासन में आ जायें। अभ्यास १ मिनट से प्रारम्भ करें। यह ध्यान रखें कि पीठ जमीन के सतह से ४५° का कोण बनाये।

इस अवस्था में सूर्य ऊपर रहता है और चन्द्रमा नीचे। अतः चन्द्रमा से झड़नेवाला अमृत रस सूर्य पर गिरके जिह्वा पर आ जाता है।

सावधानी :—

इसका अभ्यास थोड़े समय से आरंभ करके धीरे-धीरे प्रतिदिन बढ़ाना चाहिये। इसके फलस्वरूप जठराग्नि काफी प्रदीप्त हो जाती है। इस समय यदि पूरा भोजन नहीं लिया जायेगा तो उसके बाद जठराग्नि शरीर के रसों, मांसों आदि का शोषण करने लगती है जिससे शरीर कृश हो जाता है। उच्च रक्त-चाप वालों को यह मुद्रा नहीं करनी चाहिये।

लाभ :—

इस मुद्रा से चेहरे में रक्त-प्रवाह होने से मुख के आभा-मण्डल में वृद्धि होती है।

छः महीने तक ठीक ढंग से अभ्यास करने पर चर्म में सिकुड़ाहट नहीं आती है और सिकुड़ा हुआ चर्म भी फिर से पूर्वस्थिति को प्राप्त कर लेता है। सफेद बाल काले हो जाते हैं। भूख बढ़ने लगती है। Endocrine gland पर इस मुद्रा का अच्छा प्रभाव पड़ता है।

आमाशयिक गड़बड़ी जैसे अजीर्ण, गैस्ट्रिक ट्रबुल को दूर करता है। सिर का चक्कर, सिर दर्द को ठीक करता है। Thorax और Head में रक्त-प्रवाह को बढ़ाता है।

(५) अश्वनी मुद्रा :—

अपने स्थिर आसन पर बैठकर पूरक करके कुंभक करें और जालन्धर बन्ध लगायें और गुदा द्वार का बार-बार संकोच करें और छोडें। फिर रेचक करें। इसी तरह बार-बार करें। इस मुद्रा में जैसे घोड़ा लीद (मल) त्याग करते समय गुदा को बार-बार संकोच करता है और छोड़ता है वैसे ही इस मुद्रा में करने के कारण इसे अश्वनी मुद्रा कहते हैं।

लाभ :—

गुदा सम्बन्धित सर्व रोग दूर हो जाते हैं। सुषुम्ना द्वार खुल जाता है जिससे कुण्डलिनी शक्ति के शीघ्र जागरण में काफी मदद मिलती है।

(६) योनिमुद्रा या षण्मुखी मुद्रा :—

सिद्धासन पर बैठकर पूरक करें। तत्पश्चात् योनिमार्ग का ऊपर की ओर संकोच करें और दोनों अंगूठें से दोनों कानों को, तर्जनी से दोनों आँखों को, मध्यमा से नाक को, अनामिका एवं कनिष्ठिका से ओष्ठ को बन्द कर लें। यथाशक्ति कुम्भक करने के पश्चात् हाथों की अँगुलियों को हटा लें और योनि भाग का संकोच भी छोड़ दें फिर पूरक करके यही प्रक्रिया करें। इसे षणमुखी मुद्रा कहते हैं।

लाभ :—

इससे कुण्डलिनी शक्ति शीघ्र जागृत होती है एवं वीर्य का ओजस् शक्ति में रूपान्तरण होता है तथा इस मुद्रा से योगी भोग जनित सुख का अनुभव करता है। इस मुद्रा से प्राण अपान का संगम होता है।

(७) शक्तिचालिनी मुद्रा :—

वज्रासन में स्थित होकर सूर्य स्वर से भस्त्रिका करें। इसके पश्चात् उसी स्वर से परक करके कुम्भक करें। कुम्भक

चित्र २३ : योनिमुद्रा (षण्मुखी मुद्रा)

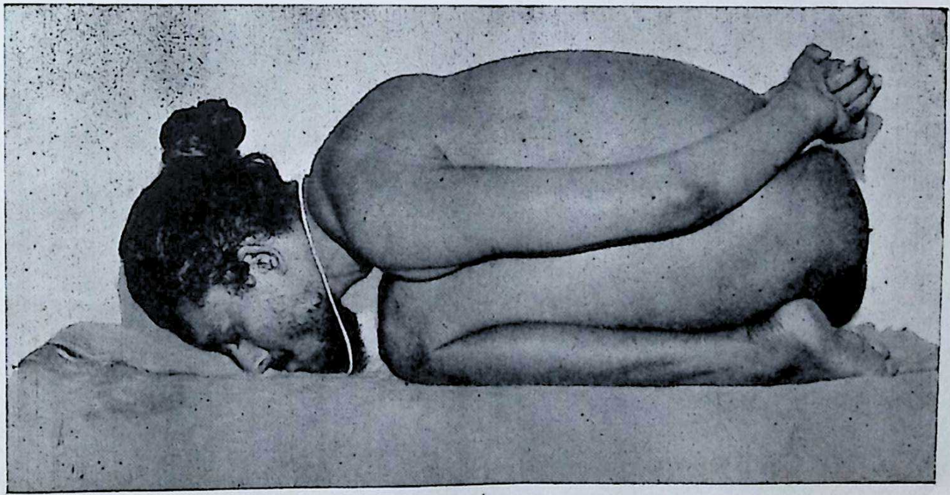

चित्र २४ : योगमुद्रा (वज्रासन में)

करते समय योनिभाग का ऊपर की ओर संकोच करें। प्राण और अपान को मिलाने के लिए उड्डीयान बन्ध लगायें पुन: इस क्रिया को दुहरायें। अभ्यास करते-करते जब प्रातः सायं का अभ्यास चार घड़ी तक पहुँच जाता है तो यह मानते हैं कि कुण्डलिनी के जागृत होने की स्थिति बन गयी।

यह मुद्रा कुण्डलिनी को जगाती है अतः इसे शक्तिचालिनी मुद्रा कहते हैं। यह कुण्डलिनी का ही दूसरा नाम है ।

(८) योगमुद्रा।—

वज्रासन में बैठ जायें। दोनों हाथों के अंगूठे को मुट्ठी के अन्दर करके नाभि के अगल-बगल, लगायें, पूरक करके कुम्भक करें। मूलबन्ध और जालन्धर वन्ध लगायें। अब धीरे-धीरे रेचक करते हुये धड़ को आगे की ओर झुकाते हुए नाक के अग्रभाग को, ठोढी को जमीन सें स्पर्श करें। फिर पूरक करते हुए वज्र आसन में वापस आ जायें। इस क्रिया को दुहरायें।

लाभ:—

इस मुद्रा से मणिपुर चक्र जागृत होता है तथा पेट के समस्त गैस, मधुमेह तथा हार्निया रोग का उन्मूलन होता है। बवासीर तथा पोलियो के निवारण में इससे सहायता मिलती है।

अप्राणायाम्कि मुद्रा :—

आसन की वह विशेष विधि जिसमें प्राणायाम के बिना दृष्टि को एक स्थान पर स्थिर रखा जाता है जिससे कुण्डलिनी की प्रचण्ड शक्ति को जागृत करने में मदद मिलती है इसे अप्राणा-यामिक मुद्रा कहते हैं।

The particular state of Asan with fixed gaze on certain point or an object without the process of Pranayam which helps the actual arousal of the tremendous force of Kundalini is called Non-Pranayamic Mudra.

यह मुद्रा निम्नलिखित प्रकार की होती है—

(i) नभोमुद्रा	(ii) खेचरी	(iii) शाम्भवी
(iv) अगोचरी	(v) भूचरी	(vi) चाचरी
(vii) ब्रह्मांजलि	(viii) ज्ञानमुद्रा	

(i) नभो मुद्रा :—

जिह्वा को उलटकर तालु से लागाये रहने की प्रक्रिया को नभो मुद्रा कहते हैं।

लाभ :—

इसके अभ्यास से भूख-प्यास को उपशमित करने की क्षमता आ जाती है तथा खेचरी मुद्रा की सिद्धि में सहायता मिलती है।

(ii) खेचरी :—

जीभ को धीरे-धीरे तालु के अन्दर प्रवेश कराके जीभ को ऊपर की ओर उलटकर कपाल कुह्वर में प्रविष्ट कराकर दोनों भौहों के बीच में दृष्टि स्थिर करने को खेचरी मुद्रा कहते हैं।

कपाल का छिद्र जहाँ से जिह्वा को स्पर्श करता है और जिससे अमृत का स्राव होता है, जिससे भूख प्यास नहीं लगती है और जिससे योगी आनन्द में डूब जाता है वह स्थान है, पीट्यूटरी ग्लैण्ड।

खेचरी सिद्धकरने के उपाय :—

इस क्रिया को सिद्ध करने के लिए जिह्वा का छेदन, चालन और दोहन करते हैं। यह क्रिया लम्बे अर्से के बाद सिद्ध होती है। ऐसा करने पर जिह्वा इतनी बढ़ जाती है कि वह भ्रुकुटि के मध्य भाग तक पहुँचने लगती है, तब खेचरी सिद्ध होती है।

चालन :—

हाथों के अंगूठा और तर्जनियों से जीभ को पकड़कर दायें-बायें दोनों तरफ घुमाने का नाम चालन है।

दोहन :—

अंगूठा और उँगलियों की मदद से गाय को दुहने के समान जीभ को दुहकर बढ़ाने का नाम दोहन है।

छेदन :—

स्नुही या सेहद के पत्ते के समान बहुत पैने और स्निग्ध शस्त्र को लेकर उससे जिह्वा के नीचे की पतली झिल्ली जिसे फ्रेनुलुम (Frenulum) कहते हैं, को काटने को छेदन कहते हैं। ऐसे काटने से जीभ आसानी से ऊपर की छोर तक चढ़ाई जा सकती है।

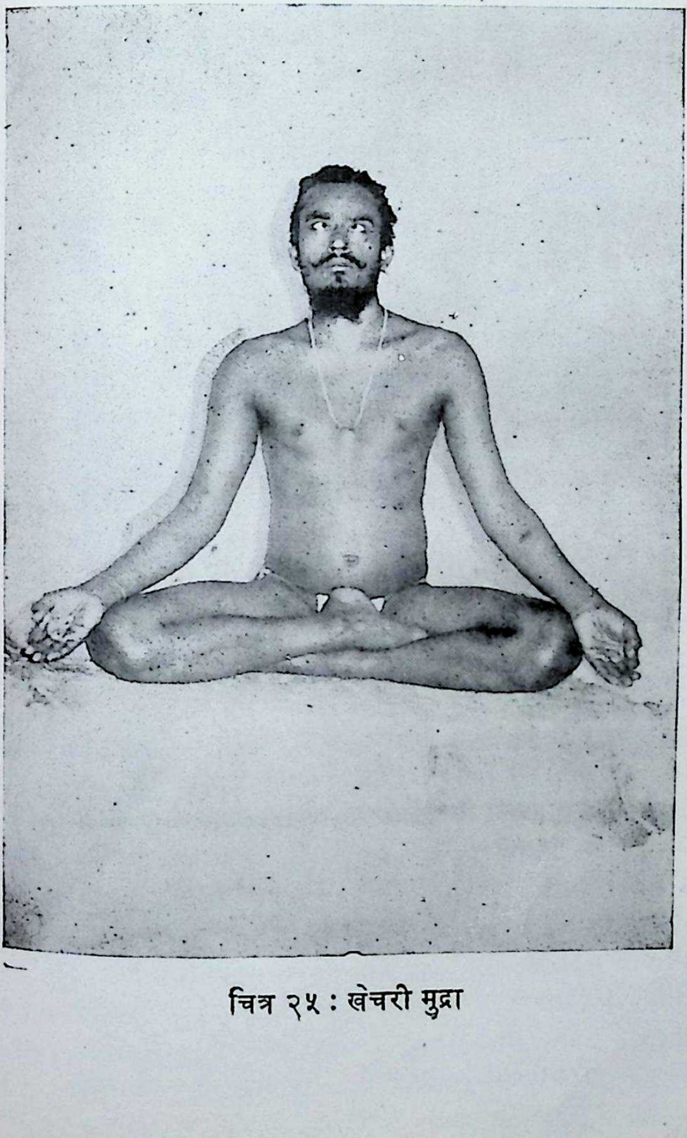

चित्र २५ : खेचरी मुद्रा

फ्रेनुलुम को काटने की क्रिया धीरे-धीरे करते हैं। एक बार काटने के बाद कत्थे से मलते हैं। छेदन की क्रिया प्रत्येक सप्ताह में एक बार करते हैं और इस प्रकार करते हुए छः महीने के अन्तर्गत छेदन की प्रक्रिया पूर्ण होती है। फ्रेनुलुम को कटवाने का काम शल्य चिकित्सक विशेषज्ञ से भी कराया जा सकता हैं।

परन्तु इस क्रिया को योग्य गुरु के निर्देशन में करना चाहिए अन्यथा वाक्‌शक्ति समाप्त होने की अधिक संभावना रहती है।

खेचरी सिद्ध करने की उपर्युक्त विधि सर्वसाधारण के लिए सुलभ नहीं है। अतः एक दूसरी सुगम विधि भी है जिसका अभ्यास करने से भी खेचरी सिद्ध हो जाती है। इस विधि में जिह्वा को उलटकर मोड़ते हुए तालु से लगाकर कुछ देर तक स्थिर रखें। धीरे-धीरे इसका अभ्यास बढ़ायें। ऐसा करने से कुछ समय पश्चात् जीभ कोमल होकर आसानी से मुख गह्वर में प्रविष्ट होने लायक हो जाती है। सिंहासन, शीतली प्राणायाम इस क्रिया में सहायक हैं। इसके अभ्यास के समय प्रोटीनयुक्त भोजन का सेवन न करने से खेचरी शीघ्र सिद्ध हो जाती है।

खेचरी से लाभ :—

तालु के ऊपर छिद्र में जिह्वा को प्रविष्ट करके एक घड़ी यानी चौबीस मिनट भी स्थित रखें तो योगी सर्प, बिच्छू आदि के विष से मुक्त हो जाता है तथा व्याधि, मृत्यु, जरा से भी मुक्त हो जाता है। इसके अभ्यास से निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, तृषा-प्यास, मूर्च्छा आदि भी योगी के पास नहीं फटकती है। इसका कारण यह है कि जब जीभ भ्रूमध्य जो छूती है तो वह लार-ग्रन्थि (Salivary gland) को उत्तेजित करती है और उससे लार (Saliva) स्रावित होने लगता है। जिससे साधक की चेतना अभ्यास के समय व्यग्र नहीं होती और साधक लम्बे समय तक निर्विघ्न ध्यानस्थ रहता है।

जीभ से मस्तिष्क तक जाने वाली Trigeminal और Glosopheryngeal पैरा सिम्पैथेटिक सिस्टम से जुड़ी होती है। खेचरी मुद्रा द्वारा स्नायु उत्तेजित होते हैं जिससे इनमें स्पन्दन (Pulsation) होता है इसके साथ ही साथ Salivary gland स्वाद, रस (Juice) और श्वसन को भी नियन्त्रित करती है। अतः खेचरी मुद्रा के

अभ्यास के बाद योगी समाधि की स्थिति को सहज ही प्राप्त कर लेता है।

ध्यान की अवस्था में खेचरी मुद्रा के अभ्यास के फलस्वरूप मध्य मस्तिष्क प्रभावित होता है और मध्य मस्तिष्क से ही श्वसनतन्त्र, हृदय ग्रन्थि और शरीर के अन्य स्नायु नियंत्रित होते हैं और पैरासिम्पैथेटिक के उत्तेजित हो जाने से शिथिलता आती है। यही शिथिलता समाधि में सहायक होती है।

पारा-सिम्पैथेटिक को प्रभावित करने से हाइपोथैलमस और एण्डोक्राइन ग्लैंड्स प्रभावित होती है। हाइपोथैलमस के प्रभावित होने से भूख-प्यास स्थल भी प्रभावित होता है तथा एण्डोक्राइन ग्लैंड्स पर प्रभाव पड़ने से शारीरिक स्वस्थ्यता, सुन्दरता और तेजस्विता प्राप्त होती है। खेचरी से प्राप्त अमृतपान से ही योगी तृप्त रहता है।

खेचरी मुद्रा के प्रभाव से न रोग पीड़ित कर पाते और न कर्म ही लिप्त कर पाते हैं। जिस योगी ने खेचरी मुद्रा से तालु के ऊपर रहने वाले छिद्र को ढंक दिया उसका वीर्य युवती स्त्री के आलिंगन करने पर भी स्खलित नहीं हो सकता है। जो योगी प्रतिदिन गो मांस (अमर वारुणी) खाता है, पीता है, वह श्रेष्ठ है । गो कहा है कि जीभ को और इसी के मांस कहने की बात कही गयी है। योगी इसे मुख गह्वर में डालकर ऊपर से टपकनेवाले अमृत का पान करता है। इससे उसके शरीर की ऊर्जा शक्ति बढ़ती है। इसके अभ्यास होने पर शीघ्र ही कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है।

(iii) शाम्भवी मुद्रा :—

सिद्धासन में बैठकर मन को आज्ञा चक्र में स्थिर करके दृष्टि को समस्थल में अधिक से अधिक ३ फुट और न्यूनतम एक वालिस्त के अन्तर से किसी मनोनित पदार्थ की कल्पना में स्थिर रखकर स्थित करने को शाम्भवी मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा को चलते, फिरते, उठते, बैठते काम करते हुए भी किया जा सकता है ।

लाभ :—

इस मुद्रा से आज्ञा चक्र में चेतनता आती है और कुण्डलिनी

शक्ति का आकर्षण सहस्रार की ओर होता है। इस क्रिया से आँख में एक विशेष प्रकार की क्षमता आ जाती है और मनोबल बढ़ता है। इच्छा मात्र से ही सारे मनोवांछित फल प्राप्त होते हैं।

(iv) अगोचरी मुद्रा :—

सिद्धासन में बैठकर नासिका के अग्रभाग पर मन को केन्द्रित करके दृष्टि को स्थिर करना अगोचरी मुद्रा कहलाता है। इसे करते समय कमर, पीठ और गर्दन एक सीध में रखें। साँस को स्वाभाविक स्थिति में रहने दें।

लाभ :—

इस मुद्रा से मन अन्तर्मुखी, (Introvert) होता है। चित्त की चंचलताएँ दूर होकर एकाग्र हो जाती हैं। इसके अभ्यास से मस्तिष्क के अग्रभाग में उत्तेजना (Sensation) होने से उसमें स्थित नाड़ियाँ संवेदनशील हो जाती हैं। जिसके फलस्वरूप तेज दृष्टि, उच्च मनोबल (High will Power), तीक्ष्ण स्मरणशक्ति की प्राप्ति होती है।

(v) भूचरी मुद्रा :—

सिद्धासन में बैठकर नासिका के अग्रभाग से चार अंगुल दूर अवकाश में मन को स्थिर करने को भूचरी मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा को करते समय पीठ, गर्दन एवं सिर एक सीध में रखें।

लाभ :—

इस मुद्रा के अभ्यास से मध्य मस्तिष्क की समस्त नाड़ियों में गतिशीलता आती है जिससे पिनीयल ग्लैंड में उत्तेजना होने से साधक को दिव्य-दृष्टि की प्राप्ति होती है क्योंकि यही पिनियल ग्लैंड त्रिनेत्र का काम करता है तथा आध्यात्मिक शक्ति का केन्द्र बिन्दु है।

(iv) चाचरीमुद्रा :—

आज्ञा चक्र में मन को स्थिर करने को चाचरी मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा से खेचरी की सिद्धि में सहायता मिलती है।

लाभ :—

इस मुद्रा के अभ्यास से आज्ञाचक्र जागृत होता है तथा कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में पहुँचती है जहाँ पर शिव और शक्ति का मिलन होता है तथा साधक समाधिस्थ हो जाता है।

(vii) ब्रह्मांजलि मुद्रा :—

सिद्धासन या पद्मासन में बैठकर बायें हाथ की अंजलि को नाभि के ठीक नीचे रखकर दायें हाथ की अंजलि को उसके ऊपर इस तरह रखें कि दोनों हाथों का अंगूठा परस्पर स्पर्श नहीं करें और मन को स्थिर करके ध्यान की स्थिति में वैठें। इस स्थिति को ब्रह्मांजलि मुद्रा कहते हैं।

लाभ :—

यह मुद्रा प्रायः ध्यान समाधि की स्थिति में लगायी जाती है। इस मुद्रा से इन्द्रियों के सारे द्वार बन्द हो जाते हैं और साधक ब्रह्मलीन हो जाता है। इस मुद्रा से साधक ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त करता है। इसलिए इसे ब्रह्मांजलि मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा से यह भी फायदा होता है कि ध्यान और समाधि की स्थिति में उँगलियों के सिरे से निकलने वाली शक्ति जो Odylic Rays रूप में निकलती है, बाहर विर्सजित नहीं हो पाती है जिससे साधक की आध्यात्मिक शक्ति संग्रहीत होकर बढ़ती है।

(viii) ज्ञान मुद्रा :—

पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जायें। दोनों हाथों के कलाइयों के पृष्ठ भाग को घुटने पर रखें। दोनों हाथों के अंगूठे के प्रथम पोर से तर्जनी उँगली के सिरे को सटायें एवं अंङ्गकीनुमा बनायें और शेष सभी उँगलियों एवं हाथों को तना और सीधा रखें। इस प्रकार ध्यान, समाधि, चिन्तन, मनन करने की विधि को ज्ञान मुद्रा कहते हैं।

लाभ :—

इस मुद्रा से चिंतन,मनन, ध्यान करने में विशेष सुविधा मिलती है है और ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। अतः इसे ज्ञान मुद्रा कहते हैं। इस स्थिति में हाथों को सीधा तना हुआ रखने से ध्यान की अवस्था में भी फेफड़ों को फैलने, सिकुड़ने में मदद मिलती है। इस मुद्रा में कमर, गर्दन एवं सिर को एक सीध में रखने से ही वास्तविक लाभ मिल पाता है।

चित्र २६ : ब्रह्मांजलि मुद्रा (सिद्धासन में)

[illegible]

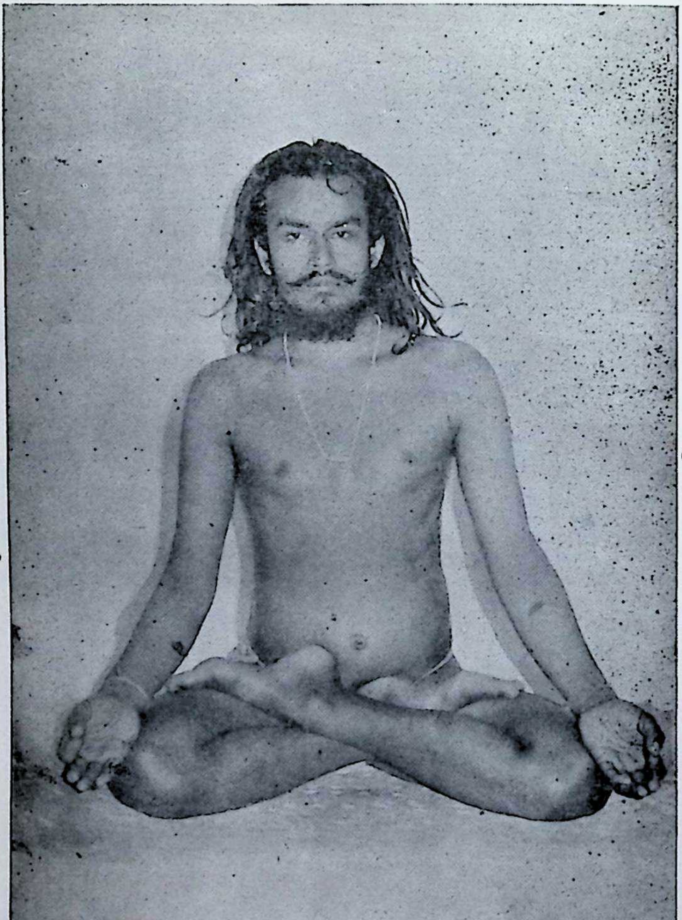

चित्र २७ : ज्ञानमुद्रा (पद्मासन में)

षष्ठ अध्याय

स्वर-विज्ञान

ईश्वर ने मानव मस्तिष्क में कितने ही गुप्त शक्तियों का भंडार जन्म से ही सञ्चित कर रखा है। परन्तु मनुष्य उन अलौकिक शक्तियों से अनभिज्ञ है। अगर हम उन सभी शक्तियों को जान लें तो स्वयं सर्वशक्ति सम्पन्न हो सकते हैं, देवत्व प्राप्त कर सकते हैं तथा अद्भुत एवं अदृश्य गुप्त शक्तियों का स्वामी बन सकते हैं। इन क्षेत्रों में हमारे पूर्वज त्रिकालदर्शी ऋषियों ने सतत् प्रयत्न करके उन बहुसंख्यक शक्तियों को जाना है। इन्हीं ज्ञात विद्याओं से सम्बन्धित शास्त्र हैं—वेदान्त, सांख्य, योग मीमांसा, न्याय, दर्शन आदि। इन्हीं विद्याओं में एक स्वर-शास्त्र भी है।

नासिका के दोनों छिद्रों से नित्य निरन्तर जन्म से मृत्युपर्यन्त जो श्वास प्रवाहित होता रहता है उसे ही स्वर कहते हैं। इसके सम्बन्ध में बृहत् ज्ञान कराने वाले शास्त्र को स्वर-शास्त्र कहते हैं। इसका रहस्य बहुत ही गूढ़ है। इसमें अनन्त ज्ञान का भण्डार भरा-पड़ा है। जिसे जानकर हम अपने जीवन के अनेक व्यवहारिक क्षेत्रों में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इसके साथ ही साथ त्रिकाल-ज्ञान, तत्त्व साक्षात्कार आदि गूढ़ रहस्य भी जान सकते हैं।

स्वर-शास्त्र का बुनियादी दृष्टिकोण यह है कि यह ससार पञ्च-तत्त्वों से उत्पन्न हुआ है। उन तत्त्वों से ही इस जगत् में परिवर्त्तन, पालन एवं नाश होता है। इस प्रकार इस संसार के विषय में निर्णय इन तत्त्वों द्वारा ही होता है। पञ्चतत्त्वों से बने हुए एवं पञ्चतत्त्वों से परिपूर्ण इस शरीर में सूक्ष्म रूप से पाँच तत्त्व विद्यमान हैं। अतएव इस देह (पिण्ड) में स्वर का सम्बन्ध इन्हीं पञ्चतत्त्वों से रहता है। स्वर के साथ ही साथ क्रम से इनका भी निरन्तर उदय होता रहता है। अतएव स्वर के समय इन तत्त्वों के उदय का ज्ञान जानकर ही त्रिकाल में होनेवाले शुभाशुभ फलों की जानकारी की जाती है। इसलिए जिज्ञासुओं को इस शास्त्र के

सिद्धान्त को प्रत्यक्ष प्रयोगों की कसौटी पर सत्य सिद्ध करके अपने जीवन के कठिन से कठिन समस्याओं को सुगमता से हल करना चाहिए।

उम्र के साथ स्वर का सम्बन्ध :–

साधारणतः एक मनुष्य एक मिनट में लगभग १५ बार श्वास[१] (प्राण=असु) लेता है। इस प्रकार पूरे दिन और रात अर्थात् २४ घण्टे में २१,६०० श्वास होते हैं।

एक अहोरात्र = २४ घण्टे

२४ × ६० = १४४० मिनट

∵ १ मिनट में १५ बार श्वास चलता है

∴ ६० मिनट अर्थात् १ घण्टे में १५ × ६० = ९०० श्वास

∴ २४ घण्टे में २४ × ९०० = २१,६०० श्वास

इससे यह विदित होता है कि जिस प्राणी में श्वास की संख्या जितनी अधिक होगी वह उतना ही अल्पायु होगा और श्वास की संख्या जितना कम होगा उतना ही दीर्घायु होगा। अतः हमारे प्राचीन ऋषि महर्षियों ने इस अनुभव के आधार पर ही प्राणायाम का रास्ता अख्तियार किया। श्वास के आधार पर ही संसार के सारे प्राणियों की आयु निर्भर करती है।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार मनुष्य की औसत आयु १२० वर्ष मानी गयी है। इस अवधि में क्रम से प्रत्येक ग्रहों की दशा चलती है जिसके आधार पर मनुष्य का भविष्यफल जाना जाता है। १२० वर्ष में मनुष्य के जीवन में विभिन्न ग्रहों की दशा इस प्रकार है—

---

१. १० गुरु अक्षर के उच्चारण में जितना समय लगता है वह १ प्राण, ३६० प्राण की १ घटी कहलाती है।

१ घटी = २४ मिनट। ∴ २½ घटी = २½ × २४ मिनट

= ६० मिनट। ∵ १ घटी में ३६० प्राण

∴ २½ घटी में ३६० × २½ = ९०० प्राण

इसीलिए १ घण्टा में ९०० प्राण होते हैं।

सूर्य की दशा		६ वर्ष
चन्द्र	,,	१० वर्ष
मंगल	,,	७ ,,
बुध	,,	१७ ,,
गुरु	,,	१६ ,,
शुक्र	,,	२० ,,
शनि	,,	१९ ,,
राहु	,,	१८ ,,
केतु	,,	७ ,,
		१२० ,,

१२० वर्ष में श्वासों (प्राणों) की संख्या की गणना इस प्रकार है—

सूर्य की दशा में प्राणों की संख्या=

२१६०० × ३६० × ६ = ४६६५६००० श्वास असु

चन्द्र की दशा में,

२१६०० × ३६० × १० = ७७७६०००० ,,

मंगल की दशा में,

२१६०० × ३६० × ७ = ५४४३२००० ,,

बुध की दशा में,

२१६०० × ३६० × १७ = १३२१९२००० ,,

गुरु की दशा में,

२१६०० × ३६० × १६ = १२४४१६००० ,,

शुक्र की दशा में,

२१६०० × ३६० × २० = १३५५२०००० ,,

शनि की दशा में,

२१६०० × ३६० × १९ = १४७७४४००० ,,

राहु की दशा में,

२१६०० × ३६० × १७ = १३९९६४००० ,,

केतु की दशा में,

२१६०० × ३६० × ७ = ५४४३२००० ,,

१२० वर्ष = ९३३१२०००० असु

इस तरह १२० वर्ष के मानव असु ६३३१२०००० होते हैं। अतः जब स्वर का प्रवाह कम होगा तो असु भी कम हो जायेंगे और जीवनी शक्ति बढ़ेगी।

स्वरोदय :—

दोनों नथनों से श्वास-प्रश्वास हमेशा एक समान नहीं चलता है, बल्कि क्रमिक ढंग से वाम और दक्षिण नासिका में परिवर्तित होता रहता है। जब एक नासिका का प्रवाह बन्द हो जाता है तब दूसरे नासिका से श्वास-प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है। श्वास प्रवाह के इस क्रिया को स्वर कहते हैं और एक नासिका से दूसरे नासिका में स्वर के प्रवाह को उदय कहते हैं। स्वर+उदय=स्वरोदय। इस तरह से वाम या दक्षिण नासिका में स्वर के उदय होने को स्वरोदय कहते हैं।

जब किसी नासिका में स्वर का उदय हो जाता है तो एक घंटा अर्थात् ढाई घड़ी तक स्वर उसी नासिका में प्रवाहित होता रहता है। इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि प्रत्येक एक घण्टा पर विशिष्ट नियमानुसार श्वास एक नासिका से दूसरे नासिका में बदलता रहता है।

स्वर का नाम : –

जब स्वर का प्रवाह बायें नासिका से होता है तो उसे इड़ा-स्वर कहते हैं। जब स्वर दक्षिण नासिका से चलता है तब इसे पिंगला स्वर कहते हैं। दोनों नासिका से समान रूप से स्वर के प्रवाह को सुषुम्ना कहते हैं।

इड़ा स्वर चन्द्रमा का प्रतीक है और पिंगला सूर्य का। अतः इड़ा को चन्द्र स्वर और पिंगला को सूर्य स्वर कहते हैं। चन्द्र स्वर से तत्त्व का प्रवाह होता है। अतः यह स्वर शरीर को शीतलता प्रदान करता है क्योंकि चन्द्रमा की प्रकृति शीत है। सूर्य स्वर से सूर्य-तत्त्व का प्रवाह होता है। इससे शरीर को उष्णता मिलती है। सूर्य का स्वभाव उष्ण है। सूर्य स्वर के प्रवाह के समय शरीर में पित्त की बृद्धि होती है और चन्द्र स्वर प्रवाह के समय शरीर में कफ की प्रधानता होती है।

स्वर पहिचानने का तरीका :—

एक नासापुट को दबाकर दूसरे के द्वारा श्वास को बाहर निकालने पर यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि एक नासिका से सरलतापूर्वक श्वास-प्रवाह चल रहा है और दूसरा नासापुट मानों बन्द है, अर्थात् दूसरी नासिका की तरह सरलता पूर्वक श्वास नहीं निकलता। जिस नासिका से सरलता पूर्वक श्वास बाहर निकलता हो, उस समय उसी नासिका का अभ्यास करना चाहिए। अथवा, दोनों नासापुटों के निकट अपने हाथ पर श्वास को गिराने पर जब मालूम हो कि एक नासा छिद्र से श्वास वेग पूर्वक निकल रहा है तथा दूसरे से बहुत धीमा अर्थात् न निकलने के समान तब पहले वाला श्वास जिस नासा छिद्र से चल रहा है, उस समय उसी नासिका में स्वर का उदय जानना चाहिए। यदि दोनों नासा छिद्र से समान रूप से श्वास प्रवाह होता है तो सुषुम्ना स्वर जानना चाहिए।

स्वर परिवर्त्तन करने की विधि :—

जिस नासिका से श्वास चलता हो उसी करवट लेट जाने के १५ मिनट पश्चात् स्वर की गति बदल जाती है जैसे किसी का बाया स्वर चल रहा हो और उसे दक्षिण स्वर करना हो तब उसे बाये करवट लेट जाना चाहिए। इससे दक्षिण स्वर चालू हो जायेगा। इस तरह से आवश्यकतानुसार वाम-दक्षिण स्वर को चालू करना चाहिए। अर्थात् यदि दक्षिण स्वर चलाना हो तो बायें करवट लेट जाना चाहिए।

अगर सुषुम्ना स्वर को चालू करना हो तो सिद्धासन में बैठ जायें अर्थात् बाये एड़ी को योनि (गुदा और लिंग के बीच का भाग, जिसे कन्द भी कहते हैं) से लगायें, दाये एड़ी को लिंग मूल पर लगाये। दोनों हाथो को घुटने पर रखकर ज्ञान मुद्रा में बैठ जायें। कमर, पीठ और गर्दन एक सीध में रहे। इस तरह २५ मिनट तक बैठने से सुषुम्ना स्वर का प्रवाह हो जाता है।

स्वर-प्रवाह का सिद्धान्त :—

किस दिन किस नासिका से पहले श्वास-क्रिया होती है, इसका एक निर्दिष्ट नियम है। यथा—

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे ।
प्रतिपत्तौ दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये ॥

(पवन विजयस्वरोदय)

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि से तीन-तीन दिन की बारी से चन्द्र अर्थात् बायीं नासिका से तथा कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि से तीन-तीन की बारी से सूर्य नाड़ी अर्थात् दाहिनी नासिका से पहले श्वास प्रवाहित होता है। अर्थात् शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी पूर्णिमा—इन नौ दिनों में प्रातः काल सूर्योदय के समय पहले बायीं नासिका से तथा चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी द्वादशी—इन छः दिनों को प्रातः काल पहले दाहिनी नासिका से श्वास चलना आरम्भ होता है और वह ढाई घड़ी तक रहता है। इसके बाद दूसरी नासिका से श्वास जारी होता है। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्थी, अमावस्या—इन नौ दिनों में सूर्योदय के समय पहले दाहिनी नासिका से तथा चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी द्वादशी—इन छः दिनों में सूर्य के उदय काल में पहले बायीं नासिका से श्वास आरम्भ होता है और ढ़ायी घड़ी के बाद दूसरी नासिका से चलता है। इस प्रकार रात-दिन में बारह बार बायीं ओर बारह बार दाहिनी नासिका से क्रमानुसार श्वास चलता है।

चन्द्र-सूर्य स्वर का ज्ञान-चक्र

शुक्ल पक्ष	चं	चं	चं	सू	सू	सू	चं	चं	चं	सू	सू	सू	चं	चं	चं
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
कृष्ण पक्ष	सू	सू	सू	चं	चं	चं	सू	सू	सू	चं	चं	चं	सू	सू	सू
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५

नोट—सूर्योदय के समय जो तिथि हो उसी को चौबीस घंटे तक समझना चाहिए।

पंचतत्त्वों का उदय :—

मनुष्य शरीर पंचतत्त्वों से निर्मित है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। प्रलय के समय ये पाँचों तत्त्व विलीन हो जाते हैं। सृष्टि रचना काल में इन पाँच तत्त्वों का चेतन ब्रह्म के साथ

संयोग होने पर पिण्ड (शरीर) का निर्माण होता है। ये पाँचों तत्त्व स्वर के साथ ही साथ क्रम से उदय होते रहते हैं। अतः तत्त्वों का भली-भाँति उदय जानकर भविष्य में होनेवाले भले-बुरे परिणामों को जाना जा सकता है।

स्वर का तत्त्व-ज्ञान जानने की विधि :—

निर्दिष्ट नियम के अनुसार स्वर के साथ तत्त्वों का उदय होता रहता है जिसे जानने की निम्नलिखित विधियाँ हैं—

(१) नासिका में स्वर का स्थान

(२) स्वर की आकृति

(३) तत्त्वों का रंग

(४) स्वाद से तत्त्व ज्ञान

(५) स्वर की लम्बाई के अनुसार तत्त्व-ज्ञान

(६) प्रश्वास-प्रवाह की दिशा के आधार पर तत्त्व-ज्ञान

१. नासिका में स्वर का स्थान :—

अगर श्वास का प्रवाह नासिका के मध्य भाग से हो रहा हो तो पृथ्वी तत्त्व, नीचे के भाग से होता हो तो जल तत्त्व, अगर नासिका के अग्र भाग से प्रवाह मालूम होता हो तो अग्नि तत्त्व, बगल से हो तो वायु तत्त्व और नासिका के अन्दर चक्र की तरह घूमता हुआ मालूम हो तो आकाश तत्त्व समझना चाहिए।

२. स्वर की आकृति से तत्त्व ज्ञान :—

जब प्रश्वास को दर्पण पर छोड़ा जाये तब नमी की आकृति वर्गाकार हो तो पृथ्वी तत्त्व, अर्ध-चन्द्राकार हो तो जल तत्त्व, त्रिकोण हो तो अग्नि तत्त्व, गोल हो तो वायु तत्त्व और छोटे-छोटे बुलबुले या धब्बा के समान आकृति हो तो आकाश तत्त्व समझना चाहिए।

३. तत्त्वों का रंग के आधार पर पहचान :—

षण्मुखी मुद्रा या योनिमुद्रा में बैठकर अर्थात् दोनों हाथों के अंगूठे को दोनों कानों में, दोनों बीच की अँगुलियों को नाक के छिद्रों

में, मुख पर अनामिका और कनिष्ठिका अँगुलियों को और आँखों पर तर्जनी अँगुलियों को रख कर सिद्धासन में बैठकर तत्त्वों का निरीक्षण करें। अगर पीला रंग दिखाई दे तो पृथ्वी तत्त्व, श्वेत से जल तत्त्व, लाल से अग्नि तत्त्व, काले से वायु तत्त्व और मिश्रित रंगों से आकाश तत्त्व का उदय समझना चाहिए।

४. स्वादों से तत्त्व-ज्ञान :—

पृथ्वी तत्त्व के उदय होने पर मुख में मधुर स्वाद का अनुभव होता है। अगर कसैला हो तो जल तत्त्व, तीता या तीखा हो तो तेज तत्त्व, खट्टा हो तो वायु और कड़ुआ हो तो आकाश तत्त्व का उदय समझना चाहिए।

५. स्वर की लम्बाई के अनुसार तत्त्व-ज्ञान :—

जब प्रश्वास की लम्बाई आठ अंगुल हो तो वायु तत्त्व, चार अंगुल हो तो अग्नि तत्त्व, बारह अंगुल हो तो जल तत्त्व, सोलह अंगुल हो तो आकाश तत्त्व का उदय जानना चाहिए।

६. प्रश्वास प्रवाह की दिशा के आधार पर तत्त्व-ज्ञान :—

जब प्रश्वास अर्थात् नासिका के बाहर निकलती हुई वायु प्रवाह की दिशा ऊपर की ओर हो तब अग्नि तत्त्व, नीचे की ओर हो तब जल तत्त्व, तिरछा हो तो वायु तत्त्व, मध्यम प्रवाह हो तो पृथ्वी तत्त्व और बिल्कुल साधारण प्रवाह हो तों आकाश तत्त्व का उदय समझना चाहिए। श्वास की चाल अगर भारी मालूम हो तो पृथ्वी तत्त्व और बिल्कुल हल्की जान पड़े तो आकाश तत्त्व समझना चाहिए।

तत्त्वों के उदय काल की अवधि (Duration of the Reign of the Elements) :—

एक तत्त्व का उदय होने पर निश्चित समय के बाद ही दूसरा तत्त्व उदय होता है जो निम्न प्रकार है—

तत्त्व का नाम	उदयकाल पल में	मिनट
१. पृथ्वी	५०	२०
२. जल	४०	१६
३. अग्नि	३०	१२
४. वायु	२०	८
५. आकाश	१०	४
	टोटल १५०	६०

(एक घंटा एक स्वर का समय होता है ।)

घटी, पल तथा घंटा मिनट का सम्बन्ध :—

६ श्वास = १ पल = २४ सेकेण्ड

६० पल = १ घटी = २४ मिनट

२½ घटी = १ घंटा = ६० मिनट

६० घटी = १ दिन और रात (अहोरात्र)

= २४ घंटे ।

तत्त्व पहचान तालिका :—

तत्वों का नाम	तत्वों का स्थान	आकृति	गुण	रंग	स्वाद	स्वर का स्थान	स्वर की लंबाई (अंगुल में)	स्वर की अवधि (मिनट में)
पृथ्वी	मूलाधार चक्र	चतुष्कोण	गंध-वती	पीला	मीठा	मध्य नासिका	१२	२०
जल	स्वधिष्ठान चक्र	अर्द्ध-चन्द्राकार	रस	श्वेत	कसैला	नासिका के नीचे	१६	१६
अग्नि	मणिपुर चक्र	त्रिकोण	तेज	लाल	तीखा या तीता	नासिका के ऊपर	४	१२
वायु	अनाहत चक्र	गोल	स्पर्श	नीला	खट्टा	नासिका के बगल में	८	८
आकाश	विशुद्धि चक्र	कोई निश्चित नहीं	शब्द	मिश्रित	कड़ुवा	चक्रवात	२०	४

बायाँ स्वर का फल :—

जिस समय बायीं नासिका से श्वास चलता हो, पृथ्वी या जल तत्त्व का उदय हो तो स्थिर कार्यों को करने से सफलता मिलती है। ये कार्य हैं :—

शान्तिकर्म, पौष्टिक कर्म, मैत्रीकर्म, प्रभुदर्शन, योगाभ्यास, दिव्य औषधि सेवन, रसायन-कर्म, भूषण धारण, विवाह, दान, आश्रम-प्रवेश, भवन निर्माण, जलाशय, बाग-वाटिका, यज्ञ सम्मेलन, ग्राम का बसाना, दूर यात्रा (दक्षिण या पश्चिम की), पानी या पेशाब जाना कर्म करना चाहिए। परन्तु वायु, अग्नि या आकाश तत्त्व का उदय हो तो उपर्युक्त कार्य उस समय नहीं करना चाहिए। उपर्युक्त कार्यों को पृथ्वी या जल तत्त्व उदय रहने पर सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार के दिन करने से अधिक सफलता मिलती है।

दक्षिण स्वर का फल :—

जिस समय दाहिनी नासिका से श्वास चलता हो, अग्नि या वायु तत्त्व का उदय हो तो कठिन कर्म करना चाहिए। अगर रवि, मंगल या शनिवार का दिन हो तो अतिउत्तम सफलता मिलेगी। ये कर्म हैं :—

क्रूर कर्म, शस्त्राभ्यास, शास्त्राभ्यास (दीक्षा), संगीत, वाहन, व्यायाम, नौका रोहण, यन्त्र-तन्त्र रचना, पर्वत या किले पर चढ़ाई, विषय-भोग, युद्ध, पशु-पक्षी का क्रय-विक्रय, काटना-छाँटना, कठोर यौगिक साधना, राजदर्शन, विवाद, किसी के समीप जाना, स्नान, भोजन, पत्रादि लेखन कार्य करना चाहिए।

सुषुम्ना स्वर का फल :—

सुषुम्ना स्वर के उदय काल में सर्व दिन में, सर्व तत्त्व में (विशेष आकाश तत्त्व में) ध्यान, धारणा, परमात्मा-चिन्तन आदि कार्य करना चाहिए।

कार्य-सिद्धि के स्वर :—

अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए जिस ओर का स्वर चल रहा हो, उसी ओर का पैर, पहले उठाकर गन्तव्य की ओर चलना चाहिए, परन्तु चलने के समय पृथ्वी या जल तत्त्व का उदय होना

चाहिए। जैसे गन्तव्य की ओर चलते समय आपका बायाँ स्वर चल रहा है तो बायाँ पैर पहले उठाना चाहिए।

फिर गन्तव्य लक्ष्य पर पहुँचकर जिस ओर का स्वर चल रहा हो, उसी ओर उस व्यक्ति को रखकर बात-चीत करने से अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है। उदाहरण के लिए मान लीजिए आप किसी नौकरी के लिए साक्षात्कार परीक्षा में किसी अधिकारी के समक्ष उपस्थित हो रहे हैं, या वादी-प्रतिवादी का गवाह के रूप में न्यायाधीश के समक्ष न्यायालय में उपस्थित हो रहे हों अथवा ठेके, व्यापार के सम्बन्ध में किसी से अपने लक्ष्य से सम्बन्धित बातों पर राजी कराना हो, उस समय यदि आप का बायाँ स्वर चल रहा हो तो बायीं ओर में उस व्यक्ति को रखकर बात करने से अभीष्ट सिद्धि मिलती है।

नोट--उपर्युक्त कार्य करते समय यह ध्यान रखें कि जिस ओर का स्वर चलता हो उस समय पृथ्वी या जल तत्त्व का उदय रहने पर ही कार्य सिद्धि होती है; परन्तु वायु, अग्नि या आकाश तत्त्व का उदय रहते समय कार्य-सिद्धि के लिए यात्रा नहीं करनी चाहिए।

गर्भाधान :—

सन्तानोत्पत्ति के लिए स्वर का विचार कर गर्भाधान करने से योग्य सन्तान की प्राप्ति होती है। ऋतु से चौथे दिन से लेकर सोलहवें दिन तक गर्भाधारण का उपयुक्त समय होता है। इस अवधि में किन-किन दिनों में संभोग करने से कौन-कौन सी सन्तान उत्पन्न होती हैं, इसका उल्लेख इस प्रकार है—

युग्मे तु प्रभाव प्रक्ता विवसेस्शणयाऽवला।
पुण्य काले सुचिस्तास्न, पत्यर्यी सिवेव्रजेत ।।

(काम-शास्त्र)

समरात्रि अर्थात् ऋतु स्थान के चौथे, छठे, आठवें, दशवें, बारहवें, चौदहवें एवं सोलहवें दिनों की रात्रि को नारी रज से पुरुष वीर्य में अधिक प्रबलता रहती है। इसलिए इन तिथियों के सम्भोग से पुत्र की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार विषम रात्रि अर्थात् पाँचवें, सातवें, नवें, ग्यारहवें, तेरहवें एवं पन्द्रहवें दिनों की रात्रि को नारी रज प्रबल और पुरुष वीर्यक्षीण रहता है। इन तिथियों के सम्भोग से कन्यायें उत्पन्न होती हैं।

परन्तु इस अवधि में भी मासिक धर्म से तीन दिनों का समय तथा महीने के शुक्ल पक्ष की अष्टमी, एकादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा या आमावस्या (1–3, 8th, 11th, 13th, 14h, और 15th) सन्तानोत्पत्ति के लिए निषेध है। इसी तरह ऋतु की स्नान तिथि के सतरहवें दिन से लेकर पुनः मासिक धर्म प्रारम्भ पूर्व होने तक के सम्भोग से गर्भ नहीं रहता है।

पुत्री या पुत्र प्राप्ति के लिए उपयुक्त बताये गये दिनों पर विचार करने के अतिरिक्त स्वर पर ध्यान देना भी काफी महत्त्वपूर्ण विषय है। और पुरुष के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

पुत्रप्राप्ति के लिये :—

रात्रि में जिस समय में पुरुष का दक्षिण स्वर और स्त्री का बायाँ स्वर चल रहा हो तथा पृथ्वी या जल तत्त्व का उदय हो अथवा दोनों का संगम हो, उस समय संभोग करने से पुत्र प्राप्त होता है। पुत्रोत्पत्ति की रात्रि एवं उनके प्रभाव निम्नलिखित हैं—

1. मासिक धर्म से 4th रात्रि का गर्भाधान—अल्पायु एवं दुर्बल पुत्र
2. ,, 6th ,, —साधारण जीवनी-शक्ति वाला पुत्र
3. ,, 8th ,, —शक्तिशाली एवं गुणवान पुत्र
4. मासिक धर्म से 10th रात्रि का गर्भाधान—स्वस्थ्य गुणवान धर्मवान एवं पुरुषार्थी पुत्र
5. ,, ,, 12th ,, —गुणवान, शीलवान सदाचारी पुत्र
6. ,, ,, 14th ,, —सभी गुणों से युक्त उत्तम पुत्र
7. ,, ,, 16th ,, —अति उत्तम पुत्र

नोट—मासिक धर्म अर्थात् आर्तव का स्राव होना प्रारम्भ से लेकर उसके ठीक चौथे दिन ऋतुस्नान की प्रथम तिथि अर्थात्-प्रतिपदा मानी जाती है। इसके बाद क्रमानुसार द्वितीया, तृतीया प्रभृति तिथियाँ समझनी चाहिए।

पुत्री प्राप्ति के लिए :—

निम्नलिखित रात्रियों में से किसी को भी अपने इच्छानुसार चुना जा सकता है, जिस समय पुरुष का बायाँ एवं स्त्री की दाहिना स्वर चल रहा हो एवं जल तत्त्व का उदय हो या पृथ्वी जल का संगम हो। रात्रि एवं उनके प्रभाव निम्नलिखित हैं—

1. मासिक धर्म से	5th	रात्रि का गर्भाधान	—गर्भ नहीं रहता या अल्पायु कन्या पैदा होती है।
2. ,,	7th	,,	—कन्या या तो मर जाती है या जीवित रहकर महा कुल-कलङ्किनी होती है।
3. ,,	9th	,,	—सुन्दरी एवं शक्ति-शालिनी कन्या उत्पन्न होती है।
4. मासिक धर्मसे	11th	रात्रि का गर्भाधान	—व्यभिचारिणी कन्या
5. ,,	13th	,,	—वर्णशंकर सन्तान उत्पन्न करने वाली कन्या
6. ,,	15th	,,	—सौभाग्यशालिनी, रूपवती एवं पति-व्रता होती है।

इसके बाद सोलहवें दिन के सम्भोग से यदि गर्भ स्थिर रह जाय तो वह पुत्र महापराक्रमी, प्रतापी एवं धर्मवान होता है। इसका प्रमाण है—

षोडशे दिवसे गर्भो, जायते नात्र संशयः।
चक्रवर्ती भवेद् राजा, जायते नात्र संशयः॥

(कामशास्त्र)

यदि सोलहवें दिन के संभोग से गर्भ स्थिर रह जाये तो गर्भ से उत्पन्न पुत्र चक्रवर्ती राजा होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

बाँझ स्त्री को सन्तान प्राप्ति के लिए :—

जब सूर्य स्वर या सुषुम्ना स्वर चल रहा हो और अग्नि तत्त्व का उदय हो चाहे दिन हो या रात हो तो बाँझ औरत भी गर्भवती हो जाती है ।

स्त्री-पुरुष के यदि एक ही नासिका से श्वास चलता हो तो गर्भ नहीं रहता है । जल तत्त्व उदय होने के समय गर्भाधान करने से उस गर्भ से उत्पन्न सन्तान धनी, सुखी और भोगी होता है उसकी कीर्ति दिग्दिगन्त में फैलती है । पृथ्वी तत्त्व का उदय काल में गर्भ रहने से सन्तान अति धनी, सुखी, सौभाग्यशाली होता है । अग्नि, वायु और आकाश तत्त्व के उदय-काल में गर्भ रहने पर गर्भपात हो जाता है अथवा उस गर्भ से सन्तान पैदा होते ही मर जाती है ।

भाग्योदय के लिए :—

अपना भाग्योदय करने के लिए दो नियम अपनायें :—

१. नित्य सूर्योदय से आधा घण्टा पूर्व उठें ।

२. सवेरे उठने के समय बिस्तर पर आँख खुलते ही जिस ओर का स्वर चल रहा हो, उसी ओर का हाथ यह मन्त्र पढ़ते हुए अपने मुख पर फेर कर शय्या पर बैठ जाइए । मन्त्र है—

कराग्रे वसते लक्ष्मी कर मध्यश्च सरस्वती ।
कर मूलेस्थितो ब्रह्म प्रभाते कर-दर्शनम् ।।

बाद में शय्या पर से उतरते समय उसी हाथ से पृथ्वी को यह मन्त्र पढ़ते हुए स्पर्शप्रणाम करके उसी स्वर की ओर वाले पैर को पहले भूमि पर रखना चाहिए । ऐसा नित्य करने से भाग्योदय होगा मन्त्र है—

समून्द्रेवसने देवो पर्वतस्तनमण्डिते ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शंक्षमस्वमे ।।

अग्नि बुझाने का कौशल :—

प्रतिवर्ष आग लगने से कितने लोगों का सर्वस्व स्वाहा हो जाता है । निम्नलिखित उपाय से बहुत आसानी से और आश्चर्यजनक रीति से अग्नि बुझायी जा सकती है ।

अग्नि लगने पर जिस ओर उसकी गति हो उस दिशा में खड़ा होकर, जिस नासिका से निःश्वास चलता हो उस नासिका से वायु

खींचकर नासिका द्वारा जल पीना चाहिए। एक छोटी लुटिया से यह कार्य किया जा सकता है। उसके बाद सात रत्ती जल—

उत्तरस्यां च दिग्भागे मारीचो नाम राक्षसः।
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां हुतो वह्निः स्तम्भ स्वाहा ॥

इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके अग्नि में डाल देना चाहिए। इस मन्त्र को गुरु के निर्देशन में पहले सिद्ध कर लेना चाहिए।

शत्रु-वशीकरण :—

जो नासिका चलती हो, उसके विपरीत पार्श्व में शत्रु को रखकर बात-चीत करनी चाहिए। ऐसा करने से घोर शत्रु भी आपके अनुकूल कार्य करेगा—

दूसरी विधि यह है—

उभयोः कुम्भकं कृत्वा मुखे श्वासो निपीयते।
निश्चला च यदा नाडी घोर शत्रुवंशकुरु ॥
(पवनविजय—स्वरोदय)

अर्थात् कुम्भक करके मुख द्वारा निःश्वास वायु पीयें। ऐसा करते-करते जब निःश्वास वायु स्थिर हो जाये तब शत्रु का ध्यान करें। इस तरह धीरे-धीरे घोर शत्रु भी वश में हो जाता है। चन्द्र-नाड़ी चलते समय बायीं ओर, सूर्यनाड़ी चलते समय दाहिनी ओर और सुषुम्ना चलते समय बीच में रखकर कार्य करने से विवाद में जीत होती है।

स्वर से मृत्यु, बीमारी, शान्ति आदि की सूचना :—

जब शुभाशुभ परिणाम होने वाला होता है तव स्वर का समय तथा दिन में परिवर्त्तन हो जाता है।

दिन में परिवर्त्तन होने का फल :—

१. शुक्ल पक्ष के प्रतिपदा को बायाँ स्वर का उदय न होकर दक्षिणस्वर का उदय हो तो उस पक्ष में पूर्णिमा तक उष्ण विकार; कलह या हानि होती है।

२. कृष्णपक्ष के प्रतिपदा को दक्षिण स्वर का उदय न होकर

बायें स्वर का उदय हो तो पक्ष में (अमावस्या तक) शीत-विकार आलस्य या हानि होती है ।

३. लगातार दो पक्ष तक विपरीत स्वर का उदय हो तो स्वयं पर विशेष आपत्ति, प्रियजन की बीमारी या मृत्यु होती है ।

४. लगातार तीन पक्ष तक विपरीत स्वर का उदय हो तो अपनी मृत्यु को निकट समझना चाहिये ।

५. यदि केवल तीन दिनों तक विपरीत स्वर का उदय हो तो कलह या रोग की संभावना होती है ।

६. यदि लगातार एक मास तक विपरीत काल में बायें स्वर का उदय हो तो महारोग की सम्भावना होती है ।

समय में परिवर्त्तन होने का फल :—

सर्वदा शुभफल बायें स्वर के परिवर्त्तन से तथा अशुभफल दोनों स्वरों के परिवर्त्तन से हुआ करते हैं ।

बायाँ स्वर :—

१. लगातार १ घण्टा ३६ मिनट तक चले तो अचिन्त्य वस्तु की प्राप्ति होती है ।

२. लगातार ३ घण्टा १२ मिनट तक चले तो सुखादि की प्राप्ति होती है ।

३. ५ घण्टा ३६ मिनट तक चले तो प्रेम-मैत्री आदि की प्राप्ति होती है ।

४. २४ घण्टे तक चले तो, ऐश्वर्य-वैभव की प्राप्ति होती है ।

५. यदि दो दिन तक आधे-आधे प्रहर, दोनों स्वर चलते रहें तो यश और सौभाग्य की वृद्धि होती है ।

६. यदि दिन में बायाँ स्वर तथा रात्रि में दक्षिणस्वर चलता रहे तो आयु की वृद्धि होती है ।

७. बायाँ स्वर लगातार ४ घण्टे तक चले तो शरीर कष्ट होगा ।

८. बायाँ स्वर ४ घण्टे ४८ मिनट तक चले तो शत्रु-उद्वेग होता है ।

९. एक या दो या तीन दिन तक चले तो महारोग होगा ।

१०. पाँच दिन तक चले तो व्याकुलता होगी ।

११. एक मास तक चले तो धन की हानि होती है ।

दक्षिण स्वर :—

१. लगातार एक घण्टा ३६ मिनट तक चले तो कुछ बिगाड़ या वस्तु-विनाश।

२. लगातार ५ घण्टा तक चले तो सज्जन से द्वेष।

३. ८ घण्टे २४ मिनट तक चले तो, सज्जन का विनाश होगा।

४. २४ घण्टे तक चले तो मृत्यु की सूचना समझनी चाहिए।

मृत्यु का ज्ञान :—

१. यदि लगातार दाहिना स्वर ८ प्रहर तक चले तो तीन वर्ष में मृत्यु होती है।

२. सोलह प्रहर तक चले तो दो वर्ष में मृत्यु होती है।

३. तीन दिन तीन रात (२४ प्रहर) तक चले तो एक वर्ष में मृत्यु होती है।

४. दिन में दक्षिण स्वर और रात में बायाँ स्वर यदि एक मास तक चले तो छः मास में मृत्यु होती है।

५. दक्षिण स्वर बीस अहोरात्र तक चले तो तीन मास में मृत्यु होती है।

६. यदि सुषुम्ना दो घण्टे चलकर न बदले तो तत्काल मृत्यु होती है।

७. अपने नेत्रों से अपनी नाक न दिखे तो तीन दिन में मृत्यु होती है।

८. बिना कारण स्थूल या कृश शरीर हो जाये तो एक मास में मृत्यु होती है।

९. स्नान के बाद हृदय एवं कपाल का जल अस्वभाविक ढंग से सूख जाये तो तीन मास में मृत्यु होती है। मृत्युज्ञान के दो विशेष चिह्न—

(i) दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर नाक के ठीक सीध में कपाल पर रखकर नीचे की ओर उसी हाथ की केहुनी तक देखने से हाथ बहुत पतला दृष्टिगोचर होता है; इस प्रकार देखने से जिस दिन मणिबन्ध (कलाई) नहीं दीखे और मुट्ठी हाथ से अलग प्रतीत हो तो उस दिन से छः मास आयु शेष समझना चाहिए।

(ii) आंखें बन्द करके अँगुली से नासिका के पास आँख का कोना दबावें तो जिस दिन आँख का तारा न दीखे उस दिन से दस दिन आयु शेष समझना चाहिए ।

स्वर से वर्षफल का निर्णय :—

चैत्रमास की शुक्ल प्रतिपदा तिथि को प्रातःकाल अर्थात् चान्द्र-वर्ष के शुरू होने के समय तथा दक्षिणायन और उत्तरायण के प्रारम्भ में जिज्ञासुओं को तत्त्व साधन के भेदाभेद एवं निरूपण जानना चाहिए । यदि उस समय बायाँ-स्वर चलता हो, पृथ्वी, जल या वायु तत्त्व का उदय हुआ हो तो समझना चाहिये कि पृथ्वी सब प्रकार के शस्य से पूर्ण होगी और देश में सुकाल होगा । यदि अग्नि तत्त्व या आकाश तत्त्व का उदय हुआ हो तो समझना चाहिए कि पृथ्वी पर भीषण भय और घोर दुर्भिक्ष उपस्थित होगा । उक्त समय यदि सुषुम्ना स्वर चलता हो तो सर्व कार्य नष्ट होंगे । पृथ्वी पर राज्य क्रान्ति, महारोग और पीड़ा, यन्त्रणा आदि उपस्थित होंगे ।

मेष-संक्रान्ति के दिन प्रातःकाल यदि पृथ्वी तत्त्व का उदय हो तो अतिवृष्टि, राज्यवृद्धि, सुख-सौभाग्य की वृद्धि होगी । पृथ्वी धान्य पूर्ण होगीं, जल तत्त्व का उदय होने पर भी वही फल होगा । यदि अग्नि-तत्त्व का उदय हो तो दुर्भिक्ष, राष्ट्र-विप्लव तथा कठिन रोगों की उत्पत्ति होगी । वायु तत्त्व का उदय होने पर उत्पात, उपद्रव, भय, अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टि होगी और आकाश तत्त्व का उदय होने पर मनुष्यों को उद्गार, सन्ताप ज्वर और भय तथा पृथ्वी की शस्य हानि होगी ।

स्वर से प्रश्न :—

१. कार्य सिद्ध होगा ? प्रश्न में यदि, बायाँ स्वर के पृथ्वी जल तत्त्व का उदय हो तो कार्य सफल होगा । अग्नि, वायु, आकाशतत्त्व में, कार्य असफल होगा ।

२ यदि प्रश्न-कर्त्ता, उत्तर-दाता के दाहिनी ओर बैठकर प्रश्न करे और उस समय उत्तर-दाता का बायाँ स्वर हो तो, कार्य असफल होगा । दक्षिण स्वर हो तो कार्य सफल होगा ।

३. उत्तर-दाता के स्वर की ओर बैठकर प्रश्न-कर्त्ता प्रश्न करे तो उसका कार्य सफल होगा ।

४. यदि बायाँ-स्वर हो और प्रश्न-कर्त्ता, ऊपर से, सामने से, बायीं ओर से, प्रश्न करे तो कार्य सफल होगा।

५. यदि प्रश्न-कर्त्ता, बायीं ओर से आकर दाहिनी ओर बैठकर, प्रश्न करे और उत्तर-दाता का बायाँस्वर हो तो कार्य का विनाश होता है।

६. पूर्वोक्त जो ५ प्रश्नोत्तर बताये गये हैं वे उत्तर-दाता के बायें-स्वर के आधार पर हैं। यदि उत्तर-दाता का दक्षिण स्वर हो तो, जहाँ बायाँ है, वहाँ दक्षिण समझकर, उत्तर ज्यों के त्यों दिये जा सकते हैं।

७. प्रश्न-कर्त्ता, जिस ओर आकर बैठे, उसी ओर का स्वर, यदि उत्तर-दाता का हो तो कार्य-सिद्धि होती है। परन्तु पृथ्वी या जल तत्त्व का होना आवश्यक है।

८. रोग-प्रश्न बायीं ओर से किया जाय और उत्तर-दाता का दक्षिण स्वर हो तो रोगी का विनाश होता है। इसमें यदि बायाँ-स्वर हो और पृथ्वी तत्त्व हो तो रोगी एक मास में स्वस्थ हो जायेगा। सुषुम्ना स्वर हो, गुरुवार और वायु तत्त्व हो तो रोगी स्वस्थ हो जायेगा। सुषुम्ना स्वर हो, शनिवार और आकाश-तत्त्व हो तो रोगी की मृत्यु हो जाना सम्भव है।

स्वर से प्रवासी प्रश्न :—

१. प्रश्न—समय, बायाँस्वर में पृथ्वी तत्त्व हो तो प्रवास में कुशलता।

२. जलतत्त्व हो तो मार्ग में पानी की बाढ़ होगी।

३. अग्नितत्त्व हो तो प्रवास में कष्ट होगा।

४. वायुतत्त्व हो तो प्रवासी आगे चला गया है।

५. आकाश तत्त्व हो तो प्रवासी रोगी हो गया है।

६. सुषुम्ना और आकाश पृथ्वी का संगम हो तो प्रवासी की मृत्यु।

७. दक्षिणस्वर में पृथ्वी तत्त्व हो तो प्रवासी परदेश में स्थिर है।

८. जलतत्त्व हो तो प्रवासी सुखी होगा।

९. अग्नितत्त्व हो तो प्रवासी रोगादि कष्टों से मुक्त है।

१०. वायुतत्त्व हो तो प्रवासी अन्यत्र चला गया है।

११. आकाश तत्त्व हो तो यह समझना चाहिए कि प्रवासी की मृत्यु हो चुकी है।

स्वर से युद्ध प्रश्न :—

यदि प्रश्नकर्त्ता और उत्तरदाता के विपरीत स्वर हों तो पृथ्वी तत्त्व में पेट में घाव, जल तत्त्व में पैर में घाव, अग्नि तत्त्व में छाती में घाव, आकाश तत्त्व में मस्तक में घाव लगा समझना चाहिए। सुषुम्ना में प्रश्न हो तो उसे मृत्यु या बन्धन में समझना चाहिए। यदि प्रश्न-कर्त्ता और उत्तर-दाता का एक ही स्वर हो तो कुशलता समझना चाहिए।

स्वर से औषधि :—

कोई भी रोग स्वर की अव्यवस्था से होता है। अतएव स्वर को बदल कर सुव्यवस्थित कर लेने पर रोग से मुक्ति मिल सकती है। निम्नलिखित रोगों में इस प्रकार से स्वर का प्रयोग करना चाहिए :—

ज्वर (Fever) में :—

जब इसका प्रारम्भिक दौरा हो तब जो स्वर चल रहा हो, उसे बन्द कर दें, अथवा दूसरी करवट लेट जायें, जब तक कि स्वस्थ न हो जायें, तब तक उसी करवट लेटें अथवा बैठ जायें। बैठने पर स्वच्छ कपड़े की पोटली बनाकर चलते हुए स्वर वाले नासिका में घुसाकर उसे बन्द कर दें। नासिका बन्द करने में यह सावधानी रखें कि नासिका बिल्कुल बन्द रहे।

शिर-पीड़ा (Headache) में :—

बराबर भूमि में शवासन में लेट जायें। दोनों हाथों को नीचे लम्बा फैला दें। किसी दूसरे के द्वारा दोनों हाथों की केहुनियों के एक अंगुल ऊपर रस्सी द्वारा जोर से बँधवा दें। ५-७ मिनट में पीड़ा दूर हो जायेगी।

आधा सीसी या अधकपाड़ी (Migrane or one sided Headache) :—

आधा सीसी एक दूसरे प्रकार का सिर दर्द है जो प्रायः सूर्योदय के समय आरम्भ होती है और दिन चढ़ने के साथ-साथ यह भी

बढ़ती जाती है। दोपहर के बाद घटनी शुरू होती है और शाम तक प्रायः नहीं रहती। इस रोग का आक्रमण होने पर जिस ओर के कपाल में दर्द हो, ऊपर लिखे अनुसार उसी तरफ की केहुनी के ऊपर जोर से बँधवा देना चाहिए। थोड़ी ही देर में दर्द शान्त हो जायेगा और रोग जाता रहेगा। दूसरे दिन यदि फिर दर्द शुरू होता है और रोज एक ही नासिका से श्वास चलते समय शुरू होता है तो सिर दर्द मालूम होते ही उस नाक को बन्द कर देना चाहिए और हाथ को भी बाँध रखना चाहिए।

अजीर्ण (Indigestion) में :—

जिन्हें सर्वदा अपच का रोग हो उन्हें सर्वदा दक्षिण स्वर में भोजन करना चाहिए और भोजन के पश्चात् 15-20 मिनट बायीं करवट लेटने से शीघ्र लाभ होगा।

दाँतों का दुखना या हिलना (Aching or loosing of Teeth) :—

शौच तथा पेशाब करते समय दाँत पर दाँत रखकर जोर से दबाये रखें। इस क्रिया से हमेशा रहने वाला कमर दर्द ठीक हो जाता है तथा दाँतों का हिलना-दुःखना भी दूर हो जाता है।

छाती-पीठ, कमर-पेट आदि की पीड़ा में :—

जिधर का स्वर चल रहा हो उसे एकदम बन्द कर दीजिए।

दमा या श्वास रोग (Asthma or Suffocation) :—

जब दमे का दौरा हो तब जिस नासिका से निःश्वास चलता हो उसे बन्द करके दूसरी नासिका से निःश्वास चला देना चाहिए। दस-पन्द्रह मिनट में जोर कम हो जायेगा। इस रोग को समूल नष्ट करने के लिए लगातार एक मास तक, चलते हुए स्वर को बन्द करके दूसरा चलाने का अभ्यास नित्य-प्रति जितना अधिक हो सके उतना अधिक करते रहने से दमा नष्ट हो जाता है। जितना शीघ्र अभ्यास बढ़ेगा उतना ही शीघ्र लाभ होगा।

परिश्रम की थकावट दूर करने के लिए या धूप की गरमी शान्त करने के लिए थोड़ी देर तक दाहिनी करवट से लेटकर बायें-स्वर को जागृत करें।

दिन में प्रत्येक समय स्वर बदलने का जितना अधिक अभ्यास बढ़ाया जायेगा उतना ही चिर-यौवन प्राप्त होगा।

शीत रोगों की औषधि दक्षिण स्वर में तथा उष्ण रोगों की औषधि बायें स्वर में सेवन करना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वर शास्त्र की जानकारी व्यक्ति के लिए आवश्यक है। इससे जीवन-यात्रा में काफी लाभ मिल सकता है। इससे अनेक प्रकार के रोगों से मुक्ति मिल सकती है तथा भविष्य में होनेवाली दुर्घटनाओं से बचा जा सकता है। यह स्वर-शास्त्र प्रत्येक दृष्टिकोण से मानव के लिए मंगलकारक है।

सप्तम अध्याय

यौगिक-चिकित्सा

योग द्वारा विभिन्न रोगों की चिकित्सा की जा सकती है। जहाँ एलोपैथिक दवाओं से स्वास्थ्य लाभ नहीं मिल पा रहा हों, रोग पुराना (Chronic disease) हो गया हो, इसके लिए योग तो मानों रामवाण ही है। इसके द्वारा न तो कोई आर्थिक व्यय की परेशानी है और न तो कड़वी दवाओं की सेवन की ही आवश्यकता है। यहाँ पर जिन यौगिक क्रियाओं को जिस क्रम से उल्लेख किया जा रहा है उसी क्रम से अभ्यास करें।

जो षट्कर्म की क्रिया करने में समर्थ न हो सकें वे केवल आसन और प्राणायाम ही करें तथा जो आसन भी करने में समर्थ न हों वे केवल अपने हितकर प्राणायाम ही करें और जो किसी भी यौगिक क्रियाओं को न कर सकें वे उन रोगों के लिए उल्लिखित औषधियों का ही सेवन करें।

जड़ी-बूटियों एवं यौगिक क्रियाओं को एक साथ करने से शीघ्र और पूर्ण लाभ होगा। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की अनियमितता एवं उनके स्राव के बन्द हो जाने के कारण कितनी ही व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उनसे छुटकारा पाने के लिए अन्तःस्रावी ग्रन्थियों (Glands) पर प्रभाव डालने वाली यौगिक क्रियाओं का उल्लेख कर दिया गया है। अतः जिज्ञासु नियमित अभ्यास कर लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

मधुमेह (Diabetes) :—

नौकासन, धनुरासन, मकरासन, मयूरासन, वक्रासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, शीर्षासन अग्निसार, उड्डीयान बन्ध, भस्त्रिका करें।

या

दो हरे करैला का रस २१ रोज तक प्रातःकाल नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर सेवन करें।

या

तिल-गुड़ का सुबह-शाम सेवन करें।

उच्च रक्त-चाप (High Blood-Pressure) :—

शवासन, उत्तानपादासन, अर्द्धपश्चिमोत्तानासन, गोरक्ष आसन, भुजंगासन, नाड़ीशोधन और उज्जैयी प्राणायाम बिना कुम्भक का करें।

या

असगन्ध की जड़ पीस कर पानी के साथ २१ दिनों तक पीयें। अधिक पुराना रोग होने पर ४१ दिनों तक असगन्ध का सेवन करें।

हृदय की धड़कन :—

दाहिनी करवट लेटकर श्वास-प्रश्वास पर ध्यान १५ मिनट तक केन्द्रित करें।

अम्ल-पित्त (Hyper Acidity) :—

कुन्जल, धौति, जलनेति, पश्चिमोत्तानासन, सर्वांगासन, विपरीतकरिणी, नौकासन, मयूरासन, भुजंगासन, खगासन और शीतली प्राणायाम करें।

गैस्ट्रिक ट्रबुल (Gastric trouble) :—

कुन्जल, पवन-मुक्तासन, उत्तानपादासन, हस्तकटि चक्रासन, उष्ट्रासन, मयूरासन, वक्रासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, वज्रासन, योगमुद्रा, भुजंगासन, नौकासन, धनुरासन, अग्निसार, उड्डीयान।

गैस्ट्रिक ट्रबुल के कारण अगर शरीर के किसी भाग में दर्द हो तो जिस नथने से श्वास चलता हो उसे बन्द कर दें और दूसरे नथने से श्वास-प्रश्वास लें।

वायु-विकार (Fiatulance) :—

भोजन के पश्चात् १० मिनट वज्रासन में बैठें, पवन मुक्तासन एवं मयूरासन करें।

दमा (Bronchial Asthma) खाँसी, सर्दी (Comnon cold) हो तो :—

कुन्जल, धौति, नेति, पश्चिमोत्तानासन ५ मिनट, गोमुखासन, लुप्त वज्रासन, मत्स्यासन, भुजंगासन, खगासन, मयूरासन, शीर्षासन और भस्त्रिका प्राणायाम करें।

या

१० दाना कालीमिर्च घी में गरम कर जले हुए काली मिर्च को हटा दें, उसी घी को चावल या रोटी के साथ भोजन के समय सेवन करें।

या

जोसान्दा काढ़ा मिश्री के साथ सेवन करें।

यौगिक चिकित्सा के साथ किसी एक जड़ी-बूटी की विधि का उपयोग करने पर शीघ्र लाभ होगा।

कुष्ठ-रोग (Leprosy) :—

कुञ्जल, नेति, धौति, सूर्यनमस्कार (मन्त्र के साथ), मयूरासन, शीर्षासन, शीतली प्राणायाम करें।

या

नित्य प्रातः नीम की कोमल पत्ती चबाकर एक ग्लास ठंडा जल पी लें।

नेत्रों में फुला-जाला :—

सूत्र-नेति, जल-नेति एवं आभ्यन्तर त्राटक करें।

किसी तरह की मानसिक बेचैनी होने पर :—

शवासन में दीर्घ रेचक एवं पूरक के साथ अपने इष्ट देव का मन्त्र-जाप या दाहिनी करवट १५ मिनट तक लेट जायें या दाहिने नथने को बन्द करके वाम नथने से श्वास-प्रश्वास लें।

कब्जियत (Constipation) :—

प्रातः जल पीकर, अग्निसार, उड्डीयान नौलि एवं मयूरासन या शंख-प्रक्षालन या पंचसकार चूर्ण का सेवन करें।

पेचिस (Amoebic Dysentry) :—

पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन, भुजंगासन अग्निसार, उड्डीयान, नौलि, शीतली प्राणायाम करें।

या

कटेला, मोचरस एवं इसरगोल इन तीनों से थोड़ी-थोड़ी बराबर मात्रा लेकर रात्रि में मिट्टी के पात्र में भिगो दें। सुबह मिश्री मिलाकर सेवन करें, एक सप्ताह तक। बिल्कुल ठीक हो जायेगा।

अनुभूत है। गर्मी से निकलने वाले फोड़ा-फुंसी में भी यह अत्यन्त लाभकर है।

प्रदर रोग :—

उत्तानपादासन, सर्वांगासन, विपरीतकरिणी हलासन, शीर्षासन, मयूरासन, सूर्यनमस्कार, उज्जायी प्राणायाम करें।

या

आक की एक जड़ ५ दाना गोल काली मिर्च के साथ पीस कर प्रातःकाल २१ रोज तक सेवन करे।

अल्प रजःस्राव (Ammenorrhoea) अतिरजःस्राव (Dismenorrhoea) या मासिक धर्म में किसी तरह की गड़बड़ी हो तो :—

उत्तानपादासन, सर्वांगासन, विपरीकरिणी, हलासन, मयूरासन, सूर्यनमस्कार, वक्रासन शीर्षासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, नाड़ीशोधन करें।

गर्भच्युति (Abortion) अर्थात् बार-बार गर्भपात हो जाता हो तो :—

शीर्षासन, सर्वांगासन, कुक्टासन, गर्भासन, विपरीतकरिणी, ताड़ासन, भस्त्रिका, शीतली प्राणायाम करें।

वन्ध्यापन (Female sterility) :—

शीर्षासन, सर्वांगासन, विपरीतकरिणी बद्ध-पद्मासन, हलासन, भस्त्रिका तथा उज्जायी प्राणायाम करें।

नर्यो (Hernia) हर्निया अर्थात् आँत उतरना :—

शीर्षासन, सर्वांगासन, वीपरीत करिणी

स्वप्न दोष (Wet dreams) :—

मयूरासन, उत्तानपादासन, सर्वांगासन, विपरीतकरिणी, हलासन, नौकासन, शीर्षासन एवं शीतली प्राणायाम या चन्द्रप्रभावटी का या गुरुचि को पीसकर मिश्री मिलाकर प्रातः काल २१ रोज या ११ रोज तक सेवन करें।

साइटिक (Sciatica), गठिया (Arthritis) :—

पश्चिमोत्तासन, जानु-शिरासन, भूधरासन, चक्रासन, शीर्षासन,

उत्तानपादासन, शलभासन, चक्रासन, अग्निसार, भस्त्रिका, ध्यान दश मिनट सुबह-शाम करना चाहिए।

डायरिया (Diarriahoea) :—

अग्निसार, उड्डीयान, पश्चिमोत्तानासन, योगमुद्रा करना चाहिये।

संग्रहणी :—

उड्डीयान, बज्रासन-बद्ध-पद्मासन, भुजंगासन, खगासन, पश्चिमोत्तासन, योगमुद्रा, हलासन।

नोट :—डायरिया, संग्रहणी और ज्वर की स्थिति में यौगिक क्रियाओं का उपयोग ऐसे लोग ही करें जो पहले से योगाभ्यास करते आ रहे हों।

ज्वर (Fever) :—

उज्जायी एवं शीतली प्राणायाम का प्रयोग करें या बायें स्वर से श्वास लें।

पक्षवध या पक्षाघात (Paralysis) :—

इसे लकवा, पक्षाघात या फाँलिज भी कहते हैं। यह रोग वायु के गड़बड़ी के कारण होता है। शरीर में पक्वाशय (Large intestines) वायु का प्रधान स्थान माना गया है। शरीर में सभी धातुओं एवं मलादि का परिचालन इसी से होता है। इन्द्रियों के कार्यों का यह मूल है। अतएव पक्षाघात वायुरोग के अन्तर्गत है जो दूषित वायु शरीर के अर्धांग में भरकर उसकी स्नायुओं का शोषण करके सभी बन्ध और मस्तिष्क को शिथिल कर देता है जिससे उसके पार्श्ववर्ति सब अंग निश्चेष्ट हो जाते हैं। इस तरह से लकवा का आक्रमण होता है।

संभवतः एड्रीनल ग्लैण्ड के कोई स्राव (Secretion) भी इस रोग को प्रभावित करता है। अतः योग में इसके लिए वे सभी क्रियाएँ उपयोगी हैं जो पक्वाशय एवं एड्रीनल ग्लैण्ड पर प्रभाव डालते हैं। इसलिए इस रोग में निम्नलिखित क्रियाओं को करना चाहिए—

उत्तानपादासन, सर्वांगासन, विपरीकरिणी, हलासन, शीर्षासन, मयूरासन, वक्रासन, चक्रीय चक्रासन, उड्डीयान तथा उज्जायी प्राणायाम करें।

दाँतों का दर्द या मसूड़ों का फूलना या दर्द होना या जिह्वा में छाला पड़ गया हो तो :—

कुंजल, नेति, मयूरीआसन, शीर्षासन, नाड़ी-शोधन, शीतली एवं सीत्कारी प्राणायाम या सरसों तेल और नमक से दाँतों को मलें अगर सिर्फ दाँतों या मसूढ़ों में दर्द हो तो सिर्फ सरसों तेल दिन में तीन बार लगायें, बिल्कुल ठीक हो जायेगा। जिह्वा में छाला पड़ गया हो तो चावल के गरम माण्ड से कुल्ला करें पूर्ण ठीक हो जायेगा।

शरीर में गौर वर्ण की प्राप्ति के लिए :—

अग्निसार, उड्डीयान, शीतली, नाड़ी-शोधन तथा यौगिक आहार एवं भोजन में मक्खन का सेवन करें।

मोटापा (Obesity) दूर करने के लिए :—

अग्निसार, सूर्यनमस्कार चक्रासन, भस्त्रिका, प्रातःकाल एक ग्लास जल में दो चमच मधु मिलाकर सेवन करें।

दिनाय, खुजली, त्वचा में जलन या अन्य किसी प्रकार के चर्म रोग में :—

अग्निसार, उड्डीयान, नौलि, हलासन, शीर्षासन, चक्रासन, शीतली प्राणायाम। इन क्रियाओं के बाद मक्खन सेवन करें।

आँख, नाक और कान के सभी तरह के रोगों के लिए :—

नेति, मत्स्यासन, सर्वांगासन, सिंहासन, मयूरी आसन एवं भस्त्रिका प्रणायाम करें।

आँख को आकर्षक बनाने के लिए :—

नेति के बाद त्राटक का अभ्यास करें।

सेक्सग्लैण्ड्स (Sex glands) ovary और Testes सम्बन्धित व्याधियों के लिए :—

पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन, शीर्षासन, हलासन और मयूरासन।

यौवनावस्था आने पर भी जिन बालिकाओं को द्वितीयक लैंगिक लक्षण (Secondary Sexual Character) का विकास न हो पाया हो उनके लिए :—

उत्तानपादासन, हलासन, कर्णपीडासन, विपरीतकरिणी, सर्वांगासन, शीर्षासन एवं भस्त्रिका प्राणायाम करना चाहिए ।

निद्रा, तन्द्रा एवं आलस्य दूर करने के लिए :—

केवल त्राटक

या पश्चिमोत्तानासन, वज्रासन, योगमुद्रा, भूधरासन, त्रिकोणासन या ब्रह्मचर्यासन, पद्मासन, शीतली प्राणायाम एवं उज्जायी करें ।

मन्द-बुद्धि मस्तिष्क (Mental Retardation) को चेतन बनाने के लिए :—

भस्त्रिका, शीर्षासन एवं मानस-जाप के साथ ध्यान करना चाहिए ।

बाल पकना या गिरना :—

सर्वांगासन, विपरीतकरिणी, हलासन, शीर्षासन, शीतली एवं सीत्कारी प्राणायाम करें ।

पित्त-विकार :—

चन्द्र-भेदी, शीतली, सीत्कारी उज्जायी प्राणायाम करें ।

गले में खरास रहता हो या ध्यान-काल में गला सूखता हो :—

नभोमुद्रा, शीतली का अभ्यास करें ।

स्वभाव से लज्जालु (Schizoid) व्यक्तियों के लज्जा दूर करने के लिए :—

नासाग्र पर त्राटक करना चाहिए ।

तीक्ष्ण बुद्धि बनाने के लिए :—

त्राटक, उड्डीयान, नौलि, नाड़ी-शोधन एवं बच का सेवन करें ।

हाथी पाँव (श्लीपद, फिलपाँव) :—

वज्रासन, भोजन एवं जल का सेवन करते समय अधिक से अधिक नींबू का प्रयोग करें।

फोड़ा-फुन्सी में :—

कुंजल, अग्निसार, भस्त्रिका, शीर्षासन, हलासन एवं सूर्य नमस्कार।

कृशता दूर करने के लिए :—

दण्ड-बैठक एवं कुम्भक प्राणायाम एवं चना गूड़ का सेवन करें।

सर दर्द :—

नाड़ी शोधन एवं उज्जायी प्राणायाम का अभ्यास करें।

पीठ दर्द (Bachache), spondylitis में :—

भुजंगासन, शलभासन, नौकासन, धनुरासन एवं पवन-मुक्तासन तथा उज्जायी प्राणायाम करें।

सुस्तुकम्मिजाजी, थकावट, अनिद्रा :—

शवासन आधा घंटे तक करें।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों (Endocrine glands) से सम्बन्धित रोगों को दूर करने के लिए :—

ग्रन्थियों (Glands) की गड़बड़ी के कारण पैदा होने वाले रोगों को दूर करने के लिए उन पर प्रभावकरी यौगिक क्रियायें लाभदायक हैं जो निम्न प्रकार से हैं :—

थायरायड (Thyroid) :—

सर्वांगासन, हलासन, मत्स्यासन

पिनीयल (Pineal Gland) :—

शीर्षासन, वृश्चिकासन, विपरीत करिणी।

पीट्यूटरी (Pitutory gland) :—

शीर्षासन, हलासन

लीवर (Lever) :— मत्स्येन्द्रासन दायें।

स्पिलीन (Spleen) :— मत्स्येन्द्रासन बायें।

पैंक्रियाज (Pancreas) :—उड्डीयान बन्ध, नौलि, मयूरासन।

एड्रीनल (Adrenal) :—मयूरासन।

Sex Gland (Ovary & Testes) :—पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन, शीर्षासन Sinusitis एवं Polyp में :– सूत्रनेति, जलनेति भस्त्रिका।

आसनों एवं यौगिक चिकित्सा की विस्तृत जानकारी के लिए लेखक के योग थिरेपी (Yoga Therapy) नामक ग्रन्थ देखें।

छात्रोपयोगी कुछ यौगिक क्रियाएँ

बौद्धिक क्षमता, प्रत्युपन्नमतित्व (Presence of Mind), स्मरण शक्ति के लिए सगर्भ प्राणायाम करें :—

परीक्षा की अवधि में नाड़ी-शोधन प्राणायाम करने से मानसिक संतुलन (Mental Balance) बना रहता है एवं स्मरण शक्ति भी ठीक बनी रहती है।

जिन विद्यार्थियों का मन काफी चंचल हो, पढ़ने में मन नहीं लगता हो उनके लिए :—

४१ रोज तक सगर्भप्राणायाम बिना कुम्भक अर्थात् दीर्घ रेचक और पूरक का अभ्यास १५ मिनट सुबह एवं शाम तथा ५ मिनट तक ध्यान का अभ्यास करें।

ऐसा करने से उनका मन पढ़ने में लगेगा और मानसिक संतुलन बना रहेगा।

स्मरण शक्ति और याददाश्त बढ़ाने के लिए कुछ विधियाँ : –

विधि न० १ :—

रात्रि में सोते समय शवासन में लेट जायें, हाथ-पैर ढीला छोड़ दें, शरीर पर कहीं तनाव नहीं रहने दें और सुबह से शाम तक अपने द्वारा किये गये प्रत्येक कार्यों का अनुलोम-बिलोम क्रम से याद करें और तत्पश्चात् सो जायें। इस तरह ४१ रोज तक यह क्रिया करें।

विधि न० २ :—

शवासन में लेट जायें, धीरे-धीरे दीर्घ–रेचक पूरक करें, पैर के अँगूठे से सिर पर्यन्त नाड़ियों की गति का ध्यान करें। यह क्रिया दस मिनट तक करके सो जायें। इस क्रिया से कुछ दिनों में एकाग्रता आ जायेगी, यादाश्त भी पहले की अपेक्षा काफी बढ़ जायेगा।

विधि न० ३ :—

शवासन में लेट कर दीर्घ रेचक करते हुए सूर्य के किरणों के सात रंगों का ध्यान दस मिनट तक करें। तत्पश्चात् सो जायें। ऐसा करने से विभिन्न क्षेत्रों में बुद्धि विकसित होकर उतने ही विषयों में ज्ञान की अभिवृद्धि होगी, मानसिक सभी तरह की व्याधियों के ठीक होने में मदद मिलेगी।

विधि न० ४ :—

शवासन में लेट जायें। दीर्घ रेचक और पूरक पर ध्यान एकाग्र करें। सुविधानुसार किसी मन्त्र का जाप करें। दस मिनट तक करके पुनः सो जायें।

उपर्युक्त चारो विधियाँ रात्रि विश्राम के समय विस्तर पर करने की हैं। इससे शान्ति एवं एकाग्रता मिलेगी। अनिद्रा आदि रोग दूर हो जायेंगे।

जो विद्यार्थी दिन-रात अध्ययन करते रहते हैं उनके लिए नाड़ी शोधन प्राणायाम बहुत ही लाभदायक है।

जिन्हें स्वप्नदोष सम्बन्धित शिकायत हो उनके लिए नाड़ी-शोधन, शीतली प्राणायाम एवं शीर्षासन, हलासन, शलभासन, सर्वांगासन उपयोगी है।

★

ग्रन्थ-परिचय

'योग का वैज्ञानिक' रहस्य ग्रन्थ में भारत के प्राचीन योगविद्या के विद्वान लेखक योगाचार्य श्रीरमणदास महात्यागी ने वैज्ञानिक पुट देकर इसे इस युग के अनुरूप बनाने का सफल प्रयास किया है। आज के इस भौतिक युग में आपने विज्ञान-स्नातक होकर भी, सांसरिक वाक्या-धिक्य से पृथक् साधु-वृत्ति अपना ली। योग से आपका सम्बन्ध विद्यार्थी जीवन से ही रहा है। अतः आप पुनः सेन्ट्रल रिसर्च इन्टीट्यूट फॉर योग, कटरा, जम्मू-कश्मीर में दाखिल हुए। वहां से योग का वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय पद्धति से अध्ययन कर गिरिनार के जंगलों में योग की प्रायोगिक अन्तरंग साधना की। आपकी इसी साधना का पका हुआ फल पाठक इस ग्रन्थ में पायेंगे। पाठक देखेंगे कि इस ग्रन्थ में भारतीय प्राचीन ऋषि परम्परा के अनुसार योग की दीक्षा लेकर उसे वैज्ञानिक पहलुओं पर किस तरह सफलता के साथ उतार दिया गया है। आज के युग में ऐसे ग्रन्थें की परम आवश्यकता है।

सम्प्रति आप अपने महात्यागी सेवा आश्रम में बैठकर अहर्निश भारतीय संस्कृति एवं दर्शन सम्बंधित तथ्यों पर वैज्ञानिक दृष्णि कोण से विचार करते हुए शोध कार्य में संलग्न हैं।

आपका महात्यागी सेवा आश्रम वाराणसी, आपका प्रथम प्रकाशित ग्रन्थ "अध्यात्म दर्शन" इसी दिशा में धार्मिक तत्त्वों का वैज्ञानिक विश्लेषण है।

राष्ट्रपति सम्मानित विद्यानिधि

भरत मिश्र

Ay S3

लेखक परिचय

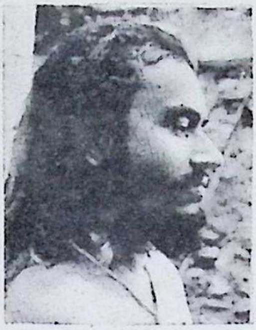

आपको विद्यार्थी जीवन से ही योग से गहरा लगाव रहा है। अतः आप विज्ञान स्नातकोपरान्त भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं कल्याण मन्त्रालय से सम्बन्धित सेन्ट्रल रिसर्च इन्स्टीट्यूट फॉर योग, कटरा-जम्मू कश्मीर में दाखिला लेकर योग का वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय पद्धति से अध्ययन किया। तदुपरान्त आप गिरनार के जंगलों में रहकर योग के सूक्ष्म तत्त्वों की अन्तरंग साधना की है। सम्प्रति आप अपने महात्यागी सेवा आश्रम हनुमानगढ़ी, वाराणसी में रहते हुए योग से सम्बन्धित शोधकार्य एवं योग साधना में तल्लीन रहते हैं। इसके साथ ही साथ योग साधकों को योग का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक प्रशिक्षण देकर योग-प्रचार में व्यस्त रहते हैं। आपको योग से शारीरिक, मानसिक एवं दैविक रोगों की चिकित्सा करने की विशेष दक्षता प्राप्त है। बहुत से लोगों ने आपके इस यौगिक चिकित्सा-पद्धति से लाभ उठाया है। वर्तमान समय में आप अपने आश्रम में एक योग-चिकित्सा केन्द्र (yogatherapy centre) एवं योग अनुसंधानशाला की स्थापना करने के लिए तत्पर हैं। इसके साथ ही साथ आपने तन्त्र-मंत्र एवं ज्योतिष के सूक्ष्म तथ्यों का गहरा अध्ययन किया है तथा इन विषयों में आपने एक विशेष योग्यता भी हासिल कर ली है। भारतीय वाङ्मय में आपकी विशेष रुचि है अतः आप सतत् इन विषयों में चिन्तनशील नजर आते हैं। समय-समय पर आप स्थलों पर जाया करते हैं। योग विद्या तथा भारतीय दर्शनों के प्रचार-प्रसार हेतु आप विदेशयात्रा पर भी जाने वाले हैं।

आपका प्रथम प्रकाशित ग्रन्थ "अध्यात्म दर्शन" है जिसमें शास्त्रीय (धार्मिक) तथ्यों को वैज्ञानिक पद्धति से विवेचन किया गया है।